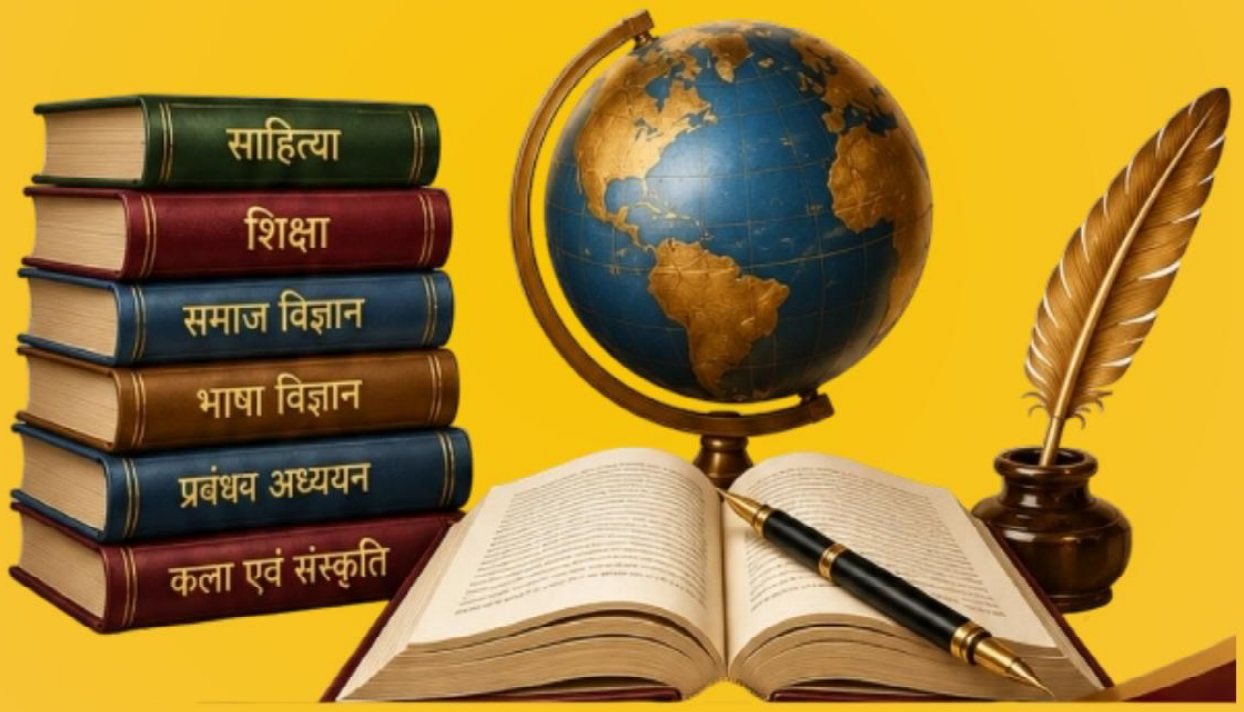
देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

ISSN : 2395-7115
Impact Factor 8.642
Aug. 2026
Vol.-24, Issue-2

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL



Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate

Publisher :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
#202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

स्व. चौ. गुगनराम सिहाग व उनकी छोटी बहन स्व. श्रीमती गीना देवी के शुभाशीर्वाद से प्रकाशित

JOURNAL OF HUMANITIES, COMMERECE, SCIENCE, MANAGEMENT & LAW

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL

https://bohalshodhmanjusha.com/

Vol. 24 ISSUE-2, Part-2 (अगस्त 2026) ISSN : 2395-7115

प्रेरणा :

चौ. एम. सिहाग

सम्पादक :

डॉ. नरेश सिहाग 'बोहल', एडवोकेट

एम.ए. (समाजशास्त्र, लोक प्रशासन, हिन्दी शिक्षा शास्त्र, पत्रकारिता),
एम.फिल (समाजशास्त्र, हिन्दी) एम. लिब., एल-एल.बी. (ऑनर्स),
डिप्लोमा पंचायती राज (रजत पदक विजेता), पी.एच.डी. (हिन्दी)
डी.लिट् (मानद उपाधि), काठमांडू, नेपाल

कार्यकारी सम्पादक :

प्रो. शकुन्तला चौहान

शामली, उत्तर प्रदेश।

प्रकाशक :

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)

202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड, भिवानी-127021 (हरियाणा)

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL REFEREED/REVIEWED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL
ISSN 2395-7115

सम्पादकीय सम्पर्क :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड,
भिवानी-127021 (हरियाणा)
Email : nksihag202@gmail.com
मो. 09466532152

Published by :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board,
Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA
Email : grsbohal@gmail.com
Facebook.com/bohalshodhmanjusha
Website : www.bohalsm.blogspot.com
WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price

Individual/Institutional : 1100/-

Disclaimer :
1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

बोहल शोध मंजूषा परिवार*

मानद संरक्षक

डॉ. कैलाश चन्द्र शर्मा 'शंकी'
पूर्व शिक्षा अधिकारी,
साहित्यकार,
चरखी दादरी (हरियाणा)

डॉ. विश्वबंधु शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ वि.वि.
रोहतक (हरियाणा)

डॉ. विनोद तनेजा
पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
गुरूनानक वि.वि. अमृतसर
पंजाब।

सम्पादक मण्डल

सह सम्पादिका :
डॉ. रेखा सोनी
उप प्राचार्या, शिक्षा विभाग
टाटिया वि.वि. श्रीगंगानगर।

सह सम्पादिका :
डॉ. सुशीला आर्या
हिन्दी विभाग, चौ. बंसीलाल
विश्वविद्यालय, भिवानी।

प्रबंध सम्पादक :
समुन्द्र सिंह
भिवानी, हरियाणा।

विधि विशेषज्ञ

डॉ. रामफल दलाल, एडवोकेट
जिला न्यायालय
भिवानी, हरियाणा।

अजीत सिहाग, एडवोकेट
पंजाब एवं हरियाणा हाईकोर्ट,
चंडीगढ़।

चरणवीर सिंह, एडवोकेट
जिला न्यायालय
पटियाला, पंजाब।

विषय विशेषज्ञ/परामर्शदात्री/शोधपत्र निरीक्षण समिति

डॉ. कुमारी लक्ष्मी जोशी
हिन्दी विभाग, त्रिभुवन वि.वि.
काठमाण्डू, नेपाल।

डिल्लीराम शर्मा संग्रौला
विभागीय प्रमुख, संस्कृत, पत्रकारिता, हिंदी
पद्मकन्या बहुमुखी कैंपस, काठमांडू, नेपाल।

डॉ. संजय एल. मादार
विभागाध्यक्ष, पी.जी. केन्द्र
द.भा.हिन्दी प्रचार सभा हैदराबाद।

डॉ. गीता दहिया, प्राचार्या,
नैशनल टीटी कॉलेज फॉर गर्ल्स
अलवर, राजस्थान

डॉ. इस्पाक अली
पूर्व प्राचार्य, लाल बहादुर शास्त्री
शिक्षा महाविद्यालय, बेंगलूरू

डॉ. मो. रियाज़ खान
बीएमएस वूमैन कॉलेज आटोनोमेस
बेगलूरू

डॉ. वनिता कुमारी
च. दादरी (हरियाणा)

श्री सहदेव समर्पित
सम्पादक, शान्तिधर्मी, जीन्द

डॉ. अंजली उपाध्याय
उत्तर प्रदेश

डॉ. लता एस. पाटिल
राजीव गांधी बीएड कालेज
धारवाड़, कर्नाटक

प्रो. अमनप्रीत कौर
गुरू तेग बहादुर खालसा कॉलेज
फॉर वूमैन, दसूहा, पंजाब

डॉ. वर्षा रानी
संस्कृत विभाग, डॉ. भीमराम
अम्बेडकर, वि.वि., आगरा

प्रो. कमलेश चौधरी
राजकीय रणबीर महाविद्यालय
संगरूर, पंजाब

डॉ. किरण गिल
दीनदयाल टी.टी. महाविद्यालय
बारी, जिला सीकर, राज.

डॉ. सविता घुड़केवार
पीजी विभाग, दक्षिण भारत
हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

डॉ. परमजीत कौर
बरेली कॉलेज बरेली,
उत्तर प्रदेश।

डॉ. राजकुमारी शर्मा
श्रीराम कॉलेज,
नई दिल्ली।

डॉ. श्रीविद्या एन.टी.
श्री शंकराचार्य संस्कृत वि.वि.
केरल।

डॉ. बी. संतोषी कुमारी
पी.जी.विभाग, दक्षिण भारत हिन्दी
प्रचार सभा, मद्रास।

श्री राकेश ग्रेवाल
सन जॉस,
कैलिफोर्निया, यू.एस.ए.

डॉ. पंडित बन्ने
भारत महाविद्यालय,
सोलापुर (महाराष्ट्र)

डॉ. करमजीत कौर
प्राचार्या, दशमेश गर्ल्स कॉलेज
चक आला, मुकेरिया, पंजाब।

श्री राकेश शंकर भारती
साहित्यकार व अनुवादक,
यूक्रेन।

डॉ. उमा सैनी
आई.ए.एस.ई. विश्वविद्यालय
सरदारशहर, राजस्थान

डॉ. मनमीत कौर
राधा गोविन्द वि.वि.,
रामगढ़, झारखण्ड।

डॉ. रीना उन्नीयाल तिवारी
शिक्षा संकाय, डी.ए.वी. पीजी
कालेज, देहरादून

डॉ. सुरजीत सिंह कस्वां
डीन फिजिकल एजुकेशन
टांटिया वि.वि., श्रीगंगानगर,

डॉ. शबाना हबीब
गवर्नमेंट कॉलेज फॉर वूमैन
त्रिवन्तपुरम, केरल।

डॉ. शिवकरण निमल
सहायक आचार्य, राजनीति विज्ञान
एसपीसी राजकीय महा. भीम, राजस्थान।

डॉ. राधाकृष्णन गणेशन
भारत कला भवन
वाराणसी, उत्तर प्रदेश।

डॉ. मानसिंह दहिया
संस्कृत विभाग
हरियाणा सरकार।

डॉ. नीलम आर्या
संस्कृत विभाग
उत्तर प्रदेश।

डॉ. रवि सुण्डयाल
हॉयर एजुकेशन डिपार्टमेंट
जम्मू कश्मीर।

प्रो. नरेन्द्र सोनी
सूचना एवं जन सम्पर्क अधिकारी,
हरियाणा सरकार।

डॉ. रोहतास
एस.जी.पी.जी.आई.एम.एस.
लखनऊ, उत्तर प्रदेश।

प्रो. सत्यबीर कालोहिया
पूर्व प्राचार्य,
कैलिफोर्निया।

पठान चिन्ना जानी
सहायक प्राध्यापक
सी.एच.एस.डी. सेंट थेरेसा
महिला महाविद्यालय (ए)
एलुरु, आंध्र प्रदेश

डॉ. वैशाली सिंह
सहायक प्राध्यापक
शिक्षा विभाग, एस.एम.टी. अनार देवी
टी.टी. कॉलेज, बखराना
(कोटपुतली) राजस्थान।

डॉ. रेखा रानी
गवर्नमेंट रणबीर कॉलेज
संगरूर, पंजाब

डॉ. के.के. मल्हौत्रा
पूर्व विभागाध्यक्ष
गवर्नमेंट कॉलेज, गुरदासपुर

डॉ. अंकिता चतुर्वेदी, प्रवक्ता
भीमसेन डिग्री कॉलेज
(आगरा यूनिवर्सिटी)

शिओंग छन श्यू
चीन

*सम्पूर्ण बोहल शोध मञ्जूषा परिवार/सम्पादक मण्डल अवैतनिक है।

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

ISSN : 2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED & REFEREED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES RESEARCH JOURNAL

Publisher : Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Table 2

Methodology for University and College Teachers for calculating Academic/Research Score

(Assessment must be based on evidence produced by the teacher such as: copy of publications, project sanction letter, utilization and completion certificates issued by the University and acknowledgements for patent filing and approval letters, students' Ph.D. award letter, etc,.)

S.N.	Academic/Research Activity	Faculty of Sciences /Engineering / Agriculture / Medical /Veterinary Sciences	Faculty of Languages / Humanities / Arts / Social Sciences / Library /Education / Physical Education / Commerce / Management & other related disciplines
1.	**Research Papers in Peer-Reviewed or UGC listed Journals**	08 per paper	10 per paper
2.	**Publications (other than Research papers)**		
	(a) Books authored which are published by ;		
	International publishers	12	12
	National Publishers	10	10
	Chapter in Edited Book	05	05
	Editor of Book by International Publisher	10	10
	Editor of Book by National Publisher	08	08
	(b) Translation works in Indian and Foreign Languages by qualified faculties		
	Chapter or Research paper	03	03
	Book	08	08
3.	**Creation of ICT mediated Teaching Learning pedagogy and content and development of new and innovative courses and curricula**		
	(a) Development of Innovative pedagogy	05	05
	(b) Design of new curricula and courses	02 per curricula/course	02 per curricula/course

अनुक्रमाणिका – अगस्त 2026

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	डॉ. नरेश सिहाग	09–10
2.	**Exploring Mental Well-Being through Spiritual Healing : A Comparative Analysis of Raja Rao and Paulo Coelho**	**Dr. Rekha Rani**	**11-18**
3.	स्वातंत्र्योत्तर अप्रत्यासित परिवेश में नयी कविता के समीचीन स्वर	रवि वर्मा	19–23
4.	सीकर जिले के तँवरावाटी क्षेत्र के विशेष संदर्भ में सामाजिक-सांस्कृतिक स्थलों का समाजशास्त्रीय अध्ययन	डॉ. अरविन्द कुमार वर्मा, हवाई सिंह गोठवाल	24–33
5.	ब्रह्माण्डपुराणानुसारं भगवतः श्रीपरशुरामस्य तेजस्वी वंचः	डॉ. बलवन्तसिंह वत्स	34–40
6.	भारतीय समाज में दलित समुदाय का संघर्ष और दलित साहित्य की भूमिका	आर. श्रावण, डॉ. अजयपाल सिंह	41–51
7.	मलिन बस्तियों की महिलाओं में पोषण और स्वास्थ्य की स्थिति : आरा नगर के सन्दर्भ में	शीतल सिन्हा, डॉ. मीरा रानी	52–59
8.	जाति व्यवस्था पर डॉ. अम्बेडकर के विचार : एक अध्ययन	डॉ. सुनील कुमार चौधरी	60–63
9.	**Water Power and Empire : Canal Irrigation as a Tool of Colonial Rule in British India**	**Mohd Adnan**	**64-70**
10.	आदिवासी महिलाओं पर स्वयं सहायता समूह का प्रभाव	बिभा कुमारी, प्रो.(डॉ.) अवध बिहारी सिंह	71–76
11.	भारतीय किसान का बदलता परिदृश्य : औपनिवेशिक दौर व समकालीन हिंदी उपन्यासों के संदर्भ में	वर्षा शर्मा	77–83
12.	हिन्दी साहित्येतिहास लेखन में डॉ. सुमन राजे की भूमिका	लक्ष्मी देवी	84–88
13.	**Between Submission and Emancipation : A Thematic and Semiological Study on the Image of Maghrebi Women in French Cinema from 2000 to 2013**	**Rafay Kamaal**	**89-99**
14.	स्वतंत्रता के बाद भारत में आदिवासी महिलाओं की सामाजिक-आर्थिक और शैक्षिक स्थिति	प्रीति भटनागर	100–105
15.	**Problems and Prospects of International Marketing of the Indian Leather Industry: An Analytical Study of Export Performance and Market Opportunities in European Union Countries**	**Ritika Jindal, Dr. Jyotsanna Lokhandde**	**106-120**

16.	शंकर एवं रामानुज के अनुसार 'अवक्तव्य' की अवधारणा	दिलीप कुमार, डॉ. रीता शर्मा	121–123
17.	प्राचीन भारत में श्रेणी संगठन : एक ऐतिहासिक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन	नवेद अली	124–128
18.	**Need of E-content Developments in Education**	**Dr. Rajendra Jakhar**	**129-139**
19.	शिक्षकों की शैक्षिक नवाचारों के प्रति अभिवृत्ति मापनी	कुसम लता टाक, डॉ. श्रद्धा सिंह चौहान	140–148
20.	ज्ञानरंजन : कम लेखन में रची गई विराट साहित्यिक उपस्थिति	पंकज कुमार सिंह	149–151
21.	**Taxonomic Study of *Jatropha gossypifolia* L. (Euphorbiaceae) : A Poisonous Plant of Sagar District, Madhya Pradesh**	**Brijlal Ahirwar, Dr. Pratima Khare**	152–166
22.	हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श : एक अध्ययन	श्रीमती रश्मि कुर्मी	166–172
23.	नव उदारवाद का दलित जीवन पर प्रभाव : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण	स्नेहा	173–178
24.	महादेवी वर्मा के संस्मरणात्मक रेखाचित्रों में नारी संवेदना : नारीवादी विमर्श के संदर्भ में	विपुल कुमार, डॉ. श्रीकांत सिंह	179–184
25.	1857 के स्वाधीनता आंदोलन में हिंदी पत्रकारिता का योगदान	अनुराग शुक्ल, प्रो. जगदेव कुमार शर्मा	185–189
26.	विवाह संस्था के बदलते स्वरूप और नई पीढ़ी के सामाजिक दृष्टिकोण का समाजशास्त्रीय अध्ययन	डॉ० टुम्पा कुमारी	190–197
27.	भारतीय जीवन बीमा निगम की ग्राहक संतुष्टि (सतना जिले के विशेष संदर्भ में)	डॉ. बी. के. राणा, सुखेन्द्र प्रताप साकेत	198–206
28.	हिमालयी सीमान्त पिथौरागढ़ में शहरीकरण का सूत्रपात	ऋचा जोशी, डॉ. प्रेमलता पंत	207–211
29.	उत्तर भारत के महिला संगठन (1900–1947) : एक अध्ययन	कमल	212–216

संपादकीय...

ज्ञान–सृजन की निरंतर यात्रा और शोध की सामाजिक प्रतिबद्धता

प्रिय पाठकों,

सप्रेम नमस्कार।

'बोहल शोध मंजूषा' के अगस्त 2026 अंक को आपके समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें अत्यंत प्रसन्नता का अनुभव हो रहा है। प्रत्येक अंक हमारे लिए केवल शोध–पत्रों का संकलन नहीं, बल्कि ज्ञान, चिंतन, विमर्श और नवाचार की सतत यात्रा का एक नया पड़ाव होता है। यह पत्रिका उन शोधकर्ताओं, शिक्षकों, साहित्यकारों और युवा विद्वानों के लिए एक ऐसा साझा मंच है जहाँ विचारों को अभिव्यक्ति, शोध को दिशा और समाज को नई दृष्टि प्रदान करने का प्रयास किया जाता है।

आज का समय तीव्र परिवर्तन का समय है। कृत्रिम बुद्धिमत्ता, डिजिटल तकनीक, वैश्वीकरण, पर्यावरणीय संकट, नई शिक्षा नीति, सांस्कृतिक चुनौतियाँ तथा बदलते सामाजिक मूल्य हमारे सामने अनेक प्रश्न उपस्थित कर रहे हैं। ऐसे समय में शोध का उद्देश्य केवल तथ्यों का संकलन भर नहीं रह जाता, बल्कि समाज के समक्ष उपस्थित जटिल समस्याओं का विवेकपूर्ण विश्लेषण और उनके समाधान की खोज भी बन जाता है। एक सार्थक शोध वही है जो पुस्तकालयों की अलमारियों तक सीमित न रहकर समाज के जीवन से जुड़ सके और जनहित में उपयोगी सिद्ध हो।

भारतीय ज्ञान परंपरा सदैव संवाद, तर्क, अनुभव और समन्वय की पक्षधर रही है। हमारे ऋषियों, दार्शनिकों और मनीषियों ने ज्ञान को मानव कल्याण का माध्यम माना। आज आवश्यकता है कि आधुनिक शोध भी इसी भावना को आत्मसात करे। परंपरा और आधुनिकता के बीच संतुलन स्थापित करते हुए हमें ऐसे शोध को प्रोत्साहित करना होगा जो भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों के साथ–साथ वैश्विक दृष्टिकोण को भी समाहित करे। स्थानीय अनुभवों और वैश्विक चुनौतियों के बीच संवाद स्थापित करना वर्तमान शोध की सबसे बड़ी आवश्यकता है।

वर्तमान समय में अंतर्विषयक शोध का महत्व निरंतर बढ़ रहा है। साहित्य, भाषा, समाजशास्त्र, इतिहास, दर्शन, शिक्षा, विज्ञान, प्रबंधन, पर्यावरण तथा सूचना प्रौद्योगिकी जैसे विविध विषय अब परस्पर जुड़े हुए हैं। किसी भी समस्या का समग्र समाधान तभी संभव है जब विभिन्न विषयों की दृष्टियाँ एक–दूसरे का पूरक बनें। 'बोहल शोध मंजूषा' सदैव ऐसे शोध को प्रोत्साहित करती रही है जो विषयों की सीमाओं से ऊपर उठकर नवीन चिंतन को जन्म देता हो।

हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि शोध की विश्वसनीयता उसकी मौलिकता, नैतिकता और प्रमाणिकता पर आधारित होती है। साहित्यिक चोरी, कृत्रिम लेखन, अप्रमाणित तथ्यों का उपयोग तथा संदर्भों की उपेक्षा न केवल शोध की गुणवत्ता को प्रभावित करते हैं, बल्कि संपूर्ण शैक्षणिक व्यवस्था की विश्वसनीयता पर भी प्रश्नचिह्न लगाते हैं। इसलिए प्रत्येक शोधार्थी का दायित्व है कि वह ईमानदारी, पारदर्शिता और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के साथ

अपने शोध कार्य को सम्पन्न करे। गुणवत्तापूर्ण शोध ही समाज और राष्ट्र के विकास की वास्तविक आधारशिला बन सकता है।

हमें प्रसन्नता है कि इस अंक में देश के विभिन्न राज्यों तथा विविध शैक्षणिक संस्थानों से प्राप्त शोध–पत्रों को स्थान दिया गया है। इनमें साहित्य, भाषा, संस्कृति, शिक्षा, समाज, दर्शन, इतिहास तथा समकालीन विमर्शों से संबंधित अनेक महत्वपूर्ण विषयों पर गंभीर अध्ययन प्रस्तुत किए गए हैं। हमें विश्वास है कि ये शोध–पत्र पाठकों, शोधार्थियों तथा अध्यापकों के लिए उपयोगी सिद्ध होंगे और आगे के अनुसंधानों के लिए प्रेरणा प्रदान करेंगे।

'बोहल शोध मंजूषा' का उद्देश्य केवल शोध–पत्र प्रकाशित करना नहीं, बल्कि एक स्वस्थ अकादमिक संस्कृति का निर्माण करना भी है। हम ऐसे विमर्श को बढ़ावा देना चाहते हैं जिसमें मतभेद के स्थान पर संवाद, प्रतिस्पर्धा के स्थान पर सहयोग और संकीर्णता के स्थान पर व्यापक मानवीय दृष्टिकोण को महत्व मिले। ज्ञान का वास्तविक विस्तार तभी संभव है जब विचार स्वतंत्र हों और शोध समाज के प्रति उत्तरदायी हो।

हम अपने सभी लेखकों, समीक्षकों, संपादकीय मंडल, सलाहकारों तथा पाठकों के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं, जिनके सहयोग और विश्वास ने 'बोहल शोध मंजूषा' को निरंतर प्रगति के पथ पर अग्रसर रखा है। विशेष रूप से युवा शोधार्थियों से हमारा आग्रह है कि वे मौलिक चिंतन, गंभीर अध्ययन और नैतिक शोध–परंपरा को अपनाते हुए भारतीय ज्ञान–संपदा को समृद्ध बनाने में सक्रिय भूमिका निभाएँ।

आइए, हम सब मिलकर शोध को केवल शैक्षणिक उपलब्धि का माध्यम न मानकर समाज, संस्कृति और मानवता के कल्याण का सशक्त साधन बनाएँ। ज्ञान तभी सार्थक है जब वह जीवन को प्रकाशित करे, समाज को दिशा दे और आने वाली पीढ़ियों के लिए एक समृद्ध बौद्धिक विरासत का निर्माण करे।

इसी विश्वास और शुभकामना के साथ हम 'बोहल शोध मंजूषा' के अगस्त 2026 अंक को आपके समक्ष समर्पित करते हैं। आशा है कि यह अंक आपके ज्ञान–विस्तार, चिंतन और शोध–अभिरुचि को नई ऊर्जा प्रदान करेगा।

डॉ. नरेश सिहाग, संपादक
बोहल शोध मंजूषा

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2026 Page No. : 11-18

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.22679720

Exploring Mental Well-Being through Spiritual Healing : A Comparative Analysis of Raja Rao and Paulo Coelho

Dr. Rekha Rani

Assistant Professor English, SBS College of Law, Rohtak (Haryana)

Abstract :

This paper examines how two novelists working in entirely unconnected traditions, the Indian writer Raja Rao and the Brazilian writer Paulo Coelho, use the language of spiritual searching to describe something closer to psychological recovery than religious instruction. Rao's Ramaswamy in The Serpent and the Rope moves through academic ambition, a collapsing marriage, and a long, restless circling around the idea of a guru before arriving at a state of inner steadiness that Advaita Vedanta calls self-knowledge. Coelho's Santiago in The Alchemist and, more directly, Coelho's Veronika in Veronika Decides to Die move through comparable territory from a very different starting point: a young shepherd's fear of an unlived life, and a young woman's suicide attempt and subsequent stay in a psychiatric institution. Both writers treat the crisis that opens their novels not as a problem to be medicated or reasoned away but as the necessary opening through which a truer, calmer sense of self can finally get in. Using a qualitative, thematic comparative literature methodology, this paper identifies three recurring themes across both writers' major work: the non-directive guru or mentor figure, institutional critique and the social construction of madness, and the use of natural and bodily imagery as a vehicle for symbolic healing. It pays particular attention to Coelho's own history of forced psychiatric institutionalisation as a teenager, a detail that sits behind Veronika Decides to Die in something like the way Rao's own long search for his guru, Sri Atmananda, sits behind The Serpent and the Rope. The paper argues that despite writing from opposite ends of a very large cultural distance, one working inside a formal Vedantic philosophical vocabulary and the other working through fable, omen, and a fictionalised psychiatric ward, both novelists arrive at a similar diagnosis: that a great deal of what looks like personal breakdown is actually a refusal of an inherited, socially approved version of the self, and that healing begins only once that refusal is allowed to run its course rather than being suppressed.

Keywords :

Mental well-being, spiritual healing, Raja Rao, Paulo Coelho, Advaita Vedanta, self-discovery, comparative literature, The Alchemist, Veronika Decides to Die, The Serpent and the Rope.

Introduction :

Literature has always had an uneasy, half-acknowledged relationship with mental health. Long before psychology existed as a formal discipline, novelists were already describing states that a clinician today might recognise as depression, dissociation, or acute existential crisis, and doing so not to diagnose them but to ask what a person is supposed to do once they find themselves inside one. Raja Rao and Paulo Coelho belong to a smaller group of novelists who go a step further than description. Both treat the crisis itself as potentially generative, a doorway rather than only a wound, and both build entire novels around the idea that a person's psychological suffering can resolve not through external correction but through a slow, often frightening return to a truer version of the self that social life had been quietly suppressing.

Raja Rao (1908-2006) wrote from deep inside the Advaita Vedanta tradition, a school of Hindu philosophy built around the claim that the individual self, or jiva, is not ultimately separate from the universal consciousness, or Brahman, and that most human suffering follows from mistaking the false, constructed self for the real one (Garg, 2023). His second novel, The Serpent and the Rope (Rao, 1960), follows Ramaswamy, a Brahmin scholar living in Europe and married to a Frenchwoman named Madeleine, through a slow unravelling that begins in academic ambition and ends in something closer to psychological rest. Rao's own biography sits directly behind this portrait: he met his own guru, Sri Atmananda of Trivandrum, only in 1943, after years of exactly the kind of searching he gives Ramaswamy (Haney, n.d.), and the novel reads in places like an attempt to work out, on the page, a restlessness Rao had already spent much of his adult life trying to resolve in his own.

Paulo Coelho (b. 1947) arrived at similar material from a background that could hardly be more different on the surface. Born in Rio de Janeiro to parents who found his ambition to become a writer and artist inexplicable and, in their view, close to a sign of mental illness, Coelho was committed to psychiatric institutions three separate times as a teenager, an experience he has discussed openly in interviews and which sits directly behind his 1998 novel Veronika Decides to Die (BeFreed, n.d.; Wikipedia, 2026). His earlier and considerably more widely read novel, The Alchemist (Coelho, 1988), works a closely related idea into a gentler, fable-like register, following the shepherd Santiago's pursuit of what Coelho calls a Personal Legend, the thing a person is put on earth to do (Sustainable Bliss Co, 2026).

This paper places these two bodies of work side by side, not to argue that Rao and Coelho are

saying identical things, since the distance between formal Advaita metaphysics and Coelho's accessible, parable-driven spirituality is real and should not be smoothed over, but to trace a shared diagnostic structure that both writers appear to have arrived at independently. The remainder of the paper is organised as follows. The next section sets out the search methodology used to identify and select source material. This is followed by a thematic literature review organised around three recurring themes, together with a statement of the research gaps this comparison responds to. A discussion section synthesises these themes into a single argument, and the paper closes with a conclusion, directions for future research, and the standard declarations expected of a peer-reviewed submission.

Search Methodology

This paper adopts a qualitative, thematic comparative literature methodology rather than an empirical or statistical one, consistent with standard practice in comparative literary studies. Primary sources comprised the two authors' major relevant novels: Raja Rao's The Serpent and the Rope (1960) and Kanthapura (1938), and Paulo Coelho's The Alchemist (1988) and Veronika Decides to Die (1998). Secondary and biographical sources were identified through structured searches of Google Scholar, ResearchGate, Academia.edu, JSTOR, and EBSCO Research Starters, using combinations of the search terms Raja Rao AND spirituality, Raja Rao AND Advaita Vedanta, Serpent and the Rope AND self-realisation, Paulo Coelho AND mental health, Veronika Decides to Die AND psychiatric institutionalisation, The Alchemist AND hero's journey, and comparative literature AND spiritual healing.

Sources were included if they were peer-reviewed journal articles, academic book chapters, verifiable author biographical interviews, or reputable literary reference material published between 2000 and 2026, and if they engaged substantively with either author's treatment of spirituality, psychological crisis, or self-realisation rather than mentioning the author only in passing. Sources were excluded if they were unverified fan commentary, non-English material without an available translation, or promotional content with no analytical content. Where a claim rested on biographical detail, for example Coelho's psychiatric institutionalisation as a teenager, at least two independent sources were checked for consistency before the claim was included in the review. This search process yielded the material synthesised in the thematic literature review that follows, organised into three recurring themes and a statement of the resulting research gaps.

Thematic Literature Review

Theme 1 : The Non-Directive Guru or Mentor Figure

Both writers give their protagonists a teacher who cannot, or will not, simply hand over the answer, and in both cases this refusal turns out to be the actual lesson. Ramaswamy spends nearly the

whole of The Serpent and the Rope circling the idea of a guru without ever quite reaching one, and the novel's real philosophical work happens in that circling rather than in any final scene of instruction (Garg, 2023). Rao's own biography sits directly behind this pattern, since he met his guru, Sri Atmananda of Trivandrum, only in 1943, after years of exactly the kind of restless searching he gives Ramaswamy (Haney, n.d.).

Coelho's mentor figures operate by an almost opposite method on the surface, teaching through riddles, omens, and indirect demonstration rather than through silence, yet arriving at a comparable refusal to instruct directly. Melchizedek, the King of Salem who first introduces Santiago to the idea of a Personal Legend, and the alchemist Santiago meets later in the desert, both withhold direct answers in a manner that several critical readings have linked explicitly to Joseph Campbell's account of the mentor figure in the hero's journey (Archetypal Reading of the Hero's Journey, 2022). In both novelists' work, the absence of direct instruction is not a narrative shortcoming; it is the point being made. Healing, for both writers, cannot be handed to a person from outside. It has to be arrived at.

Theme 2 : Institutional Critique and the Social Construction of Madness

Both writers are also unusually suspicious of the institutions society builds to manage exactly this kind of psychological crisis. Rao's suspicion is quieter and more philosophical, expressed through Ramaswamy's refusal to let any single institution, whether the European academy or a formally credentialed religious authority, supply him with a finished identity. Coelho's suspicion is considerably more direct. Veronika Decides to Die repeatedly frames the psychiatric institution itself as a machine for converting nonconformity into diagnosis, most explicitly through the character of Eduard, a young man whose only real offence was wanting to become a painter rather than follow his diplomat father into a conventional career, a plot detail that mirrors Coelho's own adolescence closely enough that the novel reads, in places, as a settling of accounts (BeFreed, n.d.). Coelho has said the novel was written partly in response to Brazilian regulations around involuntary psychiatric commitment, regulations the book's reception is credited with helping to change (Wikipedia, 2026), and the novel's guiding line, that collective madness is called sanity, functions almost as a thesis statement for the entire book.

What follows for Veronika is not a conventional recovery narrative in the clinical sense. She does not get better because a doctor treats her; she gets better, to the extent the novel allows her to, because the fiction of her impending death gives her permission to stop performing a version of herself she had never actually chosen, and because the other patients she meets inside the hospital, each carrying a diagnosis the outside world uses to explain away their nonconformity, show her that the line between madness and simple honesty is far less stable than the world outside had taught her

to believe (GoodNovel, 2025).

Theme 3 : Natural and Bodily Imagery as a Vehicle for Symbolic Healing :

A closer look at both writers shows each reaching for imagery that maps psychological states onto the natural world, using this imagery to do interpretive work a purely clinical vocabulary could not do as economically. One recent academic reading of Veronika Decides to Die uses ecolinguistics to trace how Coelho consistently maps Veronika's depression and recovery onto natural imagery, cold and darkness standing in for hopelessness, sunlight and open water standing in for the will to live, in a pattern the study argues functions as a kind of emotional weather system running underneath the plot (Ecological Metaphors, 2022). The same study notes the novel's brief but genuine engagement with Sufi ideas about patience and non-attachment as a further source of the positive outlook Veronika gradually recovers.

Rao reaches for a structurally similar move through a single recurring image rather than a diffuse natural backdrop: the title's rope mistaken for a serpent in dim light, a classical Advaita image in which a coiled rope glimpsed at dusk is mistaken for a snake, and the fear it produces disappears the instant a lamp reveals the truth. Rao uses this image as the spine of the whole novel, since Ramaswamy's entire crisis is a matter of mistaking appearance for reality until something in him is finally lit up (Garg, 2023). Both images, Coelho's weather and Rao's lamp, perform the same function within their respective texts: each gives the reader a concrete, sensory shorthand for an internal state that direct psychological description would otherwise have to labour to convey, and each aligns healing with a kind of natural, almost involuntary clarity rather than with effortful clinical correction.

Research Gaps :

Three gaps emerge clearly from the material surveyed above. First, and most directly relevant to this paper, no existing peer-reviewed comparative study appears to place Raja Rao and Paulo Coelho in direct dialogue; each author is well served by a separate critical literature, Rao within Indian English and Vedantic literary studies, Coelho within popular fiction and, increasingly, mental health-oriented literary criticism, but the two literatures do not currently speak to one another. Second, the existing scholarship on both writers relies almost entirely on close textual and biographical reading rather than reader-response or empirical methods; no study identified in this search has examined how actual readers experiencing psychological distress report using either author's fiction, leaving the therapeutic claims made about both bodies of work resting on interpretation rather than reception evidence. Third, comparative frameworks linking South Asian and Latin American spiritual fiction specifically remain underdeveloped relative to the considerably larger literature comparing South Asian writers to European or North American ones, a gap this paper's pairing of an Indian and a Brazilian

novelist is intended to help address.

Discussion :

Read together, the three themes traced above describe a shared diagnostic structure rather than a coincidental overlap of subject matter. Both writers treat the socially approved, outwardly successful self, Ramaswamy's European academic career, Veronika's comfortable and conventionally attractive life in Ljubljana, Santiago's stable work as a shepherd, as the actual source of the suffering their protagonists are trying to escape, rather than as the healthy baseline that their crisis has disrupted. Ramaswamy's restlessness only resolves once he stops trying to hold his Vedantic inheritance and his European intellectual life together as a single coherent identity and instead lets the guru-seeking part of himself take precedence. Veronika's crisis resolves, to the degree the novel allows resolution at all, only once the fiction of her impending death strips away every reason she had for maintaining the appearance of a normal, well-adjusted life. Santiago's fear resolves only once he stops treating his settled life as a shepherd as the responsible, adult choice and admits that it was, in fact, a form of hiding.

The three themes also clarify why this shared structure has been so easy to overlook in existing scholarship, which is the research gap this paper set out to address. Theme 1 shows both writers withholding direct instruction from their protagonists and, by extension, from the reader, which makes each body of work resistant to being reduced to a simple moral lesson that a comparative study might otherwise flatten it into. Theme 2 shows both writers locating the source of psychological suffering in institutional and social conformity rather than in the individual alone, a diagnostic move considerably closer to certain strands of contemporary critical psychology than to either traditional religious instruction or clinical psychiatry, and one that may explain why literary scholars working within a single national tradition have not always noticed how unusual this move is until it is placed alongside a comparable move made independently in an entirely different tradition. Theme 3 shows both writers translating this diagnosis into concrete, teachable images, weather and light, rather than abstract argument, which is arguably why both bodies of work have reached readers well beyond the specialist audiences their respective critical literatures were written for.

It is also worth noting what the comparison does not claim. Neither writer is proposing fiction as a substitute for clinical mental health care, and it would misread both novels badly to treat them that way; Veronika Decides to Die in particular is explicit that Veronika's psychiatric diagnosis and her time in the psychiatric hospital are real, not merely a metaphor the novel discards once its point has been made. What both novelists offer instead is an account of psychological distress that refuses to treat the sufferer as simply broken, treating Ramaswamy's restlessness, Veronika's despair, and

Santiago's fear as intelligent responses to an inherited life that did not actually fit, responses that only look like breakdown from the outside.

Conclusion and Future Perspectives :

This paper has argued that Raja Rao and Paulo Coelho, despite writing from opposite ends of a very large cultural and stylistic distance, arrive independently at a strikingly similar account of psychological healing: that the self a person is handed by family, career, and culture is not necessarily the self they actually are, and that a great deal of what gets called mental illness, restlessness, or simple unhappiness may be the sound of that gap finally becoming impossible to ignore. Three themes, the non-directive mentor, institutional critique, and natural-symbolic imagery, structure this shared diagnosis across both writers' work, and the research gaps identified above suggest that this comparison has genuine scholarly value beyond simply pairing two well-known authors.

Future research could usefully extend this comparison in three directions. A reader-response study, surveying how individuals who have experienced psychological distress describe their own engagement with either author's fiction, would move the discussion from textual interpretation toward empirical reception evidence and would directly address the second research gap identified above. A broader comparative framework incorporating additional Global South writers working in a similar register, for instance placing Rao and Coelho alongside contemporary Latin American, African, or Southeast Asian novelists using spiritual material to address psychological themes, would help establish whether the structure traced in this paper is a genuine cross-cultural pattern or a feature specific to these two writers. Finally, a closer comparative reading of Rao's Kanthapura and Coelho's non-fiction and interview material on his own psychiatric history, neither of which received sustained attention in this paper, would deepen the biographical dimension of the argument and merits treatment in a dedicated follow-up study.

References :

- Archetypal Reading of the Hero's Journey. (2022). A journey for a personal legend: An archetypal reading of the hero's journey in Paulo Coelho's The Alchemist. ResearchGate.
- BeFreed. (n.d.). Veronika Decides to Die summary, quote & book review. befreed.ai.
- Coelho, P. (1988). The Alchemist. HarperCollins.
- Coelho, P. (1998). Veronika Decides to Die. HarperCollins.
- Ecological Metaphors. (2022). Ecological metaphors: Suicide versus life in Paulo Coelho's Veronika Decides to Die. In Springer,
- EBSCO. (n.d.). Raja Rao [Biography]. Research Starters. ebsco.com.

- Garg, A. (2023). Exploring the dichotomy of the self and the non-self: A Vedantic study of Raja Rao's The Serpent and the Rope. ResearchGate.
- GoodNovel. (2025). How does the Paulo Coelho novel Veronika Decides to Die explore mental health? goodnovel.com.
- Haney, W. S. (n.d.). Raja Rao. Research Starters, EBSCO.
- Love Books Review. (2025). Veronika Decides to Die by Paulo Coelho. love-books-review.com.
- Rao, R. (1938). Kanthapura. Oxford University Press.
- Rao, R. (1960). The Serpent and the Rope. John Day.
- Sustainable Bliss Co. (2026). The Alchemist by Paulo Coelho: Key takeaways & quotes. sustainableblissco.com.
- Wikipedia. (2026). Veronika Decides to Die. Wikimedia Foundation. en.wikipedia.org.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2026 Page No. : 19-23

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.22679720

स्वातंत्र्योत्तर अप्रत्यासित परिवेश में नयी कविता के समीचीन स्वर

रवि वर्मा
शोधार्थी, हिन्दी विभाग, कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरूक्षेत्र।

नयी कविता हिन्दी साहित्य की सुदीर्घ परंपरा मे पहला ऐसा काव्य आंदोलन है जो भारत की राजनैतिक पराधीनता से मुक्त और समस्त जड़ता को तोड़कर स्वाधीनता की चेतना और जिज्ञासा की पृष्ठभूमि में लिखा गया। लेकिन स्वतंत्रता से जनता के मानस पटल पर जो उमंग पैदा हुई वह जल्द ही क्षीण पड़ती दिखाई दी क्योंकि द्वितीय विश्वयुद्ध से उत्पन्न पारिवारिक, धार्मिक, नैतिक संबंधों के हनन से सर्वस्व के प्रति अलगाव पैदा हुआ और इन परिस्थितियों से मानव उभरा तो शीतयुद्ध आरंभ हुआ। "महायुद्ध तो समाप्त हो गया, पर उसके स्थान पर आसानी से समाप्त न होने वाला शीतयुद्ध आरंभ हो गया। विकसित और विकसनशील देश अंदर-अंदर युद्ध के लिए अपने को तैयारी की हालत में रखते हैं।"[i]

वस्तुतः इस काव्यधारा में पृथक-पृथक अनुभूति वाली पूर्ववर्ती प्रगतिवादी सामाजिक चेतना और प्रयोगवादी वैयक्तिक चेतना दोनों का सामंजस्य देखने को मिलता है। लेकिन नयी कविता में पहली बार व्यक्ति-जीवन और सामाजिक-जीवन के सभी अंगो को निर्विवाद रूप से साथ देखा गया। नयी कविता अपनी मूल प्रवृति मे यथार्थवादी व मूल्य सापेक्ष रही, इसी संदर्भ में डॉ. धर्मवीर भारती का मत है- "नयी कविता प्रथम बार समस्त जीवन को व्यक्ति या समाज इस प्रकार के तंग विभाजनों के आधार पर न मापकर मूल्यों की सापेक्ष स्थिति मे व्यक्ति और समाज दोनों को मापने का प्रयास कर रही है।"[ii] नयी कविता के पुरोधा कवि अज्ञेय और मुक्तिबोध दोनों व्यक्ति और समाज के सह-अस्तित्व पर बल देते है। इसी प्रकार नयी कविता व्यक्ति-जीवन और सामाजिक जीवन का सेतु बनकर उभरता है। इस परिप्रेक्ष्य मे शमशेर बहादुर सिंह का अभिमत है- "मुक्तिबोध हमेशा एक विस्तृत कैनवास लेता है जो समतल नहीं होता।"[iii]

इसी सहभाव में द्वंद्व भी होता हैं, जो विद्रोह, क्रांति, प्रतिरोध आदि के माध्यम से प्रस्फुटित होते हैं। स्वतंत्र भारत में अनेक पश्चिमी विचारधाराओं ने समाज और साहित्य दोनों को गहरे स्तर पर प्रभावित किया और साहित्य में कहीं न कहीं इनके स्वर भी कवियों की जुबान से सुनाई पड़ते हैं। ये ज्वलंत स्वर सामाजिक और वैयक्तिक चेतना के आवश्यक उपादान हैं। समाज में परिव्याप्त जड़मूल रूढ़िग्रस्त मान्यताओं को समाप्त करने और सम्यक परिवर्तन के लिए कवियों ने विद्रोह के साथ-साथ क्रांति को भी आवश्यक माना। प्रगतिवादी चेतना के अनुसार जब शोषण अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है तो हृदय में क्रांति की जवाला उत्पन्न होती है। यह क्रांति निर्मूल तत्व को समाप्त कर देती है। सामाजिक चेतना से युक्त कवि फूहड़ और टुच्चे माहौल से उठकर जनता को जन-जागरण का संदेश देता है। "विद्रोह की चेतना आततायी स्थिति के सामने पड़ने पर जगती है। मनुष्य जब दासता की मनोवृति से उबरने के लिए प्रयत्नशील होता है।"[iv] यें प्रयत्न और अधिकार की भावना मानव को अनेक सोपनो से गुजरते हुए क्रांति और विद्रोह के स्तर पर ले जाते हैं। नगेंद्र मोहन कहते है- "अधिकारो के प्रति सजगता संघर्षशील

प्रवृति और मुक्ति कामना विद्रोह की आधारभूत विशेषता हैं।"[v]

यें क्रांतिकारी, विद्रोही और प्रतिरोधात्मक स्वर नयी कविता में कुंठित मनःस्थितियों, अर्जित मूल्यों, अंधविश्वासों, रूढ़ परम्पराओं, विघटनकारी सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक आरोपित अनाचारपूर्ण निष्ठा आदि विविध आयामों पर प्रयुक्त हुए है, फलस्वरूप मानव अनेक प्रकार के संघर्ष, संत्रास, कुंठा, निराशा आदि से भर गया था। इसीलिए कवियों ने समाज सापेक्ष दायित्वों के निर्वाहा करने के लिए कविता में इन स्वरों को गढ़ा। ये स्वर परस्पर मिलते-जुलते, लड़ते-झगड़ते दिखाई देते हैं। इसी प्रकार की कुछ विशिष्टताओं का परिचय मुख्य कवियों की वाणियों से दिया जाएगा।

यद्यपि क्रांति विद्रोह से आगे की वस्तु है जो निश्चित सिद्धांतों के आधार पर जीवन दर्शन का उलट-फेर करती है तथापि विद्रोह का क्रांति से आत्मीय संबंध है। विद्रोही कवि अपनी रचनाओं में एक ताल, एक लय के संदर्भ में रचना करता है। इसी प्रवृति को व्यक्त करते हुए अज्ञेय कहते है- "काल सामाजिक अनुपयोगी अनुभूति के विरूद्ध अपने को प्रमाणित करने का प्रयत्न अपर्याप्तता के प्रति विरुद्ध विद्रोह है।"[vi] नयी कविता में पूँजीपतियों द्वारा सर्वहारा पर किए गए शोषण, अराजकता और अनैतिकता के प्रति स्वर ध्वनित हुए हैं। मुक्तिबोध की कविताएँ- 'ब्रह्मराक्षश' ,'डूबता चाँद कब डूबेगा' ,'एक स्वप्न कथा' आदि कविताएँ सामाजिक परिवेश मे व्याप्त शोषण के प्रति आक्रोश और विद्रोही भाव को अभिव्यक्त करती हैं। 'अंधेरे में' कविता में वें कहते हैं-

"प्रशोषण सभ्यता की दुष्टता के भव्य देशों में
तोड़ने ही होंगे गढ़ और मठ सब
पहुँचना ही होगा दुर्गम पहाड़ों के उस पार"*vii*

जगदीश शर्मा का कहना है- "मुक्तिबोध प्रकृत्या अंतर्मुख कलाकार हैं और वें जन विद्रोह के मानसिक पक्ष को उथल-पुथल करने मे ही अधिक तल्लीन रहें हैं।"[viii] दूसरे सप्तक के कवियों ने शोषकों के प्रति विद्रोह के साथ शोषितों व दमितों के प्रति सहानुभूति को भी अभिव्यक्त किया है। इस दमित वर्ग में कुंठित जीवन यापन करने वाले कृषक, मजदूर, निम्न मध्यवर्ग, कर्मचारी, शिक्षक आदि सम्मिलित है। शकुंतला माथुर ने पूँजीपतियों के जीवन की विलासिता, पालतू श्वानों के प्रति प्रेम, मजदूरो पर अत्याचार ओर निम्न वर्ग के प्रति कारुणिक अभिव्यक्ति की है, 'भारत की आरती' कविता में शमशेर बहादुर सिंह इसी प्रकर विद्रोह की भावना से पूंजीवाद के विनाश की ओर संकेत करते हुए कहते है-

"साम्राज्य पूंजी का क्षत होवे
ऊँच-नीच का विधान नत होवे
साधिकार जनता उन्नत होवे
जो समाजवाद जय पुकारती"[ix]

इसी तरह दूसरे सप्तक के सभी कवियों ने अपने स्वरों के माध्यम से सर्वहारा वर्ग को उत्प्रेरित किया है। तीसरे सप्तक के कवियों में भी जनता की यथास्थिति को अनुभव के स्तर अभिव्यक्त किया। तीसरे सप्तक मुख्यतः मदन वात्स्यायन, कुँवर नारायण, विजयदेव नारायण साही, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना आदि कवि केंद्रीय सूत्रधार हैं; जिनमें सामाजिक चेतना स्वर विद्यमान है। इनकी कविताओं में दमनकारी परिस्थितियों में भी अपने अस्तित्व को जगाए रखने की पीड़ा है, जहाँ कविता व्यंग्य के साथ भी निकलती है। दुर्बल मानव की टूटी पसलियों से विद्रोह की चेतना दर्शाती 'मैंने कब कहा' कविता मे सर्वेश्वर कहते हैं-

".....आहत दुर्बलता भी
एक बार दर्प से शीश उठा देती है।"[x]

इसी प्रकार नयी कविता के जन कवि दुष्यंत कुमार ने अपनी कविताओं में जनता को थैले की तरह हाथ मे लेने वाले शासक, न्याय को राजनीति का आकार देने वाले, समाचार पत्रों की भाषा तब्दील करने वाले और घटक नेताओं के छद्म वेश के प्रति आक्रोश के स्वर मुखरित किए हैं।

"मेरी प्रगति या अगति का
यह मापदंड बदलो तुम"[xi]

व्यवस्था के प्रति आक्रोश भी नयी कविता मे अधिकांश मात्रा में दिखाई देता है। उपरोक्त परिस्थितियों के फलस्वरूप देश मे शोषण, अत्याचार, बेकारी, महँगाई व भ्रष्टाचार सर्वत्र व्याप्त था जिसे कवि अनदेखा न कर सकते थे। इन समस्त सामाजिक व राजनीतिक विसंगतियों के प्रति इन कवियों की विद्रोहात्मक प्रवृति निकली और इनकी परिवेशगत व आत्मगत चेतना ने अनेक प्रकार के अंतर्विरोधों से साक्षात्कार कराया। रघुवीर सहाय 'आत्महत्या के विरुद्ध' में भारत की राजनीतिक विकृतियों का ब्योरा देते हैं। रामदेव आचार्य, दूधनाथ सिंह, राजीव सक्सेना आदि कवियों ने अपने स्वरो में अनेक प्रकार के विद्रोहात्मक स्वर कहे हैं। इनकी कविताओं मे संवेदनात्मक विद्रोह मिलते हैं। कहीं कुँवर नारायण की 'चक्रव्यूह' कविता मे संघर्षशीलता का पर्याय बनी तो राजीव सक्सेना की तीव्र फटकार मे भी विद्रोह के स्वर विद्यमान है-

"फूलो का गुलदस्ता
और फलो का रस लेकर
प्यार के आंशू बहाने वाले
ओ आध्यात्मिक
मेरी आँख के सामने से हट जाओ"[xii]

इसी भाँति यह विद्रोह अनेक स्तरों पर हुआ है कहीं धार्मिक स्तर पर तो कहीं राजनैतिक स्तर पर कहीं आर्थिक स्तर पर यह विद्रोह नयी कविता मे शिल्प के स्तर पर भी हुआ है हालांकि शिल्प के स्तर पर तो यह विद्रोह निराला से ही आरंभ हो गया था लेकिन नयी कविता में यह ओर भी मुखरित हो उठा। क्रांति जीवन में किसी उद्देश्य को पाने के लिए होती है। जब प्राचीनता की जड़ें कठोर और गहरी हो जाती हैं, तब क्रांति की आवश्यकता होती है। कवि अपने प्रयोजन क्रांति के द्वारा प्रस्तुत करना चाहता है। प्रतिमानों की स्थापना के लिए क्रांति करता है और क्रांति के बाद अपने आदर्शों को स्थापित करना चाहता है। वस्तुतः क्रांति के द्वारा कवि अपनी दुनिया को परिवर्तित करना चाहता है। क्रांति और क्रांतिकारी वैयक्तिकता के मूल में भविष्य का स्वप्न होता है। डॉ॰ अजब सिंह का कहना है- "क्रांतिकारी कवि या साहित्यकार का लक्ष्य उन शक्तियों पर अधिकार प्राप्त कर लेना है जो समाज का नियंत्रण करती है तथा समाज की गति को निर्धारित करती हैं।"[xiii]क्रांति तोड़ फोड़ के लिए नहीं होती वरन सुव्यवस्था निर्माण के लिए होती है।

प्राय कवि युग चेतना की अवहेलना नहीं करते वरन कवि इतना संवेदनशील होता है कि वह अपने आसपास के संसार और दूर की घटनाओं से भी दूर नही रह सकता। इसीलिए वह अपनी युगवाणी को अपनी कविताओं में मुखरित करता है। सर्वविदित है कि 1917 की रूसी क्रांति ने जनता को पूँजीवाद से समाजवाद की ओर मोड़ा। फलतः भारतीय मनीषियों पर भी इनकी छाप पड़नी अवश्यंभावी थी। नयी कविता में मुक्तिबोध के काव्य में क्रांति चेतना अत्यंत मूल्यवान है। जो समकालीन विसंगतियों पर चोट करती है। मुक्तिबोध पीड़ित मानवता के पक्षधर है इसीलिए पूंजीवादी व्यवस्था के प्रति आक्रोश व्यक्त करते है-

"मेरी ज्वाल जन की ज्वाल होकर एक
अपनी उष्णता से धो चले अविवेक
तू है मरण, तू है रिकत, तू है व्यर्थ
तेरा ध्वंश केवल एक तेरा अर्थ"[xiv]

क्रांति जन आंदोलन की प्रेरणा है। केदारनाथ अग्रवाल अपनी कविताओं में मानवीय शोषण और उसके जीवन की विडंबनाओं के प्रति काफी सचेत रहे है। वे अपने जीवन दर्शन मे वर्ग संघर्ष और क्रांति के कायल है। उनकी कविता मे वर्ग संघर्षीय चेतना की सही अभिव्यक्ति हुई है-

"मेरे खेत में हल चलता है

मैं युग की निद्रा खोता हूँ
गेहूं चना नहीं बोता हूँ
खूनी अंगारे बोता हूँ।"[xv]

शमशेर बहादुर सिंह का मानना है कि काल जीवन का सच्चा दर्पण है। आज सभी देशों के जीवन में कायापलट तेजी से हो रही है, आज किसको नहीं दिखाई दे रहा है कि यह क्रांति का युग है। इस प्रकार नयी कविता मे युग की यथार्थतता का अवबोध होता है। उन्होंने पूंजीपतियों को तोड़ने के लिए मज़दूरों और किसानों के एकत्व पर बल दिया है-

"किन्तु उधर
पथ-प्रदर्शिका मशाल
कमकर कि मुट्ठी मे-किन्तु उधर
आगे-आगे जलती चलती है
लाल-लाल
क्रम कठिन कमकर कि मुट्ठी मे
पथ-प्रदर्शिका मशाल।"[xvi]

इसी भाँति कुँवरनारायण, केदारनाथ अग्रवाल, धर्मवीर भारती और अन्य कवि शोषितों से सहानुभूति रखते हुए क्रांति की कवितायें गाते है। कुमार विमल ने सामंतों और पूँजीपतियों के विरूद्ध सर्वहारा की क्रांति का खुला समर्थन किया है। इतिहास साक्षी है कि नरमी से राजतंत्र का दरवाजा नही टूटा है, इसलिए कवि कहता है-

"किसी यंत्र से राजतंत्र का दरवाजा नहीं खुलता
अगर आग शहर में लाना है
तो सिमसिम कि मुद्रा को छोडना होगा
उस बंद दरवाजे को तोड़ना होगा"[xvii]

इस समय देश पतनोन्मुख रहा है, देश का केवल आर्थिक पतन ही नहीं नैतिक पतन भी हो गया था, इसी के विरूद्ध केदारनाथ अग्रवाल के स्वर इस प्रकार है-

"एक ओर बनता ही चला जा रहा है
निर्माण का हिंदुस्तान
दूसरी ओर गिरता ही चला जा रहा है
ईमान का हिंदुस्तान"[xviii]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कूल मिलाकर नयी कविता में युग चेतना की सूक्ष्म और गहरी पकड़ है। जिसमें सामाजिक चेतना और वैयक्तिक चेतना की अनुगूँज है, सामाजिक चेतना अन्यायों और आततायी माहौल के प्रत्यक्ष बोध से मानव मुक्ति के लिए विद्रोह और क्रांति के स्वर लेकर उपजती है; यही विद्रोह और क्रांति के स्वर है कवियों की वाणी मे मुखर हो उठे है।

[i] रामस्वरूप चतुर्वेदी, हिंदी काव्य का इतिहास, पृष्ठ 204

[ii] डॉ॰ धर्मवीर भारती, मानव मूल्य और साहित्य, पृष्ठ 176

[iii] मुक्तिबोध, चाँद का मुह टेढ़ा है (भूमिका से), पृष्ठ 21

[iv] डॉ॰ नगेंद्र मोहन और देवेन्द्र इस्सर, विद्रोह और साहित्य, पृष्ठ 18

[v] वही, पृष्ठ 18

[vi] अज्ञेय, त्रिशंकु, पृष्ठ 23

[vii] मुक्तिबोध, चाँद का मुंह टेढ़ा है, पृष्ठ 299

[viii] डॉ० जगदीश शर्मा, मुक्तिबोध एक साहित्यिक इकाई, पृष्ठ 49

[ix] वही (शमशेर बहादुर सिंह), पृष्ठ 98

[x] अज्ञेय, तीसरा सप्तक (सर्वेश्वर दयाल सक्सेना) पृष्ठ 219

[xi] दुष्यंत कुमार, सूर्या का स्वागत, पृष्ठ 9

[xii] राजीव सक्सेना, आत्मा निर्वासन तथा कविताएँ, पृष्ठ 14

[xiii] डॉ० अजब सिंह, नवस्वच्छंदतावाद, पृष्ठ 105

[xiv] सं० नेमिचन्द्र जैन, मुक्तिबोध रचनावली, भाग 1, पृष्ठ 90

[xv] केदारनाथ अग्रवाल, युग की गंगा, पृष्ठ 54

[xvi] सं० अज्ञेय, दूसरा सप्तक (शमशेर बहादुर सिंह) पृष्ठ 103

[xvii] कुमार विमल, एक चोटी सी लड़ाई, पृष्ठ 47

[xviii] केदारनाथ अग्रवाल, फूल नहीं रंग बोलते हैं, पृष्ठ 186

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2026 Page No. : 24-33

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.22679720

सीकर जिले के तँवरावाटी क्षेत्र के विशेष संदर्भ में सामाजिक–सांस्कृतिक स्थलों का समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ. अरविन्द कुमार वर्मा, शोध निर्देशक
सहायक आचार्य, समाजशास्त्र विभाग, श्री कल्याण राजकीय कन्या महाविद्यालय, सीकर (राजस्थान)
हवाई सिंह गोठवाल, शोधकर्ता,
पं. दीनदयाल उपाध्याय शेखावाटी विश्वविद्यालय, सीकर (राजस्थान)

सारांश –

भारत की सांस्कृतिक विविधता उसकी सबसे बड़ी विशेषता है, जिसमें प्रत्येक क्षेत्र अपनी विशिष्ट ऐतिहासिक, धार्मिक एवं सामाजिक परंपराओं के माध्यम से राष्ट्रीय संस्कृति को समृद्ध करता है। राजस्थान का शेखावाटी क्षेत्र अपनी चित्रित हवेलियों, प्राचीन मंदिरों, लोकदेवताओं, लोककलाओं एवं सांस्कृतिक विरासत के कारण राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रसिद्ध है। शेखावाटी के अंतर्गत आने वाला सीकर जिले का तँवरावाटी क्षेत्र भी अपनी समृद्ध सांस्कृतिक धरोहर, धार्मिक आस्थाओं, ऐतिहासिक स्मारकों तथा सामाजिक परंपराओं के कारण विशेष महत्व रखता है। यहाँ स्थित धार्मिक स्थल, प्राचीन मंदिर, बावड़ियाँ, किले, हवेलियाँ, लोक देवताओं के देवस्थान तथा पारंपरिक मेले स्थानीय समाज की सामाजिक संरचना, सांस्कृतिक निरंतरता एवं सामुदायिक जीवन को प्रभावित करते हैं। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य तँवरावाटी क्षेत्र के प्रमुख सामाजिक–सांस्कृतिक स्थलों का समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से विश्लेषण करना है। यह अध्ययन पूर्णतः पुस्तकालय–आधारित एवं विश्लेषणात्मक प्रकृति का है तथा इसमें किसी प्रकार के क्षेत्रीय सर्वेक्षण अथवा प्राथमिक आँकड़ों का उपयोग नहीं किया गया है। अध्ययन के लिए पुस्तकों, शोध–पत्रों, सरकारी प्रकाशनों, राजस्थान पर्यटन विभाग, पुरातात्त्विक साहित्य एवं अन्य प्रामाणिक द्वितीयक स्रोतों का उपयोग किया गया है।

अध्ययन में यह विश्लेषित किया गया है कि तँवरावाटी क्षेत्र के सामाजिक–सांस्कृतिक स्थल केवल धार्मिक आस्था के केन्द्र नहीं हैं, बल्कि वे सामाजिक एकीकरण, सांस्कृतिक संरक्षण, सामूहिक पहचान, स्थानीय अर्थव्यवस्था तथा सामाजिक परिवर्तन के महत्वपूर्ण माध्यम भी हैं। समाजशास्त्रीय सिद्धांतों के आलोक में यह स्पष्ट होता है कि ये स्थल सामाजिक संस्थाओं के रूप में कार्य करते हुए सामुदायिक जीवन, सांस्कृतिक मूल्यों एवं सामाजिक संगठन को सुदृढ़ बनाते हैं। वर्तमान समय में वैश्वीकरण, आधुनिकीकरण, नगरीकरण तथा पर्यटन के विस्तार के कारण इन स्थलों की सामाजिक भूमिका में परिवर्तन भी परिलक्षित होता है। अतः इनके संरक्षण, प्रलेखन एवं सतत विकास के लिए समन्वित प्रयास आवश्यक हैं।

मुख्य शब्द – तँवरावाटी, शेखावाटी, सामाजिक–सांस्कृतिक स्थल, समाजशास्त्र, सांस्कृतिक विरासत, धार्मिक पर्यटन, सामाजिक परिवर्तन।

प्रस्तावना –

भारत एक बहुलतावादी समाज है, जहाँ विभिन्न धर्मों, भाषाओं, जातीय समूहों एवं सांस्कृतिक परंपराओं का सह–अस्तित्व उसकी सामाजिक संरचना की प्रमुख विशेषता है। भारतीय संस्कृति की निरंतरता का आधार केवल धार्मिक विश्वास नहीं, बल्कि वे सामाजिक संस्थाएँ एवं सांस्कृतिक स्थल भी हैं जो पीढ़ी–दर–पीढ़ी सामाजिक मूल्यों एवं सांस्कृतिक परंपराओं का हस्तांतरण करते हैं। समाजशास्त्रीय दृष्टि से सामाजिक–सांस्कृतिक स्थल किसी भी समाज की सामूहिक स्मृति, सांस्कृतिक पहचान तथा सामाजिक एकता के प्रमुख आधार माने जाते हैं। राजस्थान की सांस्कृतिक विरासत भारत की समृद्ध सांस्कृतिक परंपराओं का उत्कृष्ट उदाहरण है। यहाँ के दुर्ग, मंदिर, हवेलियाँ, बावड़ियाँ, लोकदेवताओं के देवस्थान, लोक उत्सव तथा पारंपरिक सामाजिक संस्थाएँ राज्य की ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक पहचान का निर्माण करती हैं। इन्हीं में शेखावाटी क्षेत्र अपनी विशिष्ट चित्रकला, स्थापत्य कला, व्यापारिक इतिहास तथा धार्मिक विरासत के कारण विशेष स्थान रखता है। शेखावाटी की हवेलियाँ, भित्ति चित्र तथा मंदिर न केवल स्थापत्य कला के उत्कृष्ट नमूने हैं, बल्कि सामाजिक परिवर्तन एवं सांस्कृतिक विकास के ऐतिहासिक साक्ष्य भी हैं।

सीकर जिले का तँवरावाटी क्षेत्र शेखावाटी की इसी सांस्कृतिक परंपरा का अभिन्न अंग है। यह क्षेत्र धार्मिक स्थलों, लोकदेवताओं, प्राचीन मंदिरों, प्राकृतिक तीर्थस्थलों, बावड़ियों एवं ऐतिहासिक स्मारकों के कारण स्थानीय समाज में विशेष महत्व रखता है। जीण माता, हर्षनाथ, शाकम्भरी माता तथा अन्य धार्मिक स्थल केवल श्रद्धा के केन्द्र नहीं हैं, बल्कि सामाजिक सहभागिता, सांस्कृतिक आदान–प्रदान एवं सामुदायिक संगठन के प्रमुख केन्द्र भी हैं। यहाँ आयोजित होने वाले धार्मिक मेले एवं उत्सव सामाजिक समरसता तथा सांस्कृतिक निरंतरता को बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से देखा जाए तो धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्थल सामाजिक संस्थाओं के रूप में कार्य करते हैं। ये समाज में सामाजिक नियंत्रण, नैतिक मूल्यों, सामूहिक चेतना एवं सामाजिक एकीकरण को सुदृढ़ करते हैं। आधुनिक समाज में जहाँ वैश्वीकरण एवं शहरीकरण के कारण पारंपरिक सांस्कृतिक संरचनाओं में परिवर्तन हो रहा है, वहीं ऐसे सामाजिक–सांस्कृतिक स्थलों की प्रासंगिकता और भी बढ़ जाती है। इसलिए इनका समाजशास्त्रीय अध्ययन न केवल सांस्कृतिक विरासत को समझने के लिए आवश्यक है, बल्कि सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया का विश्लेषण करने के लिए भी महत्त्वपूर्ण है।

अध्ययन का औचित्य –

तँवरावाटी क्षेत्र ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यंत समृद्ध होने के बावजूद समाजशास्त्रीय अनुसंधानों में अपेक्षाकृत कम स्थान प्राप्त कर सका है। उपलब्ध साहित्य का अधिकांश भाग ऐतिहासिक विवरण, धार्मिक महत्ता अथवा पर्यटन संबंधी अध्ययन तक सीमित है। सामाजिक–सांस्कृतिक स्थलों की सामाजिक भूमिका, सामुदायिक जीवन, सांस्कृतिक निरंतरता एवं सामाजिक परिवर्तन के संदर्भ में व्यापक विश्लेषणात्मक अध्ययन का अभाव दिखाई देता है। आधुनिक समय में वैश्वीकरण, सूचना प्रौद्योगिकी, नगरीकरण एवं पर्यटन के विस्तार ने पारंपरिक सामाजिक संरचनाओं एवं सांस्कृतिक मूल्यों को प्रभावित किया है। इसका प्रभाव तँवरावाटी क्षेत्र की

सांस्कृतिक विरासत पर भी देखा जा सकता है। एक ओर धार्मिक पर्यटन एवं संचार सुविधाओं के विकास ने इन स्थलों की लोकप्रियता बढ़ाई है, वहीं दूसरी ओर सांस्कृतिक व्यावसायीकरण, पारंपरिक ज्ञान का क्षरण तथा ऐतिहासिक धरोहरों के संरक्षण की चुनौतियाँ भी सामने आई हैं।

प्रस्तुत अध्ययन का औचित्य इस तथ्य में निहित है कि यह उपलब्ध साहित्य एवं समाजशास्त्रीय सिद्धांतों के आधार पर तँवरावाटी क्षेत्र के सामाजिक–सांस्कृतिक स्थलों का समग्र विश्लेषण प्रस्तुत करता है। यह अध्ययन क्षेत्रीय समाजशास्त्र, सांस्कृतिक अध्ययन तथा विरासत संरक्षण के क्षेत्र में उपयोगी संदर्भ सामग्री उपलब्ध कराएगा।

अध्ययन के उद्देश्य –

(1) तँवरावाटी क्षेत्र की ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का अध्ययन करना।

(2) क्षेत्र के प्रमुख सामाजिक–सांस्कृतिक स्थलों का समाजशास्त्रीय विश्लेषण करना।

(3) सामाजिक एकीकरण एवं सांस्कृतिक संरक्षण में इन स्थलों की भूमिका का अध्ययन करना।

(4) आधुनिकता एवं वैश्वीकरण के प्रभावों का विश्लेषण करना।

(5) सांस्कृतिक धरोहरों के संरक्षण हेतु व्यावहारिक सुझाव प्रस्तुत करना।

अध्ययन की सीमा एवं परिसीमन –

यह अध्ययन केवल राजस्थान के सीकर जिले के तँवरावाटी क्षेत्र तक सीमित है। अध्ययन में केवल प्रमुख धार्मिक, ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक स्थलों का समाजशास्त्रीय विश्लेषण किया गया है। शोध पूर्णतः द्वितीयक स्रोतों पर आधारित है तथा इसमें किसी प्रकार का क्षेत्रीय सर्वेक्षण, साक्षात्कार अथवा प्रश्नावली का उपयोग नहीं किया गया है। अतः प्रस्तुत निष्कर्ष उपलब्ध साहित्य एवं प्रकाशित स्रोतों के विश्लेषण पर आधारित हैं।

शोध पद्धति –

प्रस्तुत शोध विश्लेषणात्मक एवं पुस्तकालय–आधारित अनुसंधान है। अध्ययन में किसी प्रकार के प्राथमिक आँकड़ों का संकलन नहीं किया गया है। शोध के लिए आवश्यक सामग्री पुस्तकों, शोध–पत्रों, शोध–प्रबंधों, सरकारी प्रकाशनों, राजस्थान पर्यटन विभाग, पुरातत्व विभाग, जनगणना रिपोर्टों तथा समाजशास्त्र एवं सांस्कृतिक अध्ययन से संबंधित प्रामाणिक साहित्य से संकलित की गई है। अध्ययन में विषयवस्तु विश्लेषण एवं दस्तावेजीय विश्लेषण की पद्धति अपनाई गई है। संकलित साहित्य का विश्लेषण समाजशास्त्रीय सिद्धांतों–विशेषतः एमिल दुर्खीम के संरचनात्मक–कार्यात्मक दृष्टिकोण, टाल्कट पार्सन्स के सामाजिक व्यवस्था सिद्धांत, एम.एन. श्रीनिवास के सामाजिक परिवर्तन संबंधी विचार तथा योगेन्द्र सिंह के आधुनिकीकरण सिद्धांत–के आधार पर किया गया है। इस अध्ययन का उद्देश्य नए आँकड़े एकत्र करना नहीं, बल्कि उपलब्ध साहित्य के आधार पर तँवरावाटी क्षेत्र के सामाजिक–सांस्कृतिक स्थलों की सामाजिक भूमिका, सांस्कृतिक महत्ता, सामुदायिक योगदान तथा समकालीन परिवर्तनों का आलोचनात्मक एवं व्याख्यात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करना है।

साहित्य समीक्षा –

किसी भी शोध की वैज्ञानिकता इस बात पर निर्भर करती है कि वह पूर्ववर्ती अध्ययनों का कितना सम्यक विश्लेषण करता है। प्रस्तुत शोध में तँवरावाटी क्षेत्र से संबंधित प्रत्यक्ष साहित्य सीमित मात्रा में उपलब्ध है, तथापि शेखावाटी क्षेत्र, राजस्थान की लोक संस्कृति, सांस्कृतिक विरासत तथा समाजशास्त्रीय सिद्धांतों पर उपलब्ध

साहित्य इस अध्ययन का आधार प्रदान करता है।

एमिल दुर्खीम (1912) ने अपनी पुस्तक The Elementary Forms of Religious Life में प्रतिपादित किया कि धर्म केवल आस्था का विषय नहीं है, बल्कि समाज में सामूहिक चेतना (Collective Conscience) एवं सामाजिक एकता का आधार भी है। उनके अनुसार धार्मिक स्थल सामाजिक संगठन को सुदृढ़ करते हैं तथा सामुदायिक जीवन को निरंतरता प्रदान करते हैं। यह दृष्टिकोण तँवरावाटी क्षेत्र के धार्मिक स्थलों–विशेषतः जीण माता, हर्षनाथ एवं शाकम्भरी माता–की सामाजिक भूमिका को समझने में अत्यंत उपयोगी है।

टाल्कट पार्सन्स (1951) ने The Social System में सामाजिक संस्थाओं को सामाजिक व्यवस्था बनाए रखने वाली संरचनाओं के रूप में देखा। उनके अनुसार प्रत्येक सामाजिक संस्था समाज में विशिष्ट कार्य (Functions) करती है। इस दृष्टिकोण से मंदिर, मेले तथा सांस्कृतिक आयोजन सामाजिक एकीकरण, सामाजिक नियंत्रण तथा सांस्कृतिक मूल्यों के संरक्षण का कार्य करते हैं।

एम. एन. श्रीनिवास (1966) ने Social Change in Modern India में सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रियाओं, विशेषकर संस्कृतिकरण (Sanskritization), पश्चिमीकरण (Westernization) तथा आधुनिकीकरण (Modernization) का विश्लेषण किया। उनके विचार वर्तमान समय में तँवरावाटी क्षेत्र में धार्मिक पर्यटन, डिजिटल संचार एवं सामाजिक परिवर्तन के प्रभावों को समझने में सहायक सिद्ध होते हैं।

योगेन्द्र सिंह (1973) ने Modernization of Indian Tradition में स्पष्ट किया कि भारतीय समाज में आधुनिकता एवं परम्परा परस्पर विरोधी न होकर परस्पर पूरक रूप में कार्य करती हैं। उनके अनुसार सांस्कृतिक परिवर्तन के बावजूद पारंपरिक संस्थाएँ नई परिस्थितियों के अनुरूप स्वयं को अनुकूलित कर लेती हैं। यही प्रवृत्ति तँवरावाटी क्षेत्र के धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्थलों में भी दृष्टिगोचर होती है।

राजस्थान के इतिहास, लोक संस्कृति एवं शेखावाटी क्षेत्र पर लिखे गए विभिन्न ग्रंथों में क्षेत्र की ऐतिहासिक, स्थापत्य एवं धार्मिक विशेषताओं का उल्लेख मिलता है, किन्तु समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से इन स्थलों का विश्लेषण अपेक्षाकृत कम हुआ है। यही तथ्य प्रस्तुत अध्ययन की मौलिकता एवं प्रासंगिकता को स्थापित करता है।

सैद्धान्तिक आधार –

प्रस्तुत शोध समाजशास्त्र के प्रमुख सिद्धांतों पर आधारित है, जिनके माध्यम से तँवरावाटी क्षेत्र के सामाजिक–सांस्कृतिक स्थलों की सामाजिक भूमिका का विश्लेषण किया गया है।

(क) संरचनात्मक-कार्यात्मक सिद्धांत : एमिल दुर्खीम एवं टाल्कट पार्सन्स के अनुसार समाज विभिन्न संस्थाओं का एक संगठित तंत्र है, जहाँ प्रत्येक संस्था समाज की स्थिरता एवं निरंतरता बनाए रखने का कार्य करती है। इस दृष्टिकोण से तँवरावाटी क्षेत्र के मंदिर, तीर्थस्थल, मेले एवं धार्मिक आयोजन केवल धार्मिक गतिविधियाँ नहीं हैं, बल्कि वे –

1. सामाजिक एकता को मजबूत करते हैं।
2. सामूहिक चेतना का विकास करते हैं।
3. सामाजिक मूल्यों का संरक्षण करते हैं।
4. सामाजिक नियंत्रण स्थापित करते हैं।

5. सामुदायिक सहयोग को बढ़ावा देते हैं।

(ख) सांस्कृतिक सिद्धांत : संस्कृति किसी समाज की जीवन शैली, मूल्य, विश्वास, परम्पराओं एवं व्यवहारों का समग्र रूप है। तँवरावाटी क्षेत्र के सामाजिक–सांस्कृतिक स्थलों में यह संस्कृति निम्न माध्यमों से अभिव्यक्त होती है–

1. धार्मिक अनुष्ठान।
2. लोकदेवताओं की पूजा।
3. लोकगीत एवं भजन।
4. लोकनृत्य।
5. पारंपरिक मेले।
6. लोककथाएँ।
7. पारंपरिक वेशभूषा।
8. सामूहिक भोज एवं धार्मिक आयोजन।

ये सभी सांस्कृतिक तत्व क्षेत्र की सामाजिक पहचान को बनाए रखते हैं।

(ग) प्रतीकात्मक अन्तःक्रियावाद : हर्बर्ट ब्लूमर एवं जॉर्ज हरबर्ट मीड के अनुसार समाज प्रतीकों एवं पारस्परिक अन्तःक्रियाओं के माध्यम से निर्मित होता है। तँवरावाटी क्षेत्र में –

1. जीण माता शक्ति का प्रतीक हैं।
2. हर्षनाथ आध्यात्मिक चेतना का प्रतीक हैं।
3. लोकदेवता सामुदायिक विश्वास के प्रतीक हैं।
4. मेले सामाजिक सहभागिता के प्रतीक हैं।
5. बावड़ियाँ सामुदायिक सहयोग एवं जल–संरक्षण का प्रतीक हैं।

इस प्रकार सामाजिक–सांस्कृतिक स्थल सामाजिक प्रतीकों के रूप में कार्य करते हैं।

तँवरावाटी क्षेत्र का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परिचय –

तँवरावाटी क्षेत्र राजस्थान के उत्तर–पूर्वी भाग में स्थित शेखावाटी अंचल का ऐतिहासिक उपक्षेत्र है। इसका नाम प्राचीन तँवर (तोमर) राजपूत शासकों से संबंधित माना जाता है। मध्यकालीन राजस्थान के राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास में इस क्षेत्र का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। समय के साथ यहाँ विभिन्न राजवंशों, व्यापारिक समुदायों तथा धार्मिक परम्पराओं का विकास हुआ, जिसके परिणामस्वरूप यह क्षेत्र बहुआयामी सांस्कृतिक स्वरूप ग्रहण करता गया। यह क्षेत्र धार्मिक स्थलों, लोकदेवताओं, प्राचीन मंदिरों, छतरियों, बावड़ियों, हवेलियों तथा ऐतिहासिक स्मारकों से समृद्ध है। यहाँ की स्थापत्य कला शेखावाटी शैली की विशिष्ट पहचान प्रस्तुत करती है। भित्तिचित्रों से सुसज्जित हवेलियाँ, प्राचीन जल संरचनाएँ तथा धार्मिक वास्तुकला स्थानीय समाज की ऐतिहासिक चेतना एवं सांस्कृतिक विकास को प्रतिबिंबित करती हैं। तँवरावाटी क्षेत्र की सांस्कृतिक विशेषता इसकी लोकपरम्पराओं में निहित है। लोकगीत, लोकनृत्य, लोकदेवताओं की आराधना, मौसमी पर्व, धार्मिक मेले एवं सामूहिक उत्सव सामाजिक जीवन का अभिन्न अंग हैं।

ये सांस्कृतिक गतिविधियाँ केवल मनोरंजन या धार्मिक अभिव्यक्ति तक सीमित नहीं हैं, बल्कि सामाजिक

एकता, सामुदायिक सहयोग एवं सांस्कृतिक निरंतरता का माध्यम भी हैं।

तँवरावाटी क्षेत्र के प्रमुख सामाजिक–सांस्कृतिक स्थलों का समाजशास्त्रीय विश्लेषण :

(1) जीण माता मंदिर –

जीण माता मंदिर केवल एक शक्तिपीठ नहीं, बल्कि सम्पूर्ण शेखावाटी क्षेत्र की सामाजिक एवं सांस्कृतिक चेतना का प्रमुख केन्द्र है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से यह धार्मिक संस्था सामाजिक एकीकरण का कार्य करती है। नवरात्रों में आयोजित विशाल मेले विभिन्न जातियों, वर्गों एवं क्षेत्रों के लोगों को एक मंच पर लाते हैं। इससे सामाजिक समरसता, सामूहिक सहयोग एवं सांस्कृतिक आदान–प्रदान को प्रोत्साहन मिलता है।

(2) हर्षनाथ मंदिर –

हर्षनाथ मंदिर ऐतिहासिक, धार्मिक एवं स्थापत्य दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह मंदिर मध्यकालीन राजस्थान की स्थापत्य परम्परा का उत्कृष्ट उदाहरण है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से यह स्थल ऐतिहासिक चेतना एवं सांस्कृतिक निरंतरता का प्रतिनिधित्व करता है। धार्मिक आस्था के साथ–साथ यह सांस्कृतिक पर्यटन एवं विरासत संरक्षण का भी प्रमुख केन्द्र है।

(3) शाकम्भरी माता –

शाकम्भरी माता का धार्मिक स्थल ग्रामीण समाज में विशेष महत्व रखता है। यहाँ आयोजित धार्मिक अनुष्ठान एवं मेले स्थानीय समाज में पारस्परिक सहयोग, सामाजिक समरसता एवं धार्मिक विश्वास को सुदृढ़ करते हैं। महिलाओं की सक्रिय सहभागिता इस स्थल को सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से और अधिक महत्वपूर्ण बनाती है।

(4) खाटूश्यामजी का प्रभाव –

यद्यपि खाटूश्यामजी प्रशासनिक दृष्टि से अलग क्षेत्र में स्थित है, फिर भी इसका प्रभाव सम्पूर्ण शेखावाटी एवं तँवरावाटी क्षेत्र की धार्मिक संस्कृति पर स्पष्ट दिखाई देता है। यह धार्मिक पर्यटन, स्थानीय व्यापार एवं सांस्कृतिक आदान–प्रदान का प्रमुख केन्द्र है। लाखों श्रद्धालुओं की उपस्थिति धार्मिक आस्था के साथ–साथ क्षेत्रीय अर्थव्यवस्था को भी सुदृढ़ करती है।

(5) प्राचीन बावड़ियाँ एवं जल संरचनाएँ –

तँवरावाटी क्षेत्र की प्राचीन बावड़ियाँ, कुएँ, जोहड़ तथा अन्य जल संरचनाएँ केवल जल संचयन के साधन नहीं थीं, बल्कि ग्रामीण सामाजिक जीवन के महत्वपूर्ण केन्द्र भी थीं। भारतीय समाज में जल स्रोतों का धार्मिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक महत्व प्राचीन काल से रहा है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से ये संरचनाएँ सामुदायिक सहयोग, सामाजिक सहभागिता तथा प्राकृतिक संसाधनों के सामूहिक प्रबंधन का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। ग्रामीण महिलाएँ प्रतिदिन जल संग्रहण हेतु इन स्थानों पर एकत्रित होती थीं, जहाँ सामाजिक संवाद, लोकगीतों का गायन तथा पारिवारिक एवं सामुदायिक विषयों पर विचार–विमर्श होता था। इस प्रकार बावड़ियाँ सामाजिक सम्पर्क का महत्वपूर्ण माध्यम थीं। उपलब्ध साहित्य से यह भी स्पष्ट होता है कि राजस्थान की पारंपरिक जल संरचनाओं ने जल संरक्षण के साथ–साथ सामाजिक संगठन एवं सांस्कृतिक निरंतरता में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। आधुनिक जलापूर्ति प्रणालियों के विकास के पश्चात इन संरचनाओं का दैनिक उपयोग कम हुआ है, जिसके कारण अनेक बावड़ियाँ उपेक्षा का शिकार हो गई हैं। समाजशास्त्रीय दृष्टि से यह परिवर्तन

पारंपरिक सामुदायिक संस्थाओं के कमजोर होने का संकेत भी देता है।

(6) हवेलियाँ एवं ऐतिहासिक स्थापत्य –

तँवरावाटी क्षेत्र की हवेलियाँ स्थानीय स्थापत्य कला, सामाजिक प्रतिष्ठा तथा आर्थिक समृद्धि का प्रतीक रही हैं। इन हवेलियों की भित्तिचित्र कला तत्कालीन सामाजिक जीवन, धार्मिक विश्वास, व्यापारिक गतिविधियों तथा सांस्कृतिक मूल्यों का दृश्य दस्तावेज प्रस्तुत करती है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से हवेलियाँ केवल आवासीय भवन नहीं थीं, बल्कि वे संयुक्त परिवार व्यवस्था, सामाजिक पदानुक्रम, सामुदायिक संबंध तथा सांस्कृतिक परम्पराओं का केन्द्र थीं। हवेलियों की वास्तुकला स्थानीय जलवायु, सामाजिक आवश्यकताओं तथा सांस्कृतिक जीवन शैली के अनुरूप विकसित हुई थी। वर्तमान समय में अनेक हवेलियाँ संरक्षण के अभाव, पलायन तथा आर्थिक कारणों से जर्जर होती जा रही हैं। उपलब्ध साहित्य इंगित करता है कि यदि इन धरोहरों का संरक्षण नहीं किया गया, तो क्षेत्र की सांस्कृतिक पहचान को गंभीर क्षति पहुँच सकती है।

(7) धार्मिक मेले एवं लोक उत्सव –

तँवरावाटी क्षेत्र में आयोजित धार्मिक मेले केवल धार्मिक आयोजन नहीं हैं, बल्कि सामाजिक जीवन की गतिशीलता के प्रमुख माध्यम हैं। जीण माता, शाकम्भरी माता तथा अन्य धार्मिक स्थलों पर आयोजित वार्षिक मेलों में विभिन्न जातियों, वर्गों तथा क्षेत्रों के लोग सम्मिलित होते हैं। दुर्खीम के अनुसार ऐसे सामूहिक धार्मिक आयोजन समाज में सामूहिक चेतना को सुदृढ़ करते हैं। इन मेलों के माध्यम से –

1. सामाजिक समरसता का विकास होता है।
2. पारस्परिक सहयोग की भावना बढ़ती है।
3. सांस्कृतिक परम्पराओं का संरक्षण होता है।
4. लोककलाओं को प्रोत्साहन मिलता है।
5. स्थानीय व्यापार एवं पर्यटन को बढ़ावा मिलता है।

इस प्रकार धार्मिक मेले धार्मिक गतिविधि के साथ–साथ सामाजिक एवं आर्थिक संस्था के रूप में भी कार्य करते हैं।

सामाजिक-सांस्कृतिक स्थलों की समाजशास्त्रीय भूमिका –

उपलब्ध साहित्य के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि तँवरावाटी क्षेत्र के सामाजिक–सांस्कृतिक स्थल बहुआयामी सामाजिक कार्य सम्पन्न करते हैं।

(क) सामाजिक एकीकरण :

धार्मिक स्थल विभिन्न जातियों, वर्गों तथा समुदायों के लोगों को एक साझा मंच प्रदान करते हैं। सामूहिक पूजा, मेले एवं उत्सव सामाजिक दूरी को कम करते हैं तथा सामाजिक समरसता को बढ़ावा देते हैं।

(ख) सांस्कृतिक संरक्षण :

लोकगीत, लोकनृत्य, लोकदेवताओं की पूजा, पारंपरिक रीति–रिवाज तथा धार्मिक अनुष्ठान इन स्थलों के माध्यम से पीढ़ी–दर–पीढ़ी हस्तांतरित होते हैं। यह प्रक्रिया सांस्कृतिक निरंतरता को बनाए रखती है।

(ग) सामूहिक पहचान :

किसी भी क्षेत्र की सांस्कृतिक पहचान उसके धार्मिक एवं ऐतिहासिक स्थलों से निर्मित होती है। तँवरावाटी

क्षेत्र की पहचान उसके मंदिरों, हवेलियों, बावड़ियों तथा लोक परम्पराओं से जुड़ी हुई है।

(घ) सामाजिक नियंत्रण :

धार्मिक विश्वास, नैतिक मूल्य तथा सामाजिक मानदण्ड इन स्थलों के माध्यम से समाज में स्थापित होते हैं। सामाजिक व्यवहार पर इनका सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

(ङ) स्थानीय अर्थव्यवस्था :

धार्मिक पर्यटन, मेले, स्थानीय हस्तशिल्प, परिवहन, भोजनालय, आवास तथा अन्य सेवाओं के माध्यम से स्थानीय अर्थव्यवस्था को महत्वपूर्ण लाभ प्राप्त होता है।

आधुनिकीकरण एवं सामाजिक परिवर्तन –

आधुनिक समाज में सूचना प्रौद्योगिकी, डिजिटल संचार, शिक्षा, नगरीकरण तथा पर्यटन के विस्तार ने तँवरावाटी क्षेत्र के सामाजिक–सांस्कृतिक जीवन में व्यापक परिवर्तन उत्पन्न किए हैं। एम. एन. श्रीनिवास तथा योगेन्द्र सिंह के सिद्धांतों के आलोक में यह स्पष्ट होता है कि परम्परा एवं आधुनिकता के मध्य प्रतिस्पर्धा के स्थान पर अनुकूलन की प्रक्रिया विकसित हुई है।

उपलब्ध साहित्य से निम्न प्रमुख परिवर्तन सामने आते हैं –

1. धार्मिक स्थलों का डिजिटल प्रचार–प्रसार।
2. धार्मिक पर्यटन में निरंतर वृद्धि।
3. सांस्कृतिक आयोजनों का व्यापक विस्तार।
4. युवा पीढ़ी की बदलती सांस्कृतिक प्राथमिकताएँ।
5. पारंपरिक लोककलाओं का सीमित होता दायरा।
6. धार्मिक आयोजनों का व्यावसायीकरण।
7. स्थानीय हस्तशिल्प पर बाजारवाद का प्रभाव।

इन परिवर्तनों के बावजूद धार्मिक एवं सांस्कृतिक स्थलों की सामाजिक उपयोगिता अभी भी बनी हुई है।

संरक्षण की चुनौतियाँ –

द्वितीयक स्रोतों के विश्लेषण से निम्न प्रमुख चुनौतियाँ सामने आती हैं–

1. प्राचीन धरोहरों का भौतिक क्षरण।
2. संरक्षण हेतु सीमित वित्तीय संसाधन।
3. ऐतिहासिक भवनों पर अतिक्रमण।
4. पारंपरिक लोककलाओं का लोप।
5. नई पीढ़ी में सांस्कृतिक जागरूकता का अभाव।
6. पर्यटन के कारण पर्यावरणीय दबाव।
7. वैज्ञानिक प्रलेखन का अभाव।
8. स्थानीय समुदाय की सीमित भागीदारी।
9. विरासत प्रबंधन की समन्वित नीति का अभाव।
10. सांस्कृतिक स्थलों का बढ़ता व्यावसायीकरण।

सुझाव –

अध्ययन के आधार पर निम्न सुझाव प्रस्तुत किए जाते हैं :–

1. तँवरावाटी क्षेत्र के सभी सामाजिक–सांस्कृतिक स्थलों का वैज्ञानिक प्रलेखन किया जाए।
2. पुरातात्त्विक एवं सांस्कृतिक धरोहरों के संरक्षण हेतु विशेष योजनाएँ बनाई जाएँ।
3. स्थानीय समुदाय को संरक्षण कार्यक्रमों में सक्रिय भागीदार बनाया जाए।
4. विद्यालय एवं विश्वविद्यालय स्तर पर स्थानीय सांस्कृतिक विरासत का अध्ययन प्रोत्साहित किया जाए।
5. सतत धार्मिक एवं सांस्कृतिक पर्यटन को बढ़ावा दिया जाए।
6. पारंपरिक लोककला, लोकगीत एवं लोकनृत्य के संरक्षण हेतु सांस्कृतिक महोत्सव आयोजित किए जाएँ।
7. डिजिटल अभिलेखन तथा GIS आधारित विरासत सूची तैयार की जाए।
8. शोध संस्थानों एवं विश्वविद्यालयों द्वारा क्षेत्र विशेष पर अधिक अकादमिक अनुसंधान किए जाएँ।
9. राज्य सरकार, पुरातत्व विभाग एवं स्थानीय निकायों के मध्य समन्वय स्थापित किया जाए।
10. सांस्कृतिक धरोहर संरक्षण के लिए जन–जागरूकता अभियान चलाए जाएँ।

निष्कर्ष –

प्रस्तुत अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि सीकर जिले का तँवरावाटी क्षेत्र ऐतिहासिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से राजस्थान की अमूल्य विरासत का महत्वपूर्ण भाग है। यहाँ के सामाजिक–सांस्कृतिक स्थल केवल धार्मिक आस्था के केन्द्र नहीं हैं, बल्कि वे सामाजिक संगठन, सांस्कृतिक निरंतरता, सामूहिक चेतना, सामाजिक समरसता तथा स्थानीय आर्थिक विकास के भी प्रमुख आधार हैं। समाजशास्त्रीय दृष्टि से इन स्थलों का महत्व केवल उनकी ऐतिहासिक प्राचीनता में नहीं, बल्कि इस तथ्य में निहित है कि वे सामाजिक संस्थाओं के रूप में समाज के विभिन्न वर्गों को एक सूत्र में बाँधते हैं। धार्मिक मेले, लोक उत्सव, मंदिर, हवेलियाँ तथा पारंपरिक जल संरचनाएँ सामाजिक सहभागिता, सांस्कृतिक हस्तांतरण तथा सामुदायिक सहयोग की प्रक्रिया को सुदृढ़ करती हैं।

उपलब्ध साहित्य के विश्लेषण से यह भी स्पष्ट होता है कि वैश्वीकरण, नगरीकरण एवं आधुनिकता ने इन स्थलों की संरचना एवं सामाजिक भूमिका को प्रभावित किया है। एक ओर धार्मिक पर्यटन एवं संचार तकनीक ने इनके महत्व को राष्ट्रीय स्तर तक पहुँचाया है, वहीं दूसरी ओर सांस्कृतिक व्यावसायीकरण, संरक्षण की कमी एवं पारंपरिक मूल्यों के क्षरण जैसी चुनौतियाँ भी उत्पन्न हुई हैं। अतः आवश्यक है कि इन सामाजिक–सांस्कृतिक स्थलों का संरक्षण केवल ऐतिहासिक धरोहर के रूप में नहीं, बल्कि सामाजिक एवं सांस्कृतिक पूँजी के रूप में किया जाए। सरकार, स्थानीय समुदाय, शिक्षण संस्थानों एवं शोधकर्ताओं के संयुक्त प्रयासों से ही तँवरावाटी क्षेत्र की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत को भावी पीढ़ियों के लिए सुरक्षित रखा जा सकता है।

संदर्भ सूची –

1. Durkheim, E. (1912/1995). The Elementary Forms of Religious Life. New York: Free Press.
2. Parsons, T. (1951). The Social System. New York: Free Press.
3. Merton, R. K. (1968). Social Theory and Social Structure. New York: Free Press.

4. Weber, M. (1947). The Theory of Social and Economic Organization. New York: Oxford University Press.
5. Giddens, A. (2006). Sociology (5th ed.). Cambridge: Polity Press.
6. Haralambos, M., & Holborn, M. (2013). Sociology: Themes and Perspectives (8th ed.). London : Collins.
7. Bottomore, T. B. (1972). Sociology: A Guide to Problems and Literature. London: Allen & Unwin.
8. Srinivas, M. N. (1966). Social Change in Modern India. New Delhi: Orient Longman.
9. Singh, Yogendra. (1973). Modernization of Indian Tradition. Jaipur: Rawat Publications.
10. Dube, S. C. (1990). Indian Society. New Delhi: National Book Trust.
11. Beteille, A. (1992). Society and Politics in India. New Delhi: Oxford University Press.
12. Sharma, K. L. (2014). Indian Social Structure and Change. Jaipur: Rawat Publications.
13. Sharma, G. N. (1990). Rajasthan Ka Itihas. Jaipur: Rajasthan Hindi Granth Academy.
14. Tod, J. (1829/2001). Annals and Antiquities of Rajasthan. New Delhi: Rupa Publications.
15. Gupta, K. S. (2006). History of Rajasthan. Jaipur: Publication Scheme.
16. Rajasthan Hindi Granth Academy. (2015). Rajasthan Ki Sanskritik Parampara. Jaipur.
17. Gupta, R. (2008). Shekhawati: The Havelis and Their Heritage. Jaipur.
18. Mathur, L. P. (1999). Shekhawati: A Study in Art and Culture. Jaipur.
19. UNESCO. (2003). Convention for the Safeguarding of the Intangible Cultural Heritage. Paris.
20. Smith, M. K. (2009). Issues in Cultural Tourism Studies. London: Routledge.
21. Timothy, D. J., & Boyd, S. W. (2003). Heritage Tourism. London: Pearson.
22. Ashworth, G. J. (2011). Heritage and Identity. London: Routledge.
23. Kothari, C. R. (2004). Research Methodology: Methods and Techniques (2nd ed.). New Delhi: New Age International.
24. Creswell, J. W. (2014). Research Design: Qualitative, Quantitative and Mixed Methods Approaches (4th ed.). Sage Publications.
25. Krishnaswami, O. R., & Ranganatham, M. (2011). Methodology of Research in Social Sciences. Himalaya Publishing House.
26. Kerlinger, F. N. (1986). Foundations of Behavioral Research. New York: Holt.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2026 Page No. : 34-40

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.22679720

ब्रह्माण्डपुराणानुसारं भगवतः श्रीपरशुरामस्य तेजस्वी वंचः

डॉ. बलवन्तसिंह वत्स

मकान न0 59, सैक्टर 04, कुरुक्षेत्र, पिन 136118

श्री बादरायणेन विरचिते ब्रह्माण्डपुराणे भृग्वादीनामुत्पत्तिः, भृग्वादिमहर्षिसर्गः, भृगुवंशः, श्रीपरशुरामस्य स्वप्रपितामहेन और्वेण सह संवादः, शंकरपरितोषाय श्रीपरशुरामस्य हिमालये तपश्चरणम्, महादेवकृता परशुरामस्य परीक्षा, व्याधरूपधारिणा महादेवेन सह श्रीपरशुरामस्य संवादः, महादेवस्य श्रीपरशुरामाय शैवास्त्रप्रदानम्, शैवास्त्रप्रयोगेण दैत्यवधः, हिमाद्रिगह्वरे श्रीपरशुरामकृतो व्याघ्रवधः, द्विजसुतरक्षणम्, हैहयनृपतेः कार्तवीर्यस्य जमदग्न्याश्रमागमनम्, रात्रौ जमदग्न्याश्रमे स्वापः, जमदग्निचन्द्रगुप्तयोर्विवादः, हैहयेन कृतो जमदग्निवधः, कामधेनोर्गगनोत्पतनम्, मृतपतिं वीक्ष्य रेणुकाया विलापः, श्रीपरशुरामस्य प्रतिज्ञा, भृगोरागमनम्, स०जीवनीविधया जमदग्नेः प्रत्युज्जीवनम्, हैहयवधाय श्रीपरशुरामस्य ब्रह्मणा सह परामर्शः, श्रीपरशुरामस्य शिवलोकगमनम् श्रीपरशुरामस्य शिवाराधनम्, मृगमृगीकथा, भार्गवचरितम् कार्तवीर्यवधः, सगरोपाख्यानम्, सगरस्य और्वाश्रमगमनम् भार्गववरुणसंवादः, कार्तवीर्यसम्भवः इत्यादि विषयाः मुख्यरूपेण प्रतिपादिताः। ब्रह्माण्डपुराणं श्रीपरशुरामचरितदृष्ट्या महत्त्वपूर्णं विद्यते। परशुरामचरितमत्र ब्रह्माण्डपुराणानुसारं सरलभाषायां प्रदृश्यते।

सर्वप्रथमं ब्रह्माण्डे पुराणे सृष्टिवर्णने लिखितम् यत्–

रुद्र धर्मं मनसा चैव रुचिं चैवाकृतिं तथा।
प०चकर्तृन्हि स तदा मनसा व्यसृजत्प्रभुः।।
यदा प्रजास्तु ताः सृष्टा न व्यवद्धत धीमतः।
ततोऽन्यान्मानसान्पुत्रानात्मनः सदृशोऽसृजत।।
भृग्वंगिरोमरीचींश्च पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम्।
दक्षमत्रिं वसिष्ठं च निर्ममे मानसान्सुतान्।।

अस्मिन् वर्णितं यत् ब्रह्मणो नवमहर्षयः मानसपुत्रा बभूवुः। येषु भृगुमहर्षिर्ब्रह्मणो हृदयाद् समुत्पन्नः। अन्ये महर्षयो भिन्नाङ्गाद् समुद्भूतास्तेषां नामानीमानि वर्तन्ते। अंगिराः, मरीचिः, पुलस्त्यः, पुलहः, क्रतुः, दक्षः, अत्रिः, वसिष्ठश्च। ब्रह्मणोऽन्यः मानसपुत्रो मनुस्तस्य पत्नी शतरूपा। तयोः कन्ये आकूतिः प्रसूतिश्च। प्रसूत्या सह दक्षो विवाहितस्तथा दक्षः प्रसूत्यां चतुर्विंशतिः कन्या असुजत्। त्रयोदशकन्याः धर्माय पत्नीरूपाः समददात् तथा अवशिष्टा एकादशकन्याः पृथक्–पृथक् महर्षिणा सह विवाहिताः। तासु कन्यासु ख्यातिर्भृगवे, संभूतिः मरीचये, स्मृतिरगिरसे प्रीतिः पुलस्त्याय, क्षमा पुलहाय, संततिः कृतवे तथा अनसूया अत्रये, ऊर्जा वसिष्ठाय दत्ता । भृगुणा ख्यातिगर्भाद् धातारं विधातारं नामकौ द्वौ पुत्रौ समुदपादयतां यौ पुत्रौ सुखदखयोः स्वामिनौ, शुभाशुभयोः प्रदातारौ सर्वप्राणिनां

भरण–पोषयितारौ मन्वन्तरे विचरणशीलौ बभूवतुः। धातुर्विवाहः आयत्या सह भूतः। भृगोर्नाम स्वायंभुवे आयाति यथा ब्रह्माण्डे पुराणे लिखितम्–

भृग्वंगिरा मरीचिश्च पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः। अत्रिश्चैव वसिष्ठश्च सप्त स्वायंभुवेऽन्तरे। घात्रा स्वपत्न्या आयत्याः प्राणपुत्रः समुत्पन्नः, विधात्रा निजपत्न्या नियत्याः मृकण्डः समुदपादयत। मृकण्डेन मनस्विन्या सह विवाहः कारितस्तथा तस्या उदरात् मार्कण्डेयोऽभूत्। मार्कण्डेयः स्वपत्न्या धूम्रपत्न्या वेदशिरसमजनयत्। वेदशिरसा पीवरीनाम्नीपत्न्या वंशकरपुत्राः समुत्पन्नाः। इमे सर्वे मार्कण्डेयनाम्ना प्रसिद्धा अभवन्। भृगुमहर्षिणा हिरण्यकशिपोः पुऽया दिव्यया सहापि पाणिग्रहणसंस्कारः कारितः। तस्या गर्भात् ब्रह्मवेतृणां श्रेष्ठं, देवासुरणा०चाचार्यं, कविप्रवरं श्रेष्ठग्रहं शुक्रमजनयत्। शुक्रस्यैवान्यानिनामानि वर्तन्ते शुक्रसोमपायिकन्ययोश्चत्वारः पुत्रा बभूवुः येषां नामानी इमानि वर्तन्ते त्वष्टा, वरत्री, शंडः, अर्कश्च। इमे चत्वार एव सूर्य इव तेजस्विन आसन्। वरत्रेः पुत्रचतुष्टयमभवत् रजतः, पृथरश्मिः, विद्वान्, बृहंगिरा इमे चत्वारो राक्षसवृतिकाः स०जातास्तथा धार्मिकानां महायज्ञानां महर्षिणाश्च विघ्वंसका बभूवुः तदा इन्द्रेणैषां वधः कृतः। शुक्रस्यान्या पत्नी जयन्ती वभूव यस्याः गर्भात् देवयानी नाम्नी पुत्री समुत्पन्ना। त्वष्टुरपि एकः पुत्रो पराक्रमी विश्वरूपनाम्नाभवत्। त्वष्ट्रा विरोचनस्य पुत्र्या सह विवाहः कारितो यस्या नाम यशोधरासीत्। यशोधराया जठराद् विश्वकर्मा समुत्पन्नः। भृगोः पत्न्या दिव्याया एकान्या कन्यापि बभूव। भृगोः द्वादशपुत्रा भार्गवयज्ञभागस्याधिकारिणो मन्यन्ते येषां नामानीमानि सन्ति–भुवनः, अन्त्यः, आत्यायनः, ऋतुः, शुचिः स्वमूर्द्धा, व्याजः, वसुदः, प्रभवः, अव्ययः, अधिपतिः भावनश्च इमे सर्वे भार्गवाः कथ्यन्ते स्म। भृगुणा निजद्वितीयापत्नीपौलोमीनाम्न्या गर्भात् च्यवनः समुत्पन्नः। यतो हि क्रूरराक्षसात् कर्मणा गर्भः पातितः अस्मात् कारणात् च्यवननाम प्रसिद्धम् चेतनाप्रापणात् इयं प्रचेता नाम्ना अपि ज्ञायते। च्यवनमहर्षिणा निजक्रोधाग्निना भयंकर एको राक्षसो दग्धः। च्यवनेन स्वपत्न्या द्वौ साधू पुत्रौ समुत्पादितौ। ययोर्नाम अप्रवानः दधीचश्च। दुर्वाससः शापाद् सरस्वती ब्रह्मलोकाद् समागता तथा तस्याः परिचयो दधीचेन सह भूतः। तदनन्तरं दधीचेन सह विवाहः सरस्वत्याः भूतः। तयोः पुत्रः सारस्वतो बभूव। अप्रवानस्य पत्नी–ऋषि नाम्नीधार्मिकायाः और्वः समुत्पन्नः। और्वस्य पुत्रोऽमिततेजस्वी ऋचिको बभूव। ऋचीकस्य पत्नी सत्यवती बभूव। सत्यवतीगर्भात् जमदग्निपुत्रः समुत्पन्नः। जमदग्नेः पत्नी रेणुकायाः गर्भात् भगवान् श्रीपरशुरामो बभूव।

ब्रह्माण्डपुराणे वर्णितं यदनेकवर्षान् पर्यन्तं श्रीपरशुरामेण पितरोः सेवां कृत्वा पित्तरौ प्रसन्नौ कृतौ। एकस्मिन् दिवसे श्रीपरशुरामो निजमातापितरौ नत्वा तयोः समक्षं पितामहदर्शनेच्छा प्रकटिता। माता च पिता च तौ परशुरामायानुमतिं प्रायच्छताम् तथानुरोधमपि कृतवन्तौ यत् तत्र हे परशुराम। चिरं यावत् न वासं कुर्याः। यतो हि तवाभावेऽत्र शून्यमनुभूयते। अधुना श्रीपरशुरामो निज पित्रा सह विधालये शिष्यान् शस्त्रशास्त्राणि पाठयितुमारब्धवान्। तथा निज पितृभ्यामाश्वासनं शीघ्रागमनस्य प्रदाय श्रीपरशुरामो भृगुश्रेष्ठमहर्षि–ऋचीकस्याश्रमे गतवान् तथा तत्र स्वाध्यायनिरतैस्तपस्विभिः परिवृत्तं तेजस्विनं पितामहमपश्यत्। तस्य पितामहः पितामही च एतादृश्यौ शोभायमाने यथा यज्ञसत्यवतीदक्षिणे शोभायमाने भवतः श्रीपरशुरामः पितामहं पितामहीश्च प्रणतवान् तौ परशुरामायाशीर्वादं दत्तवन्तौ। तथा कुशल समाचारं पृष्ठवन्तौ ऋचीकेण परशुरामस्य समक्षं पूर्वजानामुपरिभूतात्याचाराणां विषये कथितम्। कानिचित् वर्षाणि यावत् परशुरामस्तत्रोषितवान् ततः परशुरामः स्वपितामहभृगोराश्रमं गन्तुं निश्चितवान्। ततश्चलित्वा रामः पूज्यभृगोराश्रममागतवान्। तत्राश्रमे आध्यात्मिकं, मोहकं सुरम्यं वातावरणमवलोक्य श्रीपरशुरामस्य मनः मुग्धम्। शिष्यैः परिवृतं व्याख्यानदातारं ज्येष्ठपितामहमवलोक्य श्रीपरशुरामेण विनयावनतेन प्रणामः कृतः। पितामहेन श्रीभृगुणा

परशुरामायाशीर्वादो दत्तः। स्थातुमादिष्टवान् च स्वयं रामम् कुशलक्षेमं पृष्ट्वागमनस्य कारणमपि पृष्टम् महर्षिणा श्री भृगुणा।

'प्राह नाधिगतांशकं राममवलोक्य सादरम्। श्रृणु वत्सवचो मह्यम् त्वां वक्ष्यामि साम्प्रतम्। हितार्थं सर्वलोकानां तव चास्माकमेव च। गच्छ पुत्र ममादेशाद्धिमवन्तं महागिरिम्। अधुनैवाश्रमादस्मात्तपसे धृतमानसः तत्र गत्वा हे राम कृत्वा श्रमपदं शुभम्। तपसा नियमेन च महादेवमाराधय प्रीतिमुत्पाद्य तस्य त्वं भक्त्यानन्यगत्याचिरात् श्रेयो महदवाप्नोषि नात्र कार्या विचारणा तरसा तव भक्त्या च प्रीतो भवति भगवान् शंकरः करिष्यति च सर्वं मनसा यदिच्छसि। तुष्टे महदवाप्नोषि तस्मिन्जगन्नाथे शंकरे भक्तवत्सले। अस्त्रं ग्राममशेषं त्वं वृणु पुत्र यथेप्सितम्। त्वया हितार्थं देवानां करणीयं सुदुष्करकम्। विधतेऽभ्यधिकं कर्म शस्त्रसाध्यमनेकशः तस्मात्त्वं देवदेवेशं समाराधय शंकरम् भक्त्या परमया युक्तस्ततोऽभीष्टमवाप्स्यसि। भृगुणेत्थं कथिते सति तथेति करिष्यामि एममुक्त्वा प्रणम्य तं रामो भृगोराज्ञां प्राप्य गमनाय मनश्चकार। भृगुं प्रसिद्धं प्रणम्य ताभ्यां परिष्वक्तोऽभिनंदितो मुनीन् तान् सर्वान् मनस्कृत्य तैः सर्वैः अनुगमः कृतनिश्चयस्तपसे निश्चक्रम ततः। तदनन्तरं रामः हिमवन्तं गिरिवरं राम इव ययौ। तत्र रामो विविध ाान्देशान् पर्वतान् सरितो वनानि मुख्यान्यतीत्य तत तत्र निवासेषु मुनीनां पथि निवसन् क्षेत्रमुख्येषु तीर्थेषु निवसन् वा शनैः शनैः ययौ तथा सुबहून्देशान् मनोरमान् पश्यन्नपि हिमवन्तम् गतवान्। हिमालये प्राकृतिकसौन्दर्यस्य आनन्दमनुभवन् श्रीपरशुराम एकसुन्दरस्य विकसितकमलैः सुशोभितस्य सरोवरस्य तीरे आश्रमं निर्मितवान् तथा वसन् कन्दमूलफलं खादित्वा शंकरे चित्तं स्थाययन् तपः कर्तुमाख्धवान् परशुरामेण प०चाग्निषु ग्रीष्मे शरीरं तप्तम् शीततौ जलस्यमध्ये तपस्या कृता तथा वर्षतौ आकाशस्य नीचैः प्राकृतिकापत्तीः सहन् श्रीपरशुरामोऽत्यन्तघोरतपस्तप्तवान्।

श्रीपरशुरामस्य कृच्छ्रसाधना लोके प्रसिद्धाभवत्। फलतः समस्ताः ऋषयो भृगुः, अत्रिः, जाबालिः, क्रतुः, कामदेवश्चादयः श्रीपरशुरामस्य दर्शनं कर्तुं तस्याश्रमे आगतवन्तः तथा श्रीपरशुरामस्य कठोरतपस्यायाः प्रशंसां कृतवन्तश्च। तदा ते सर्वे सर्वलोकेषु ज्ञानं तपश्च प्रशस्य तस्य रामस्य स्वं स्वयाश्रमम् प्रययुः। तदनन्तरं भगवान् शंकरः स्वात्मनं प्रति श्रीपरशुरामस्य भक्तेर्गहनतायाः परीक्षां ग्रहीतुं व्याघस्य रूपं हितवान् तथा श्रीपरशुरामस्य समक्षं प्रकटितवान्। व्याघ्ररूपे शिवोऽत्यन्तयुवा, तेजस्वी, धनुर्धारी बभूव। तदा शिवः दुर्गन्धं मासस्य प्रसारयति स्म। स शिवः स्वकन्धे उत्थापितं मांसपिण्डं वृक्षशाखायामवलम्व्य श्रीपरशुरामस्य समक्षमागत्यावोचत् तोषप्रवर्षनामाहं व्याघः तथास्य जड़चेतनस्य संसारस्य स्वाामी वर्तेऽहम्। अहं नानाप्राणिनां मांसं खादामि तथा मनसेप्सितं पिबामि मम कृते अभक्ष्यं, अपेयमगम्यं नास्ति अहमिन्द्रस्य शक्तिमपि तुच्छां मन्ये अतः सर्वे परिचिता मत् भयग्रस्ताः सन्ति तथा ममानुमतिं विना किञ्चिदपि न कुर्वन्ति। इदं कथयित्वा शिवेनोक्तम् मया निजपरिचयो दत्तः साम्प्रतं त्वं निजपरिचयं देहि त्वं मां कथय यत् कोऽसि? कुत आयासि? अत्र कथं वससि इतः कदा गमिष्यसि। शिवस्य वचनामाकर्ण्य श्रीपरशुरामः क्षणं यावत् तूष्णीम् स्वीकृतवान् तथा किञ्चिद् मन्दंमन्दं हसन् रामोऽवोचत् अहं भृगुवंशी जमदग्निपुत्रोऽस्मि अत्राहं निजगुरुनिर्देशात् तपस्तप्तुमागतोऽस्मि। मम तपस्यायाः प्रयोजनं शिवप्रसादनं वर्तते तथा भगवान् शंकर ममोपरि अनुग्रहमवश्यमेव करिष्यति मां दर्शनेन कृतकृत्यं विधास्यति। तावत्पर्यन्तं सरोवरेऽस्मिन्नेवोषित्वा साधनां करिष्यामि। इदं कथयित्वा श्रीपरशुरामो व्याघरूपिणं शिवमुवाच। हे व्याघराज! अहन्तवातिधिरस्मि तथा तपस्वी एवं मुनिरस्मि।

अस्मात् कारणात् तवाहम्पूज्योऽस्मि तव कृते ममात्र वासस्यापत्तिर्न भवितव्या कापि। श्रीपरशुरामस्य वचनं श्रुत्वा व्याघरूपधारी शिव उवाच त्वया अद्यैवेतो गन्तव्यम् यतो हि तव वासेन मम सुखे बाधायाति। मह्यमियं तपस्या न रोचते। अहन्तु तपः पाखण्डं, कपट०च मन्ये। व्याघस्य वचनामाकर्ण्य श्रीपरशुरामः क्रोधितो बभूव तथा व्याघस्य

हिंसकवृत्तिं निन्दितवान् तं व्याधं पुरुषाधमं कथयन् तं दूरं गन्तुं प्रेरितवान्। त्वत्सन्निधौ निवासो मे केवलं पापाय भवेत्। तव चाप्यसुखोदर्कं यत्समीपनिषेवणम्। स त्वं ममाश्रमोपांते परिचक्रमणादिकम् परित्यज्य सुखी भूया लोकयोरुभयोरपि। इति तस्य वचः श्रुत्वाः स यूयो भृगुपुंगवम्। उवाच रोषताम्राक्षस्ताम्राक्षमिदमुत्तरम्। ब्रह्मन्! किमिदमत्यर्थं समीपे वसतिं मम परिगर्ह्यसे येन कृतध्नस्येव साम्प्रतम्। किं मयापकृतं लोके भवतोऽस्य वा कञ्चित्। अनागस्कारिणं दान्तं कोऽवमन्येत नामतः। सन्निधिः परिहर्तव्यो यदि मे विप्रपुंगव। दर्शनं सह संवासः संभषणममापि च। आयुष्मताऽधूनैवास्मादपसर्त्तव्यमाश्रमात् स्वसंश्रयं परित्यज्य क्काहं यास्ये बुभूक्षितः। स्वाधिवासं परित्यज्य भवता चोदितः कथम्। इतोऽन्यस्मिन् गमिष्यामि दूरे नाहं विशेषतः। गम्यतां भवतोऽन्यत्र स्थीयतां वा इच्छया। नाहं चालयितुं शक्यः स्थानादस्मात्कथंचन। तस्य व्याधस्य वचनं श्रुत्वा श्रीपरशुराम उवाच यत् व्याधजातिरियं क्रूरा सर्वसत्वभयावहा। खलकर्मरता नित्यं धिक्कृता सर्वजन्तुभिः। तस्यां जातोऽसि पापीयान्सर्वप्राणिविहिंसकः। स कथं न परित्यज्य सुजनैः स्यात्तु दुर्मते। तस्माद्विहीनजातीयं विदित्वात्मानमप्यथ। शीघ्रमस्मादन्यत्र नात्र कार्या विचारणा। न चेत्स्वयमितो गच्छेस्ततस्तव बलादपि। अपसर्पणताबुद्धिमहमुत्पादये स्फुटम्। क्षणाद्धर्मपि ते पाप श्रेयसी नेह संस्थितिः। विरुद्धाचरणे नित्यं धर्मद्विट् को लभेच्च शम्। श्रीपरशुरामस्येत्थं व्यवहारेणान्तकरणेन सन्तुष्टः प्रसन्नः परन्तु बहिः रोषप्रकटितः शिव उवाच। तवायं व्यवसायः सर्वथा निरर्थकः त्वं यस्य प्रसन्नतायै तपः करोषि तस्यत्वाचरणमेव लोकविरुद्धं वर्तते येन ब्रह्मणः शिरश्छित्वा ब्रह्महत्यायाः पापं कृतम् तस्याराधनां कर्तुं तवादृशाधर्मिणं बिना न कोऽपि कर्तुं शक्नोति त्वं निश्चितरूपेण मूर्खोऽसि। प्रतीयते यत् तवाराध्यदेवो गुरुश्च पतितौ स्तः। प्रायोऽध्य मातरं हत्वा सवैर्लोकैर्निराकृतः।

तपोव्याजेन गहने निर्जने संप्रवर्त्तसे। गुरुस्त्रीब्रह्महत्योत्थपातकक्षपणाय च। तपश्चरसि नानेन तपसा तत्प्रणश्यति। पातकानां किलान्येषां प्रायश्चितानि संन्त्यपि। मातुद्रुहामवेहि त्वं न क्वचितकिल निष्कृतिः। अहिंसालक्षणो धर्मो लोकेषु यदि मे मतः। स्वहस्तेन कथं राम मातरं कृतवानसि। कृत्वा मातृवधं घोरं सर्वलोकविगर्हितम् त्वं पुनर्धार्मिको भूत्वा कामतोऽन्यान्विनिंदसि। पश्यता हसतामोघं आत्मदोषजानता। अपर्याप्तमहं मन्ये परं दोषविमर्शनम्। स्वधर्मं यद्यहं त्यक्त्वा वर्तेयमकुतोभयम्। तर्हि गर्हय मां कामं निरुप्य मनसा स्वयम्। मातापितृसुतादीनां भरणायैव केवलम् क्रियते प्राणिहननं निजधर्मतया मया। स्वधर्मादामिषेवाहं सकुटुम्बो दिनेदिने। वर्तामि साऽपि ये वृत्तिर्विधात्रा विहिता पुरा। मांसेन यावता मे स्यान्नित्यं पित्रादिपोषणम्। हनिष्ये चेत्तदधिकं तर्हि युज्येयमेनसा। यावत्पोषणघातेन न वयं स्याम निन्दिताः। तदेत्सम्प्रधार्य त्वं निन्द वा मां प्रशंस वा। साधु वाऽसाधु वा कर्मयस्य यद्विहितं पुरा तदेव तेन कर्त्तव्यमापद्यपि कथञ्चन। निरुपय स्वबुद्धया त्वमात्मनो मम चान्तरम्। अहन्तु सर्वभावेन मित्रादिभरणे रतः। परन्तु त्वया कस्मिन् लोकधर्मान्तर्गते तथा बैदिकधर्मान्तर्गता निजजननी हत्या कृता। साम्प्रतं वृद्धपितरं परित्यज्य तव तपस्यया किम्? मम कथनमिदमस्ति यदिदं निरर्थकं तपः व्यक्त्वा गत्वेतो वृद्धपितरं सेवाशुश्रूषया सन्तोषय। पुत्रत्वञ्च सार्थकं कुरु। व्याधस्य तत्त्वयुक्तां वाणीमाकर्ण्य परशुरामो विस्मितः सन्नुवाच यत् महाभाग! भवान् सत्यं कथयतु यत् भवान् कोऽस्ति भवान् सामान्यसंसारी जीवो नास्ति। इन्द्राग्नियमधातृवरुणकुबेरब्रह्मविष्णुशिवसूर्यचन्द्रादिषु कोऽस्ति? भवान् किमर्थं व्याधशरीरं धारयति। प्रतीयते यत् भवानेव जगदाधारो जगदीश्वरः स्वच्छन्दो भगवान् शंकरोऽस्ति। मम निवेदनमेतत् वर्तते यत् ममोपरि कृपां कृत्वा महयं निजवास्तविकं रूपं दर्शयतु। अहम्भवतः शरणागतोऽस्मि। माम् कृतार्थयतु। इथं कथयता भगवता श्रीपरशुरामेण यदा शिर उत्थाय दृष्टं तदा भगवन्तं शंकरं समक्षं दृष्टवा विस्मितं श्रीपरशुरामो हर्षितो भगवतः शंकरस्य स्तवनं कर्तुमारब्धवान् :–

नमस्ते देवदेवाय शंकरायादिमूर्तये। नमः शांताय शाश्वताय नमो नमः। नमस्ते नीलकण्ठाय नीललोहितमूर्तये।

नमस्ते भूतनाथाय भूतवासाय ते नमो नमः। व्यक्ताव्यक्तस्वरूपाय महादेवाय मीढुषे। शिवाय बहुरूपाय+त्रिनेत्राय नमोनमः शरणं भव मे शर्व त्वद्भक्तस्य जगत्पते। भूयो• नन्याश्रयाणां तु त्वमेव हि परायणम्। यन्मयापकृतं देवदुरुक्तं वापि शंकर। अजानता त्वां भगवन्मम तत्क्षंतुमर्हसि। श्रीपरशुराम उवाच! तस्मात्त्वं सर्वभावेन प्रसीद मम शंकर! नान्यास्ति में गतिस्तुभ्यं नमो भूयो नमो नमः। एवं संस्तूयमानः शिवः कृता०जलिपुटं तिष्ठन्तम् परशुराममुवाच हे वत्स! अहन्तव तपसा प्रसन्नोऽस्मि। त्वमभीष्टं वरं याचय। परशुरामो न किन्चिदपि जगाद तदा शिवेनोक्तम्– अहन्तव मनस इच्छां जानामि। हे वत्स ! तवास्त्रधारणस्य साम्प्रतं सामर्थ्यं नास्ति। इमानि सर्वाणि रौद्रास्त्राणि। भवान् घोरतपस्यां करोतु। पृथिव्यां सर्वतीर्थेषु स्नात्वा निजशरीरस्य शुद्धिकरणं करोतु भवान् अनेन तव सर्वाण्यस्त्राणि सुलभानि भविष्यन्ति। इदं कथयित्वा भगवान् शंकरोऽन्तर्हितः। तदनन्तरं आत्मवान् श्रीपरशुरामः क्रमानुसारं सम्पूर्णपृथिवीं परिक्रम्य समस्ततीर्थेषु, विधिविधानेन स्नानं कृतवान् च। तन्द्रारहितो भूत्वा रामो मुख्यक्षेत्रेषु तीर्थेषु तथा देवालयेषु पितृगणानां देवानां विधिना तर्पणं विहितवान्। उपवास–तप– जप–होम–स्नानादिसुन्दरक्रियाः कुर्वनः श्रीपरशुरामो भूमिं परिक्रान्तवान् इत्थं क्रमानुसारं तीर्थेषु स्नानं कृत्वा तथा सम्पूर्णां पृथ्वीं परिक्रम्य शनैः शनैः शुद्धदेहवान् अभवत्। भार्गवरामः शम्भोः शंकरस्य शासनेन पृथिव्याः परिक्रमां कृत्वा स तत्र गत्वा स्थितः तपसा नियमेन च निजभक्तिभावेन भगवन्तं शंकरं पूजयितुमारब्धवान्। एतस्मिन्नेव काले तु देवानामसुरैः सह बभूव सुचिरं राजन्संग्रामो रोमहर्षणः। युद्धे पराजिता देवाः सकला वासवादयः। शंकरं शरणं जग्मुर्हतैश्वर्या द्वरातिभिः। तोषयित्वा जगन्नाथं प्रणामजयसंहतवैः। प्रार्थयामासुरसुरान्हन्तुं देवाः पिनाकिनम्। ततः शिवो गणेशमुवाच!

हिमाद्रेर्दक्षिणे भागे रामो नाम महातपाः
मुनिपुत्रोऽतितेजस्वी मामुद्दिश्य तपस्यति।।

त्वमद्यैव तत्र गत्वा ममादेशं कथय। हे महोदय! तं तपस्विनमत्रानय। ''तथेति करिष्यामि' इत्युक्त्वा तथा महेशं नत्वा वायुरिव गणेशो वेगेन तत्र गत्वा श्रीपरशुरामस्य दर्शनं कृतवान् तत्र परशुरामस्तपस्यायां रतः आसीत्। तं गणेशो विनयी वाक्यमिदमुवाच। भगवान् शम्भुः त्वां द्रष्टुमिच्छति तस्यैवाज्ञयाहं भृगुवर्य! अत्र आयामि। अतो भवान् साम्प्रतं तस्य शिवस्य चरणयोः सन्निधौ गच्छतु। भार्गव परशुरामस्तस्य गणेशस्य वचः श्रुत्व शीघ्रमेवोत्थितवान्। भगवतः शंकरस्याज्ञां शिरसि कृत्वा परशुरामः ''अहमधुनैव चलामि' इत्थं कथितवान्। तत्पश्चात् रामं त्वरोपेतः शंभुपार्श्वं महोदरः प्रापयामास सहसा कैलासे नागसतमे। तत्र परशुरामः भार्गवश्रेष्ठः शंकरं भक्तवत्सलं ददर्श। तत्र रामेण दृष्टम् यत् सर्वे जनाः तत्र देवेश्वरस्योपासनायां संलग्ना बभूवुः। शम्भुर्गजचर्म हितवान् तथा समस्तांगेषु भस्म लग्नम्। त्रिनेत्रधरिणः शिवस्य मस्तके चन्द्रमाः शोभयमानोऽभवत्। तस्यां देवानां परिषदि शम्भुः सुवर्णासने विराजमान आसीत्। कृताञ्जलिरामो भगवतः शंकरस्य पार्श्वस्थो बभूव। भगवतः शंकरस्य कष्टस्य दर्शनेन रामस्य सम्पूर्ण शरीरं रोमाञ्चिंचतमासीत् तथानन्दाश्रुभिस्तस्य शरीरं सिक्तं बभूव तथा पपात संस्पृशन्मूर्ध्ना चरणौ पुविद्विषः। पश्यतां देववृन्दानां मध्ये भृगुकुलोद्वहम्। तमुत्थाय शिवः प्रीतः प्रसन्नमुखपंकजम्। रामं मधुरया वाचा प्रसन्नाह सादरं यत् इमे सर्वे देवाः दैत्यैर्भयभीताः तथा सर्वे इमे देवाः स्वस्थानान्निसारिताः। वराको देवगणस्तेषां दैत्यानां वधं कर्तुन्न शक्नोति तथा मम समीपे समागतवान्।

अतः ममाज्ञया सर्वेषां देवानां प्रियं कार्यं दैत्यानां हननं कुरू। त्वमस्य कार्यं कर्तुं शक्नोषि इदम्मम मतं वर्तते। तदनन्तरं रामोऽब्रवीत् कृता०जलिः प्रणिपत्य शर्वं श्रृण्वतां सर्वदेवानां सप्रश्रयमिदं वचः। अनस्त्रज्ञोऽस्मि देवेश युद्धानामप्यकोविदः कथं हनिष्ये सकलान् सुरशत्रून्नायुधः। इत्युक्तस्तेन देवेशः किलसितं कालाग्निसप्रभम्। शैवमस्त्रमयं

तेजो ददौ तस्मै महात्मने। आत्मीयं परशुं दत्वा सर्वशास्त्राभिभावकम्। राम प्राह प्रसन्नवतात्मा गीर्वाणानां तु श्रृण्वताम्। मत्प्रसादेन सकलान्सुरशत्रून्विध्नतः। शक्तिर्भवतु ते सौम्य समस्तारिदुरासदा। अनेनैवायुधेन त्वं गच्छ युध्यस्व शत्रुभिः। स्वयमेव च वेत्सि त्वं यथावद्युद्धकौशलम्। इत्थं यदा भगवता शिवेन राम उक्तः परशुरामः शम्भुं प्रणतवान् तथा देवानां शत्रूणां वधं कर्तुं सज्जो बभूव तथा तं पशुं गुहीतवान्। अस्य पर्शोः निर्माणं विश्वकर्मणा कृतम् स पर्शुः शंकरस्य तेजसा निर्मितआसीत् येन भगवतोविष्णोः सुदर्शनस्य तथा देवराजन्द्रस्य वज्रस्य निर्माणं भूतम्।

अत्यन्ततीक्ष्णपर्शुधारणात् रामस्य नाम 'परशुसहितः परशुरामः' इति' प्रसिद्धं तदनन्तरं भगवतो विष्णोरंशेनोत्पन्नः परशुरामः शोभा सम्पन्नः सन् रुद्रस्य शक्त्या समन्वितोऽभवत्। स सूर्यद्युतिरिव देदीप्यमानो बभूव तदा परशुरामस्त्रिनेत्र धारिणः शिवस्याज्ञया दैत्यान् हन्तुं ततः प्रस्थितवान्। तदनन्तरं त्रिलोकं जेतुमिच्छुकासुरैः सह देवानां महाभयंकरं युद्धमभवत्। तदा महाबाहुः परशुरामो दारुणेयुद्धे कुद्धो भूत्वा तेन पर्शुना भयंकरा असुरा हताः। व्रजमानः परशुरामो व्रजतां युद्धे राक्षसानां वचं कृतवान्। तत्र परशुरामेण क्षणे दैत्यानां हननं कृत्वा सुराणां नाशो विहितः। देवाः प्रसन्नाः स०जाताः तदा सर्वदेवैः परशुरामः सम्मानितः। तदा परशुरामः मृगव्याधप्रतिंकृतिं शम्भो कृत्वा भक्त्या पूजयामास। ततस्तद्भक्तियोगेन स प्रीतात्मा जगत्पतिः प्रत्यक्षमगमत्तस्य सर्वैः सह मरुद्गणैः। तं दृष्ट्वा देवदेवेश त्रिनेत्रं चन्द्रशेखरम् वृषेन्द्रं वाहनं शुभुं भूतकोटिसमन्वितम्।। ससंभ्रमं समुत्थायं हर्षेणाकुललोचनः प्रणाममकरोद् भक्त्या शर्वाय भुवि भार्गवः। उत्थायोत्थाय देवेशं प्रणम्य शिरसासकृत्। कृता०जलिपुटो रामस्तुष्टाव च जगत्पतिम्। राम उवाच नमस्ते देवदेवेश नमस्ते परमेशवर नमस्ते एकलाधीशं नमस्ते करुणाकर। नमस्ते सकलावास नमस्ते नीललोहित। नमः सकलदेवारिगणनाशाय शूलिने रूपालिने नमस्तुभ्यं सर्वलोकैकपालिने। श्मशानवासिने नित्यं नमः कैलासवासिने। नमोऽस्तु पाशिने तुभ्यं कालकूटविपाशिने। इति स्तुतस्तदा तेन भक्त्या रामेण शंकरः मेघगंभीरया वाचा तमुवाच हसन्निव। शिव उवाच– रामाहं सुप्रसन्नोऽसि शौर्यशालितया तव । तपसा मयि भक्त्या च स्तोत्रेण च विशेषतः। वरं वरय तस्मात्त्वं यद्यदिच्छसि चेतसा। तुभ्यं ततदशेषेण दास्याम्यहमशेषतः। तदा परशुरामोऽवोचत्– हे देवेशर! यदि भवान् मयि प्रसन्नोऽस्ति यदि वरदानयोग्योऽहं तर्हि तं हेतुमिच्छामि तथा सम्पूर्णास्त्राणि वा०छामि अस्त्रे शास्त्रे च न मत्तोऽभ्यधिको भवेत्। लोकेषु मारणे जेता न भवेत्तव प्रसादतः। तथेत्युक्त्वा ततः शंभुरस्त्रशस्त्राण्यशेषतः। ददौ रामाय सुप्रीतः समंत्राणि क्रमान्नृप। सप्रयोगं ससंहारमस्त्रग्रामं चतुर्विधम्। प्रसादाभिमुखो रामं ग्राहयामास शंकर।

असंगवेगं शुभ्राश्वं सुध्वजं च रथोतमं। इषुधी चाक्षयशरौ ददौ रामाय शंकरः। अभेद्यम् जरं दिव्यं दृढज्यं विजयं धनुः। सर्वशस्त्रसहं चित्रं कवचं च महाधनम्। अजेयत्वं च युद्धेषु शौर्यं चाप्रतिमं भुवि। तदा भगवान् शंकरः शीघ्रमेवान्तर्हितो बभूव तदा स रामोऽपि कृतकृत्योऽभवत् तदा परशुरामेणोक्तम् यत् मम कृते निजाधिकारे स्थापयितव्यानि कर्तुं समर्थोऽस्ति। यदा सर्वेषां वस्तूनामावश्यकता भविष्यति तदा अहं भवन्तं स्मरिष्यामि तदा भवान् मम पार्श्वे रथसंहितानीमानि सर्वाणि प्रेषयतु इत्थं गणेशेन स्वीकृतम् तदा परशुरामः कृतकृत्योऽभवत् तदा स निजगुरुजनानां दर्शनं कर्तुं वाच्छां प्रकटितवान् तस्य वाच्छया परशुरामः सुन्दरहिमवतो वने एक– कन्दरायां प्रविष्टवान्। तत्र रामेणैको विप्रबालो दृष्टः। तमनुव्याघ्रो समागच्छतिस्म यस्मात् कारणात् स बालको विभ्यत् रोदिति स्म। निजहृदये दयावान् जागदग्न्यस्तस्य बालकस्य रक्षार्थं तत्परोऽभवत्। परशुरामेण व्याघ्रः सम्बोधितः हे व्याघ्र! तिष्ठ तावत् तत्रैव। स विप्रबालकोऽतीव भयभीत आसीत् तथा धावन् भूमौ पतितवान्। रामोऽपि ब्राह्मणबालकस्य रक्षां कर्तुं वाच्छन् रक्तनेत्रः स०जातस्तथा स तृणाम् संयुज्य कुशास्त्रं निर्मितवान्। तस्मिनन्नेव समये पतितं बालकमाक्रान्तवान् व्याघ्रः। तद्दृश्यं दृष्टवा रामोऽत्यन्तघ्वनिना भूमिं गगन०च कम्पायमानो घोरगर्जनां विहितवान्। निजनखांकुरैः प्रहारं

कुत्वा व्याघ्रमस्त्राग्निना भस्मी– भूतं कृत्वा तं विप्रसुतं रक्षितवान्। यस्य शरीरे शीघ्रतया कस्य व्याघ्रस्य नखैव्रणं न भूतम्। स व्याघ्रोऽपि महापापी ब्रह्माग्निना दग्धशरीरः आकाशे गन्धर्वशरीरः सादरो राममुवाच – हे राम ! एकविप्रस्य शापाद् पूर्वमहं व्याघ्रो भूतः। अधुना भवता अहं शापमुक्तोऽभवम्। साम्प्रतमहं स्वर्गलोकं गन्तुं वा०छामि इत्थं कथयित्वा स स्वर्गलोकं गतवान्। इदं दृष्टवा रामो विस्मितवान् तथा वशीभूतो भूत्वा ब्राह्मणपुत्रस्य समीपे गतवान् तथा बालकं मुक्तवान् मा विभेहि। स बालो भार्गवं राममवलोक्य तथा भस्मीभूतं व्याघ्रमवलोक्य आश्चर्यं प्राप्तवान्। यदा स बालकः पूर्णरूपेण निर्भयोऽभवत् तदा स बालकः परशुराममुवाच। को भवानत्र किमर्थमागतोऽस्ति मां हन्तुमिच्छुकस्य शार्दूलस्य वधः केन कृतः अयं तरक्षुस्तु महान् भीषणाकृतिकः साक्षाद् परं काल इव आसीत्। हे महामते! साम्प्रतमपि भयात् स महान् शार्दूलः सर्वतो दृश्यते मया। मम कृते तु साम्प्रतम् भवान् एव माता पिता गुरुश्च वर्तते। यतो हि अहं तु परमाधिकविपतौ आसम् भवानेव सम्यक् मह्यं जीवनदानं दतवान्। कोऽपि महान् तपस्वी शान्तनामधारी श्रेष्ठमुनिरासीतहन्तस्य सुपुत्रोऽस्मि। अहं तीर्थयात्रायै गन्धमानपर्वतं द्रष्टुं कामा अनेकमहामुनिभिः सह बदरिकाश्रमं गतवान् तदा विशालपर्वते समुचितं मार्गं परित्यज्य गहनबने प्रविष्टवान्। पूर्वदिशि क्रोशं यावदागतवान् तत्र व्याघ्राभिभूतः भयेनोत्पीड़ितो धावितवान्। तदाहं भूमौ पतितवान् भवान् कृपया साम्प्रतमहं भूम्या उत्थापितवान्।

हे दयालो! पिता इव ममोपरि भवान् कृपां कृतवान् तस्मिन् समये विप्रसुतेन परशुरामस्य समक्षं समस्तवृतान्तं श्रावितम्। इत्थं तयोः मित्रता स०जाता। तदा बालकस्य गमनस्येच्छाभवत्। रामोऽपि तेन सह गन्तुं कामाभवत्। कन्दराया निस्सृत्यानन्देन सह पितरोः स्थानं प्रति प्रस्थितवन्तौ तौद्वौ। अकृतव्रण एवासौ व्याघ्रेण भुवि पातितः। रामेण रक्षितश्चाभूधस्माद्व्याघ्रं विनिध्नता। तस्माद्तदेव नामास्य बभूव प्रथितं भुवि। विप्रपुत्रस्य राजेन्द्रस्तदेतत्सोऽकृतव्रणः। तदा प्रभृति रामस्यच्छायेवातपगा भुवि। बभूव मित्रमत्यर्थं सर्वावस्थासु पार्थिव। स तेनानुगतो राजन्भृगोरासाद्य सन्निधिम्। दृष्ट्वा ख्यातिं च सोऽभ्येत्य विनयेनाभ्यवादयत्। स ताभ्यां प्रियमाणाभ्यामाशीर्भिरभिनंदितः। दिनानि कतिचित्तत्र न्यसत्तत्प्रियेप्सया'' तदन्तरं तयोरनुमत्या शिष्यसमुदायैः समावृतस्य च्यवनाश्रमस्याश्रमं प्रत्यागच्छत्। स महामनाः वशीकृतान्तकरणः परमशान्तचित्तः सुकन्यानामधारिणीपत्न्यास्तस्य वन्दनां कृतवान्। परमप्रीतिसुसम्पन्नाभ्यां ताभ्यां रामस्याभिनन्दनं कारितम्। तपोनिधंदर्शनकांक्षया स और्वाश्रमस्य प्राप्तिमकरोत्। मेघावी रामस्तयोरभिनन्दनकरोत् तथा और्वमहामुनिना रामस्याभिनन्दनं कृतम्। तत्र प्रीतित्वाद् अनेकदिनानि यावत् तत्रातिष्ठत्। तदा अकृतव्रणेन सह रामेण ततः प्रस्थानं कृतम्। निजपिऽयोः चरणेषु सततं अभिनन्दनं कृतम्। पितरावपि तयोर्द्वयोरभिनन्दनं कृतम् तदा तौ रामं विधिपूर्वकं सकलवृतान्तं पृष्टवन्तौ। यत्कतिचिद् भूतं तत्सर्वं रामेण क्रमानुसारं भणितम्। तत्र कतिचिद् दिनान्युषित्वा तयोराज्ञया परमानन्दसंयुतः परशुराम पित्रयोः स्थानं प्रति गतवान्। तस्मिन् परमोतमे आश्रमे पितरौ विराजमानौ आस्ताम्। तत्र सम्मुखे उपस्थितो रामस्तयोश्चरणयोर्यथोचितरीत्या वन्दनामकरोत्। तौ रामं पप्रच्छ! हे पुत्र चिरं यावत् त्वं किमकरोः? तथा द्वितीयोऽयं कोऽस्ति त्वया सह। त्वं कुत्रावसः? अत्र कुतः समायातः? हे वत्स यत्सत्यं तद् ब्रुहि। परशुरामो घटनाक्रम श्रावितम् सर्वम्।

Dr. Balwant Singh Vats

Gold Medalist, Rtd BEO, 6 M.A, Ph.D., NET UGC, State Awardee, Second Possition in All India Sanskrit Bhashan Pratiyogita, Awarded by Sanskrit Akadami panchkula as a Writer, LL.B KUK. Radio Singer in Akashwani Rohtak from 25 years.

M. : 8901359751, 9416498867

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2026 Page No. : 41-51

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.22679720

भारतीय समाज में दलित समुदाय का संघर्ष और दलित साहित्य की भूमिका

आर. श्रावण, शोधार्थी, सी.एम.आर.नंबर : 2293992,
डॉ. अजयपाल सिंह, शोध निर्देशक एवं अध्यक्ष,
हिन्दी विभाग, देश भगत विश्वविद्यालय मंडी गोबिंदगढ़, पंजाब।

सारांश :

भारत विश्व के तेजी से विकास करने वाले देशों में से एक है, लेकिन यहाँ की जाति व्यवस्था अभी भी समाज में गहराई से जमी हुई है। यह शोध पत्र दलितों के शोषण के इतिहास, उनकी दयनीय स्थिति और दलित साहित्य के उद्‌भव का अध्ययन करता है। साथ ही, यह पत्र इस बात पर भी प्रकाश डालता है कि दलित साहित्य का विकास डॉ. बी. आर. अंबेडकर के वैचारिक आधार से कैसे हुआ। इसके अतिरिक्त, यह अध्ययन यह समझने का प्रयास करता है कि दलित समुदाय वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में व्याप्त अन्याय और उत्पीड़न के विरुद्ध किस प्रकार संघर्ष कर रहा है। भारत विश्व के तेजी से विकास करने वाले देशों में से एक है, लेकिन यहाँ की जाति व्यवस्था अभी भी समाज में गहराई से जमी हुई है। यह शोध पत्र दलितों के शोषण के इतिहास, उनकी दयनीय स्थिति और दलित साहित्य के उद्‌भव का अध्ययन करता है। साथ ही, यह पत्र इस बात पर भी प्रकाश डालता है कि दलित साहित्य का विकास डॉ. बी. आर. अंबेडकर के वैचारिक आधार से कैसे हुआ। इसके अतिरिक्त, यह अध्ययन यह समझने का प्रयास करता है कि दलित समुदाय वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में व्याप्त अन्याय और उत्पीड़न के विरुद्ध किस प्रकार संघर्ष कर रहा है।

दलित साहित्य एक सशक्त मंच प्रदान करता है, जिसके माध्यम से भारत में दलितों से संबंधित सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं को प्रभावी रूप से प्रस्तुत किया जाता है। यह साहित्य दलितों के आपसी संबंधों तथा अन्य सामाजिक वर्गों के साथ उनके संबंधों को भी दर्शाता है। इसके माध्यम से दलित समुदाय द्वारा समानता और स्वतंत्रता प्राप्त करने के प्रयासों में आने वाली विभिन्न चुनौतियों को उजागर किया जाता है।

दलित आंदोलन के निरंतर संघर्ष और दलित साहित्य में निहित प्रखर अभिव्यक्ति के परिणामस्वरूप सामाजिक स्तर पर महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। इससे सामाजिक संबंधों में समानता को बढ़ावा मिला है तथा जाति और लिंग के आधार पर होने वाले भेदभाव को रोकने की दिशा में भी प्रगति हैं।

कीवर्ड्स : दलित, समुदाय, अस्पृश्यता, भेदभाव, सामाजिक परिवर्तन।

परिचय :

पश्चिमी साहित्य और लेखकों से प्रेरित होकर दलित लेखकों ने अपने जीवन की सच्चाइयों को साहस

के साथ आत्मकथा के रूप में लिखा है, ताकि अपने समुदाय के लोगों में जागरूकता बढ़ाई जा सके। उनके ये वर्णन गुलामों की जीवन कथाओं की तरह बहुत ही भावनात्मक और हृदय को छूने वाले हैं, जिनमें उन्होंने अपने संघर्षों और जीवन को बचाए रखने के प्रयासों का सजीव चित्रण किया है। उनकी जीवन कथाएँ उनके कठिन अनुभवों का वास्तविक रूप सामने लाती हैं।

उनके साहित्य में जाति व्यवस्था एक प्रमुख विषय के रूप में उभरकर सामने आती है, जिसमें दलितों को सामाजिक और कानूनी रूप से शोषित वर्ग के रूप में दिखाया गया है। आज भी वे उपेक्षा और भेदभाव का सामना कर रहे हैं। ये आत्मकथाएँ सकारात्मक परिवर्तन का माध्यम बनती हैं और वर्तमान समय में दलितों के जीवन में सुधार लाने का प्रयास करती हैं। दलित स्त्रीवादी विचारधारा भी इसमें महत्वपूर्ण है, जो दलित महिलाओं की स्थिति को उजागर करती है। दलित महिलाएँ केवल दलित होने के कारण ही नहीं, बल्कि महिला होने के कारण भी दोहरे शोषण का सामना करती हैं। फिर भी, निराशा और कठिनाइयों के बावजूद वे अपने लेखन और अन्य माध्यमों से साहस और दृढ़ता का परिचय देती हैं।

वर्तमान समय में शिक्षा के माध्यम से सशक्तिकरण दलित संस्कृति का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन गया है। पहले जो दलित केवल शोषण के शिकार थे, आज शिक्षित होकर उन्होंने अपने मानव अधिकार और सम्मान के लिए आवाज उठाने का साहस प्राप्त किया है। दलित साहित्य, विशेष रूप से आत्मकथाएँ और व्यक्तिगत जीवन कथाएँ, दलित समुदाय के लोगों द्वारा झेली जाने वाली कठिनाइयों को सामने लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

दलित आंदोलन और दलित साहित्य के साथ–साथ कई कानून भी बनाए गए हैं, जैसे कि अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति अत्याचार निवारण अधिनियम 1989, जिनका उद्देश्य दलितों के खिलाफ होने वाले अत्याचारों को रोकना और उन्हें न्याय दिलाना है।

दक्षिण एशियाई अध्ययन के अंतर्गत दलितों का शैक्षणिक अध्ययन समय के साथ एक स्थापित क्षेत्र के रूप में विकसित हुआ है। सामाजिक समानता और पहचान की खोज में दलितों ने महत्वपूर्ण परिवर्तन दिखाए हैं, जिनका प्रभाव पूरे भारतीय उपमहाद्वीप में देखा गया है।

यद्यपि सत्तर के दशक में दलित साहित्य का उदय अंग्रेजी भाषी दुनिया के लिए एक नई खोज जैसा लगा, लेकिन इसकी जड़ें इससे पहले साठ के दशक में ही दिखाई देती हैं, जब यह डॉ. बी. आर. अंबेडकर के आंदोलन का हिस्सा था, जो अस्पृश्यों के अधिकारों का प्रतीक था। अपने पत्रों जैसे जनता, प्रबुद्ध भारत और मुकनायक में आंबेडकर ने चालीस और पचास के दशक में अस्पृश्यों के जीवन पर आधारित अनेक कहानियाँ और कविताएँ प्रकाशित कीं।

विशेष रूप से मराठी के प्रसिद्ध लेखक बंधु माधव द्वारा लिखी गई कहानियों ने शोषित वर्ग के वास्तविक जीवन अनुभवों को सामने लाने का अवसर दिया और अन्य लेखकों के लिए प्रेरणा का स्रोत बनीं।

दलित साहित्य को साहित्य की सबसे रचनात्मक और बौद्धिक रूप से अभिव्यक्त विधाओं में से एक माना जाता है, क्योंकि यह विभिन्न साहित्यिक रूपों के माध्यम से सामाजिक जीवन की वास्तविकताओं को प्रस्तुत करता है। भारतीय साहित्य की एक धारा के रूप में दलित साहित्य ने एक नए युग की शुरुआत की है।

सबसे पहले यह समझना आवश्यक है कि दलित साहित्य एक मानवीय सामाजिक दस्तावेज के रूप में

कार्य करता है, जो उन लोगों के जीवन को दर्शाता है जिन्हें सदियों से सामाजिक और आर्थिक शोषण का सामना करना पड़ा है। फिर भी, धीरे–धीरे सामाजिक समानता की आशा दिखाई देने लगी है, और इसका मुख्य कारण दलित साहित्य की सक्रियता और प्रभाव है।

अध्ययन का उद्देश्य और महत्व :

दलित समुदाय के अनुभवों के वास्तविक चित्रण का साहित्य में अध्ययन करने तथा समानता प्राप्त करने के लिए इस समुदाय द्वारा किए गए प्रयासों को समझने के उद्देश्य से यह शोध कार्य किया गया है, जिसका शीर्षक है "भारतीय दलित साहित्य पहचान से सामाजिक समानता की खोज।"

इस शोध का उद्देश्य भारत के शोषित और अस्पृश्य लोगों की यात्रा का विश्लेषण करना है, जिसमें उनके सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक शोषण से लेकर विकास तक के संघर्ष को समझा गया है।

शिक्षाविदों और शोधकर्ताओं के लिए यह समझना आवश्यक है कि अस्पृश्य लोगों ने साहित्य के माध्यम से महत्वपूर्ण योगदान दिया है, जबकि इतिहास में उन्हें पहचान और समानता दोनों से वंचित रखा गया था।

इस शोध के माध्यम से अस्पृश्य लोगों की जीवन यात्रा को उनके साहित्य के द्वारा समझने का प्रयास किया जाएगा, साथ ही उनके सपनों और आकांक्षाओं का भी विश्लेषण किया जाएगा।

अनुशासनात्मक प्रासंगिकता :

इस विषय की बहुविषयी प्रकृति को समझना आवश्यक है, क्योंकि इसका महत्व केवल भाषा और साहित्य तक सीमित नहीं है, बल्कि यह इतिहास, समाजशास्त्र, भूगोल, मनोविज्ञान, दर्शनशास्त्र, मानवशास्त्र आदि कई क्षेत्रों तक विस्तृत है।

इसी प्रकार का साहित्य अफ्रीकी मूल के लोगों के लेखन में भी देखने को मिलता है, जिसे 'काले लोगों का साहित्य' कहा जाता है, तथा फिलिस्तीनी साहित्य में भी इसका स्वरूप दिखाई देता है।

ऐसा साहित्य हमें इन वंचित और हाशिये पर रहे लोगों की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों को समझने में सहायता करता है, साथ ही उनकी आकांक्षाओं और सपनों को भी स्पष्ट रूप से प्रस्तुत करता है।

कार्य प्रणाली :

इस अध्ययन के लिए शोधकर्ता ने विभिन्न अनुसंधान विधियों का उपयोग किया है, जैसे अवलोकन, सर्वेक्षण, नमूना चयन के साथ–साथ विश्लेषण, वर्णन और तुलना की विधियाँ। इस अध्ययन को पूरा करने के लिए आवश्यक तथ्यों और जानकारी के संग्रह हेतु शोधकर्ता ने अनेक स्रोतों का सहारा लिया है, जिनमें पुस्तकें, पत्र–पत्रिकाएँ तथा इंटरनेट पर उपलब्ध विभिन्न सूचनात्मक सामग्री शामिल हैं।

एक व्यापक और सुव्यवस्थित प्रक्रिया के माध्यम से शोधकर्ता ने एकत्रित जानकारी का सावधानीपूर्वक विश्लेषण और व्याख्या करने का प्रयास किया है, ताकि विषय से संबंधित महत्वपूर्ण और उपयोगी निष्कर्ष प्राप्त किए जा सकें।

भारत में जातियों और वर्गवाद का इतिहास :

दक्षिण एशिया की एक प्रमुख विशेषता यह मानी जाती है कि यहाँ की संस्कृति बाहरी प्रभावों को अपनाने की क्षमता रखती है, फिर भी अपनी विशिष्ट पहचान को बनाए रखती है। इसका उदाहरण द्रविड़ भाषाओं में देखा

जा सकता है, जिन पर आर्यों का गहरा प्रभाव पड़ा, फिर भी उन्होंने अपनी मूल प्रकृति को नहीं खोया। द्रविड़ भाषाओं का आर्यीकरण लगभग साढ़े तीन हजार वर्ष पहले प्रारंभ हुआ माना जाता है।

उदाहरण के रूप में, कुछ ऐसे भाषाई तत्व, जिन्हें द्रविड़ भाषाओं से संबंधित माना जाता है, वे ऋग्वेद में भी पाए जाते हैं। इससे यह संकेत मिलता है कि ऋग्वेद के संकलन से बहुत पहले ही आर्यों और द्रविड़ भाषा बोलने वाले लोगों के बीच संपर्क स्थापित हो चुका था।

भारत में आर्यों के आगमन से सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में बड़े परिवर्तन हुए। इसी समय 'वर्ण' नामक जाति व्यवस्था की शुरुआत हुई, जिसमें समाज को लोगों की योग्यता, क्षमता और व्यवसाय के आधार पर चार वर्गों में बाँटा गया। ब्राह्मणों को विद्वान और शिक्षित माना गया, जबकि क्षत्रिय योद्धा के रूप में जाने जाते थे। वैश्य वर्ग कृषि और व्यापार से जुड़ा हुआ था, और शूद्रों को शारीरिक श्रम करने वाला वर्ग माना गया।

समय के साथ यह व्यवस्था कठोर होती गई और लोगों की जाति उनके जन्म और परिवार के आधार पर तय होने लगी, न कि उनकी योग्यता या कार्य के आधार पर। इस व्यवस्था का उद्देश्य समाज में विभिन्न समूहों के आपसी विवाह को रोकना था, लेकिन इसके परिणामस्वरूप कुछ वर्गों, विशेषकर शूद्रों, का शोषण और दमन बढ़ गया, जिन्हें आगे चलकर अस्पृश्य कहा जाने लगा।

यद्यपि वे समाज का एक महत्वपूर्ण हिस्सा थे, फिर भी उन्हें लंबे समय तक उपेक्षा और भेदभाव का सामना करना पड़ा।

दलित का अर्थ :

मूल रूप से, शब्द 'दलित' की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'दलित' शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है 'दबा हुआ' या 'शोषित'। भारतीय सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ में दलितों को अस्पृश्य माना जाता था, जिन्हें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्गों से नीचे स्थान दिया गया था। प्रारंभिक समय में अस्पृश्यों को 'चांडाल' या 'अवर्ण' जैसे नामों से जाना जाता था। बाद में बीसवीं शताब्दी में इस वर्ग के लिए 'अस्पृश्य' और 'हरिजन' जैसे शब्द प्रचलित हुए। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर इतिहासकार जे. एच. हटन ने इनके लिए 'बाह्य जातियाँ' शब्द का प्रयोग किया।

दूसरी ओर, 'हरिजन' शब्द का अर्थ 'भगवान के लोग' होता है, जिसे महात्मा गांधी ने 'अस्पृश्य' के स्थान पर एक सौम्य शब्द के रूप में प्रयोग किया।

हालाँकि 'दलित' शब्द, जो संस्कृत और मराठी भाषाओं से लिया गया है, स्वयं दलित समुदाय द्वारा अपनी पहचान के रूप में अपनाया गया है। 'दलित' का अर्थ है 'दबाया गया' या 'पीड़ित', जो इस बात को स्पष्ट करता है कि अस्पृश्यता उन पर दूसरों द्वारा थोपी गई है, न कि किसी प्रकार की अशुद्धता के कारण।

इसके अतिरिक्त, 'दलित' शब्द एक सामूहिक संज्ञा के रूप में भी प्रयोग किया जाता है, जो भारतीय समाज के सभी वंचित और शोषित वर्गों का प्रतिनिधित्व करता है।

दलित साहित्य आंदोलन :

भारत में वर्ग आंदोलन, जो लंबे समय तक दबा हुआ था, सन् 1958 के आसपास गति पकड़ने लगा। इस आंदोलन को डॉ. भीमराव अंबेडकर जैसे विचारकों ने आगे बढ़ाया, जिन्होंने महात्मा ज्योतिबा फुले के पूर्ववर्ती विचारों से प्रेरणा ली। उस समय अमेरिका में चल रहे अश्वेत आंदोलन से भी इस आंदोलन को प्रेरणा मिली। दलित साहित्य का मुख्य विषय दलितों या शोषित लोगों द्वारा और उनके बारे में किया गया लेखन है। दूसरे शब्दों

में, यह अस्पृश्यों के दुख और पीड़ा की सशक्त अभिव्यक्ति है, जिसमें जातिगत शोषण, अत्याचार, भेदभाव और उच्च वर्गों द्वारा किए गए अन्यायों का चित्रण किया गया है।

दलित साहित्य में गहरी राजनीतिक चेतना भी दिखाई देती है, जो आत्मसम्मान और गरिमा के लिए संघर्ष को दर्शाती है। यह साहित्य अनेक मुद्दों को सामने लाता है, जैसे पर्यावरण का शोषण, अमेरिका में अश्वेत लोगों के साथ होने वाला भेदभाव, महिलाओं की अधीनता, समान अधिकारों की मांग और बुजुर्गों के साथ होने वाला अन्याय।

'दलित' शब्द समाज के सभी हाशिये पर पड़े और शोषित वर्गों को समाहित करता है, और यह साहित्य इतिहास के घावों को भरने की क्षमता रखता है।

ब्रिटिश शासनकाल में ऐतिहासिक रूप से वंचित लोगों के लिए कुछ सुधार किए गए। सन् 1935 के भारत शासन अधिनियम में अस्पृश्यों को 'अविकसित वर्ग' तथा 'अनुसूचित जाति' और 'अनुसूचित जनजाति' के रूप में मान्यता दी गई। यद्यपि दलितों को अशुद्ध और अकुशल समझा जाता था, फिर भी उन्होंने भाषणों और लेखन के माध्यम से अपनी गरिमा और पहचान स्थापित करनी शुरू कर दी। इस साहित्यिक आंदोलन के अंतर्गत विभिन्न साहित्यिक विधाओं का विकास हुआ, जैसे शोध लेख, कविता, नाटक, लघु कथाएँ और उपन्यास, जिनमें उस समय की शोषणकारी सामाजिक व्यवस्था को उजागर किया गया।

ग्यारहवीं शताब्दी के मोची संत मदारा चेन्नैया को प्रारंभिक दलित लेखकों में से एक माना जाता है, जबकि दोहरा कक्काइया की आत्मस्वीकृति वाली कविताएँ हमें उस समय की परिस्थितियों की झलक देती हैं। मराठी संत चोखामेला और उनकी पत्नी सोयराबाई ने तेरहवीं शताब्दी में अपने अभंगों के माध्यम से शोषित वर्ग की पीड़ा को उजागर किया।

'दलित साहित्य' शब्द का प्रयोग पहली बार सन् 1958 में मुंबई में आयोजित महाराष्ट्र दलित साहित्य संघ के सम्मेलन में किया गया। बाबूराव बागुल, नामदेव ढसाल और दया पवार जैसे प्रमुख साहित्यकारों ने मराठी दलित साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

सन् 1963 में जब मैंने जाति चुराई नामक कहानी संग्रह, जिसे बाबूराव बागुल ने लिखा, ने मराठी साहित्य में एक नई क्रांति ला दी। इस कृति में समाज की क्रूरता का सजीव चित्रण किया गया, जिससे दलित साहित्य को एक नई दिशा और ऊर्जा मिली। इसके अतिरिक्त अण्णाभाऊ साठे जैसे साहित्यकारों ने भी विभिन्न साहित्यिक रूपों के माध्यम से इस आंदोलन को आगे बढ़ाया, जिनकी रचनाएँ आज भी प्रासंगिक बनी हुई हैं।

दलित साहित्य की प्रेरणा :

'पीड़ा', 'दुःख', 'प्रतिरोध', 'विरोध', 'वर्ग भेद', 'शोषित', 'दबे हुए' और 'अस्पृश्य' जैसे शब्दों का प्रयोग विभिन्न देशों के साहित्य में व्यापक रूप से किया गया है। अफ्रीकी मूल के लोगों का अमेरिकी साहित्य, जिसे 'काले लोगों का साहित्य' कहा जाता है, उन लेखकों की रचनाओं को शामिल करता है जो अफ्रीकी मूल के थे और अमेरिका में रहते थे। इस साहित्य के प्रारंभिक अग्रदूतों में फिलिस व्हीटली और ओलाउदा इक्वियानो का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जिन्होंने अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में कार्य किया।

बीसवीं शताब्दी के तीसरे और चौथे दशक के दौरान 'हार्लेम पुनर्जागरण' के समय यह साहित्य अपने चरम पर पहुँचा, जब इसने नस्लीय भेदभाव के विरुद्ध एक सशक्त प्रतिरोध के साधन के रूप में कार्य किया।

भारत में दलित साहित्य वंचित वर्गों के सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक अनुभवों को व्यक्त करता है।

अफ्रीकी मूल के लोग अपने रंग के कारण भेदभाव और शोषण का सामना कर रहे थे, जिसके परिणामस्वरूप हार्लेम पुनर्जागरण के दौरान यह साहित्य एक अध्ययन विषय के रूप में भी विकसित हुआ। 'हार्लेम पुनर्जागरण' या 'नव नीग्रो आंदोलन' के समय समुदाय में नस्लीय गर्व और सांस्कृतिक जागरूकता को 'नव नीग्रो' की अवधारणा के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया।

गुलामों की जीवन कथाएँ और लोक कथाएँ अफ्रीकी मूल के लोगों के साहित्य के निर्माण में महत्वपूर्ण रही हैं, हालांकि यह साहित्य केवल इन्हीं तक सीमित नहीं था।

भारतीय दलित साहित्य : सामाजिक परिवर्तन का कारण :

दलित साहित्य भारतीय जाति व्यवस्था के भीतर शोषित वर्गों के अनुभवों को गहराई से प्रस्तुत करता है। दलित, जो ऐतिहासिक रूप से हाशिये पर रखे गए और दबे–कुचले रहे हैं, उन्होंने सदियों तक समाज के ऊँचे वर्गों के अधीन रहकर उत्पीड़न सहा है। महात्मा ज्योतिबा फुले, डॉ. बी.आर. अम्बेडकर और महात्मा गांधी जैसे समाज सुधारकों के प्रयासों के बावजूद, आज भी दलित समुदाय अनेक समस्याओं और चुनौतियों का सामना कर रहा है।

दलित साहित्य की शुरुआत सन् 1960 के दशक में मानी जाती है, जो दलित सम्मेलनों के आरंभ के साथ जुड़ी हुई है। मुंशी प्रेमचंद, अमृतलाल नागर और मन्नू भंडारी जैसे लेखकों ने अपनी रचनाओं में सामाजिक आलोचना को स्थान दिया, जिससे आगे चलकर महाश्वेता देवी, बासुदेव सुनानी और बामाजैसे लेखकों के लिए मार्ग प्रशस्त हुआ।

सामान्य साहित्य से अलग, दलित साहित्य केवल मनोरंजन या समय बिताने का साधन नहीं है, बल्कि यह दलित समुदाय के अधिकारों के लिए आवाज उठाने और उनके ऊपर हो रहे अन्याय के विरुद्ध संघर्ष के लिए प्रेरित करने का एक सशक्त माध्यम है।

दलित साहित्य की उत्पत्ति मराठी में हुई, लेकिन समय के साथ यह भारत की अनेक भाषाओं में फैल गया है। प्रमुख दलित लेखकों में बंधु माधव, अन्नाभाऊ साठे और नामदेव ढसाल शामिल हैं, जिन्होंने इस विधा में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। शरणकुमार लिंबाले ने अपने प्रसिद्ध निबंध में दलित साहित्य की विशेषताओं को स्पष्ट किया है, जो इसे अन्य साहित्य से अलग बनाती हैं। वे बताते हैं कि इसमें पीड़ा और विद्रोह की सामूहिक आवाज होती है, जो अमानवीय जाति व्यवस्था के खिलाफ खड़ी होती है और दलित चेतना को एक क्रांतिकारी रूप देती है।

मूल रूप से दलित साहित्य समाज के वंचित वर्गों 'जैसे अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और धार्मिक अल्पसंख्यकों' के सामाजिक बहिष्कार पर केंद्रित है। आत्मकथाएँ दलित अनुभवों को दर्ज करने और सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक समस्याओं के प्रति जागरूकता फैलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। दलित लेखक समाज के कमजोर वर्गों की स्थिति को उजागर करते हैं और ऊँची जातियों द्वारा किए गए अन्याय को सामने लाते हैं।

अपने लेखन के माध्यम से दलित लेखक प्रचलित सामाजिक मान्यताओं को चुनौती देते हैं और वास्तविकता को पूरी सच्चाई के साथ प्रस्तुत करते हैं। वे उच्च जातीय उत्पीड़न की आलोचना करते हैं और

सामाजिक परिवर्तन की वकालत करते हैं। दलित साहित्य, दलितों के लिए अपनी गरिमा स्थापित करने और न्याय की मांग करने का एक सशक्त माध्यम है।

अंततः, दलित साहित्य दलित जीवन की कठोर सच्चाइयों को प्रतिबिंबित करता है और सामाजिक परिवर्तन के लिए एक आह्वान प्रस्तुत करता है। यह दलित समुदाय की दृढ़ता और साहस का प्रमाण है, जो एक अधिक समान और न्यायपूर्ण समाज की आशा जगाता है।

डॉ. भीमराव आंबेडकर के बाद के दौर में, दलित महिलाओं ने साहित्य को एक प्रभावशाली माध्यम के रूप में उपयोग किया है, ताकि वे मुख्यधारा के नारीवादी विमर्श को चुनौती दे सकें। उन्होंने कविता, लघु कथाएँ, निबंध, उपन्यास और आत्मकथाओं के माध्यम से अपने अनुभवों और संघर्षों को अभिव्यक्त किया है।

इस संदर्भ में एक महत्वपूर्ण आत्मकथा "द प्रिजन्स वी ब्रोक" है, जिसे बेबी कांबले ने लिखा है। यह 1982 में "जीना आमुचा" नाम से 'स्त्री' पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। इसमें महार समुदाय के ब्राह्मण और अन्य उच्च जातियों के उत्पीड़न के खिलाफ संघर्ष का मार्मिक चित्रण किया गया है। बाद में इसका अनुवाद माया पंडित द्वारा किया गया, जो हैदराबाद स्थित इंग्लिश एंड फॉरेन लैंग्वेजेज विश्वविद्यालय में प्रोफेसर हैं।

माया पंडित द्वारा किया गया अनुवाद न केवल बेबी कांबले की सशक्त कथा को व्यापक पाठक वर्ग तक पहुँचाता है, बल्कि इसमें एक विस्तृत प्रस्तावना और बेबी कांबले के साथ एक साक्षात्कार भी शामिल है, जो लेखिका के जीवन और उनके कार्यों के बारे में महत्वपूर्ण संदर्भ और जानकारी प्रदान करता है। "द प्रिजन्स वी ब्रोक" दलित महिलाओं की दृढ़ता और संघर्षशीलता का एक सशक्त प्रमाण है, जो उन्होंने व्यवस्था जनित उत्पीड़न और भेदभाव के बीच प्रदर्शित की है। अपनी आत्मकथा के माध्यम से कांबले अपने समुदाय के संघर्षों, आकांक्षाओं और उपलब्धियों को उजागर करती हैं, जिससे यह एक प्रभावशाली और मार्मिक विवरण बन जाता है, जो प्रचलित धारणाओं को चुनौती देता है और हाशिए पर पड़े लोगों की आवाज को सामने लाता है।

दलित महिलाओं द्वारा झेली जाने वाली कठोर वास्तविकताओं को दर्शाते हुए, बेबी कांबले का जीवन उनके स्कूली दिनों में सहपाठियों और शिक्षकों द्वारा किए गए अपमान, उत्पीड़न और भेदभाव से प्रभावित रहा। इन कठिन परिस्थितियों के बावजूद, उन्हें चौथी कक्षा के बाद पढ़ाई छोड़ने के लिए मजबूर होना पड़ा और वे बाल विवाह जैसी गहरी जड़ें जमाए सामाजिक प्रथा की शिकार बन गईं।

औपचारिक शिक्षा छोड़ने के बाद भी कांबले ने संघर्षों का सामना करना जारी रखा। उन्होंने अपने जीवन के अनुभवों को कागज के टुकड़ों पर लिखकर संजोया, जिन्हें वे अपनी छोटी–सी दुकान में सुरक्षित रखती थीं। वर्ष 1982 में अमेरिकी समाजशास्त्री मैक्सीन बर्न्टसन से हुई एक संयोगपूर्ण मुलाकात के दौरान उनके लेखन को एक मंच मिला। बर्न्टसन, कांबले की कथा से प्रभावित होकर, उनके लेखन को 'स्त्री' नामक महिला पत्रिका में "जीना आमुचा" शीर्षक से धारावाहिक रूप में प्रकाशित किया। बाद में इन लेखनों का अंग्रेजी अनुवाद "द प्रिजन्स वी ब्रोक" शीर्षक से 1986 में प्रकाशित हुआ, जिसने दलित महिलाओं पर होने वाले अत्याचारों को उजागर किया।

कांबले की आत्मकथा न केवल उनके सहपाठियों, शिक्षकों और यहाँ तक कि उनके पति कोंडीबा कांबले द्वारा किए गए अत्याचारों को सामने लाती है, बल्कि यह दलित समुदायों में प्रचलित गहरे अंधविश्वासों और रूढ़ मान्यताओं पर भी प्रकाश डालती है। वृषाली नगराले के विमर्श विश्लेषण में यह दर्शाया गया है कि इन समुदायों

के पुरुष और महिलाएँ दोनों ही बुरी आत्माओं की अवधारणा से जूझते थे और उन्हें ईश्वरीय शाप के रूप में देखते थे। जान्हवी आचरेकर की समीक्षा कांबले की आत्मकथा के बहुआयामी स्वरूप को सटीक रूप से प्रस्तुत करती है।

"द प्रिजन्स वी ब्रोक" केवल एक व्यक्तिगत कथा तक सीमित नहीं है, बल्कि यह समाजशास्त्रीय, ऐतिहासिक और राजनीतिक दृष्टिकोण से भी महत्वपूर्ण अंतर्दृष्टि प्रदान करती है। यह दलित नारीवाद की एक सशक्त आलोचना प्रस्तुत करती है, स्थापित धार्मिक मान्यताओं को चुनौती देती है और सामाजिक न्याय तथा समानता की वकालत करती है। कांबले की साहसपूर्ण कथन शैली के माध्यम से यह आत्मकथा दलित महिलाओं के संघर्ष, साहस और प्रतिरोध का एक मार्मिक और प्रेरणादायक दस्तावेज बन जाती है।

"जूठन : एक अछूत का जीवन" ओमप्रकाश वाल्मीकि द्वारा लिखी गई एक अत्यंत मार्मिक आत्मकथा है, जो भारत में दलितों द्वारा झेली जाने वाली कठोर वास्तविकताओं को उजागर करती है। यह रचना मूल रूप से 1993 में "हरिजन से दलित" पुस्तक में "एक दलित की आत्मकथा" शीर्षक से प्रकाशित हुई थी। बाद में 1997 से 2002 के बीच अरुण प्रभा मुखर्जी द्वारा किए गए इसके अंग्रेजी अनुवाद ने वाल्मीकि की कथा को व्यापक पाठक वर्ग तक पहुँचाया।

"जूठन" शीर्षक स्वयं ही 'अशुद्ध' या बचा हुआ भोजन का संकेत देता है, जिसे सामान्यतः पशुओं से जोड़ा जाता है। यह शीर्षक दलितों के साथ होने वाले भेदभाव और सामाजिक बहिष्कार का प्रतीक है। मुखर्जी ने "जूठन" के प्रभाव पर विचार करते हुए कहा कि यह उनके भारत के उस हिस्से की बात करता है, उनकी पहली भाषा हिंदी में, जिस तरह किसी अन्य रचना ने उनसे पहले कभी नहीं की थी।

यह आत्मकथा दलितों द्वारा झेली गई गरीबी, अपमान और अत्याचारों के गहरे संघर्षों को दर्शाती है, विशेष रूप से बरला गाँव के चूहड़ा (दलित) समुदाय और उच्च जाति के टागा समुदाय के बीच के संघर्ष को। वाल्मीकि की कथा के माध्यम से पाठक जाति–आधारित उत्पीड़न की कठोर सच्चाइयों और उससे जूझने वाले लोगों की दृढ़ता से रूबरू होते हैं।

इसी प्रकार, सिद्धलिंगैया की "ऊरु केरी : एक आत्मकथा" कर्नाटक में दलितों की स्थिति की झलक प्रस्तुत करती है। यह रचना मूल रूप से कन्नड़ पत्रिका "रुजुवातु" में एक लेख के रूप में प्रकाशित हुई थी। बाद में 1995 में डॉ. डी. आर. नागराज और 2003 में एस. आर. रामकृष्ण द्वारा किए गए अंग्रेजी अनुवाद ने सिद्धलिंगैया की स्मृतियों को एक प्रकाशित कृति का रूप दिया।

कृषि मजदूर परिवार से आने वाले सिद्धलिंगैया ने गरीबी और जातिगत भेदभाव के संघर्षों को स्वयं अनुभव किया। अनेक कठिनाइयों के बावजूद, शिक्षा प्राप्त करने का उनका संकल्प 'यहाँ तक कि निःशुल्क रात्रि विद्यालय में अध्ययन करना' विपरीत परिस्थितियों में आत्मसम्मान और गरिमा की खोज को दर्शाता है।

"ऊरु केरी" कर्नाटक के दलितों के दैनिक जीवन के संघर्षों को गहराई से प्रस्तुत करती है, जिसमें गरीबी, जातिगत भेदभाव और पहचान का संकट प्रमुख रूप से उभरते हैं। सिद्धलिंगैया की कथा के माध्यम से पाठक कर्नाटक के दलितों के जीवन की कठोर वास्तविकताओं और उत्पीड़न के बीच उनके संघर्ष और साहस को समझ पाते हैं।

सिद्धलिंगैया दलित साहित्य के क्षेत्र में एक प्रमुख व्यक्तित्व के रूप में उभरते हैं, जो एक कवि,

लोकसाहित्यकार और लेखक के रूप में अपने योगदान के लिए जाने जाते हैं। वे दलित संघर्ष समिति (डीएसएस) के संस्थापक सदस्यों में से एक रहे हैं और कर्नाटक विधान परिषद के पूर्व सदस्य भी रहे हैं। एक जनबुद्धिजीवी के रूप में उनका बहुआयामी व्यक्तित्व सामाजिक परिवर्तन और विकास के प्रति उनकी प्रतिबद्धता को दर्शाता है, जिसका प्रमाण बेंगलुरु विश्वविद्यालय से प्राप्त उनकी दर्शनशास्त्र में डॉक्टरेट की उपाधि है।

दलित साहित्य की परंपरा में एक और महत्वपूर्ण आत्मकथा "ग्रोइंग अप अनटचेबल इन इंडिया" है, जिसे मराठी में मूल रूप से "वस्ती" शीर्षक से वसंत मून द्वारा लिखा गया था। इसका अंग्रेजी अनुवाद प्रसिद्ध अमेरिकी विद्वान गेल ओमवेट ने किया, जो बी. आर. अंबेडकर ने किया चेयर ऑन सोशल चेंज एंड डेवलपमेंट से जुड़ी थीं। इस आत्मकथा में एक भूमिका एलीनॉर जेलियट द्वारा लिखी गई है, जो एक प्रतिष्ठित इतिहासकार और शिक्षाविद् हैं। "ग्रोइंग अप अनटचेबल इन इंडिया" नागपुर में रहने वाले महार समुदाय के संघर्षों का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करती है, जहाँ वे गरीबी, जातिगत भेदभाव और सामाजिक अन्याय से जूझते हैं।

वसंत मून की कथा उनके अत्यंत गरीबी भरे बचपन को उजागर करती है, जहाँ उनकी माँ पूर्णाबाई एक नौकरानी के रूप में काम करके परिवार का पालन–पोषण करती थीं। यह आत्मकथा महारों और उच्च जातियों के बीच व्याप्त तनावों को भी दर्शाती है, जिसमें सामाजिक बहिष्कार, जातिगत भेदभाव और हमलों जैसी घटनाओं का वर्णन मिलता है, जिनका सामना वसंत को करना पड़ा। 1930 के दशक के सामाजिक उथल–पुथल के बीच, उइमकांत के रूप में दलित अधिकारों के एक सशक्त नेता के उभरने से वसंत प्रेरित हुए और सक्रिय हुए। बचपन से ही वे दलित आंदोलन, विशेषकर समता सैनिक दल, से जुड़े रहे और अपने समुदाय के सामाजिक कल्याण के लिए कार्य करते रहे। अपने पूरे जीवन में वसंत मून ने अपने समाज के उत्थान के लिए समर्पण बनाए रखा और संघर्ष तथा सक्रियता की भावना को जीवित रखा।

इसी प्रकार, "करुक्कु" द्वारा लिखी गई तमिल साहित्य की एक प्रसिद्ध दलित महिला आत्मकथा है। "करुक्कु" एक दलित महिला के जीवन के अनुभवों को प्रस्तुत करती है और दलित समुदाय के व्यापक संघर्षों को सामने लाती है। इसका अंग्रेजी अनुवाद लक्ष्मी होल्मस्ट्रॉम द्वारा किया गया है। यह कृति चर्च, विद्यालय और समाज के अन्य क्षेत्रों में दलित महिलाओं द्वारा झेले जाने वाले भेदभाव और अन्याय को प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करती है।

बामा की कथा यह दर्शाती है कि उत्पीड़न केवल जाति तक सीमित नहीं है, बल्कि लिंग के आधार पर भी होता है। इस प्रकार दलित महिलाएँ दोहरे शोषण का सामना करती हैं। पितृसत्तात्मक और उच्च जातीय समाज में दलित महिलाएँ अक्सर हाशिए पर धकेल दी जाती हैं और निरंतर भेदभाव का शिकार होती हैं, जिससे अन्याय का एक चक्र बना रहता है। बामा की रचना दलित महिलाओं के संघर्ष, साहस और अधिकारों के लिए उनकी लड़ाई का सशक्त प्रमाण है।

दलित कवियों और कवयित्रियों ने कविता के माध्यम से अपने संघर्षों और अन्याय के अनुभवों को अभिव्यक्त किया है। अब वे चुपचाप अत्याचार सहने के बजाय साहसपूर्वक अपनी आवाज उठा रही हैं, जो सामाजिक परिवर्तन का संकेत है। सदियों से चले आ रहे अस्पृश्यता और भेदभाव को दलित लेखकों के सशक्त विरोध के कारण धीरे–धीरे चुनौती मिल रही है। अपने साहित्य के माध्यम से वे यह संदेश देते हैं कि यदि हम साथ रह सकते हैं, तो भाईचारे और सहानुभूति के साथ क्यों नहीं रह सकते।

जय प्रकाश करदम की कहानी "द हाउसिंग सोसाइटी" इस सत्य को स्पष्ट रूप से दर्शाती है। इसमें विजय महतो नामक पात्र, जो दिल्ली के रेल मंत्रालय में उप सचिव है, के जीवन का वर्णन है। पचास वर्ष की आयु तक पहुँचने के बावजूद उसके पास अपना घर नहीं है। जब वह अपनी निम्न जाति के कारण आवासीय सोसाइटी की सदस्यता लेने में भेदभाव का सामना करता है, तो वह चुप रहने के बजाय कानूनी कार्रवाई करने का निर्णय लेता है।

उच्च जाति के साहित्य में जहाँ सुख और संतोष का चित्रण अधिक मिलता है, वहीं दलित आत्मकथाएँ जातिगत अत्याचार और निरंतर भेदभाव से भरे जीवन को प्रस्तुत करती हैं, जो लेखक की मृत्यु के बाद भी समाप्त नहीं होते। दलित साहित्य की विशेषता यह है कि यह वास्तविक जीवन के अनुभवों को प्रस्तुत करता है, जो गैर–दलित कथाओं से भिन्न होते हैं। जहाँ उच्च जाति की आत्मकथाएँ अक्सर अधूरी भावनाओं के साथ समाप्त होती हैं, वहीं दलित आत्मकथाओं में भविष्य के प्रति अनिश्चितता स्पष्ट दिखाई देती है।

कई विद्वान, लेखक और आलोचक दलित साहित्य को हाल के वर्षों में दलितों द्वारा झेले गए उत्पीड़न और शोषण के साक्ष्य के रूप में देखते हैं। इन कृतियों को दलित पीड़ा के महाकाव्य के रूप में माना जाता है, जो भारतीय समाज में दलितों द्वारा झेली जाने वाली विभिन्न प्रकार की वंचनाओं को उजागर करती हैं। क्रिस्टोफ जाफ्रेलो के अनुसार, दलित साहित्य ने न केवल व्यापक सराहना प्राप्त की है, बल्कि राजनीति पर भी गहरा प्रभाव डाला है। मायावती जैसी हस्तियाँ, जो उत्तर प्रदेश की दलित मुख्यमंत्री और बहुजन समाज पार्टी की नेता रही हैं, इस बात का प्रमाण हैं कि दलित साहित्य ने दलितों के सामाजिक और राजनीतिक संघर्षों के प्रति जागरूकता बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

निष्कर्ष :

अतीत में जाति और लिंग के आधार पर भेदभाव बहुत अधिक था, जिसमें दलितों को मंदिरों, स्कूलों और सार्वजनिक स्थानों से दूर रखा जाता था। आज भी वे शिक्षा और रोजगार पाने के लिए संघर्ष करते हैं और कई बार हिंसा व अत्याचार का सामना करते हैं। साहित्य इन समस्याओं को उजागर करता है और दलित सशक्तिकरण के लिए शिक्षा और आत्मनिर्भरता को महत्वपूर्ण मानता है।

जाति केवल सामाजिक नहीं बल्कि मानसिक सोच का हिस्सा है, जिससे असमानता बनी रहती है। भारत एक बहुभाषी और बहुसांस्कृतिक देश है, लेकिन जातिगत भेदभाव के कारण कई दलितों ने अन्य धर्म अपनाए, फिर भी उन्हें भेदभाव का सामना करना पड़ता है।

इसके बावजूद, शिक्षा और रोजगार के अवसर बढ़े हैं और कुछ दलित महिलाएँ अस्पतालों आदि में काम कर रही हैं। दलित साहित्य इन संघर्षों को सामने लाकर समाज में जागरूकता और परिवर्तन लाने का कार्य करता है।

संदर्भ :

1. शरणकुमार लिंबाले, टुवर्ड्स एन एस्थेटिक ऑफ दलित लिटरेचर, ओरिएंट लॉन्गमैन, 2004।
2. शरणकुमार लिंबाले, टुवर्ड्स एन एस्थेटिक ऑफ दलित लिटरेचर : हिस्ट्री, कंट्रोवर्सीज एंड कन्सिडरेशन्स, अनुवाद : आलोक मुखर्जी, ओरिएंट ब्लैकस्वान, 2010।

3. शरणकुमार लिंबाले, टुवर्ड्स एन एस्थेटिक्स ऑफ दलित लिटरेचर, ओरिएंट ब्लैकस्वान, 2004।
4. असेफा मेहरुतरु, "कॉन्सेप्ट्स इन सोशल एंड स्पैशियल मार्जिनैलिटी", डेवलपमेंट ऑफ सेटलमेंट्स, खंड 82, अंक 2, 2000, पृ. 89–101।
5. लता मुरुगकर, दलित पैंथर मूवमेंट इन महाराष्ट्रः ए सोशियोलॉजिकल एप्रेजल, पॉपुलर प्रकाशन, 1991।
6. डी. आर. नागराज, द फ्लेमिंग फीटः ए स्टडी ऑफ द दलित मूवमेंट इन इंडिया, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1993।
7. डी. आर. नागराज, द फ्लेमिंग फीटः ए स्टडी ऑफ द दलित मूवमेंट इन इंडिया।
8. सी. डी. नाइक, बौद्ध धर्म एंड दलित्स : सोशल फिलॉसफी एंड ट्रेडिशन्स, कल्पाज प्रकाशन, 2010।
9. गेल ऑम्वेट, "दलित लिटरेचर इन महाराष्ट्र : लिटरेचर ऑफ सोशल प्रोटेस्ट एंड रिवोल्ट इन वेस्टर्न इंडिया", साउथ एशियन बुलेटिन, 1987।
10. शरणकुमार लिंबाले, "दलित लिटरेचर : फॉर्म एंड पर्पज", टुवर्ड्स एन एस्थेटिक ऑफ दलित लिटरेचर, संपादन एवं अनुवादः आलोक मुखर्जी, दिल्ली, ओरिएंट लॉन्गमैन, 2004, पृ. 31–32।
11. वृषाली नगराले, "डिस्कोर्स एनालिसिस ऑफ अफ्रीकन–अमेरिकन एंड दलित वुमेन के चयनित कार्य/जीवनियाँ : ए तुलनात्मक अध्ययन", इंडियन स्ट्रीम रिसर्च जर्नल, खंड 1, अंक 6, 2011।
12. जान्हवी आचरेकर, "लिबरेशन नैरेटिव", द प्रिजन्स वी ब्रोक (बेबी कांबले) की समीक्षा, द हिंदू, 2 मार्च 2008।
13. अरुण प्रभा मुखर्जी, प्रस्तावना, जूठन : एक अछूत का जीवन, लेखकः ओमप्रकाश वाल्मीकि, न्यूयॉर्क : कोलंबिया यूनिवर्सिटी प्रेस, 2003।
14. नरेश कुमारी, "डबल कर्स", जर्नल ऑफ लिटरेचर एंड एस्थेटिक्स (भारतीय दलित साहित्य विशेषांक), 2009, पृ. 207।
15. क्रिस्टोफ जाफ्रेलो, डॉ. आंबेडकर एंड अनटचेबिलिटी : एनालाइजिंग एंड फाइटिंग कास्ट, नई दिल्ली, परमानेंट ब्लैक, 2005, पृ. 4।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2026 Page No. : 52-59

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.22679720

मलिन बस्तियों की महिलाओं में पोषण और स्वास्थ्य की स्थिति : आरा नगर के सन्दर्भ में

शीतल सिन्हा, शोधार्थी
डॉ. मीरा रानी, शोध निर्देशक
असिस्टेंट प्रोफेसर, एम. एम. महिला कॉलेज
गृह विज्ञान विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)

शोध सरांश :

मलिन बस्तियों में पोषण एवं स्वास्थ्य की समस्या व्यापक विषय है। इस पोषण एवं स्वास्थ्य के बलबूते पर ही वह अपने जीवन में आने वाली समस्याओं का शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक स्तर पर मुकाबला कर रहा है। जिससे वह मानव जाति की सेवा में अपना योगदान दे सके। अत्यधिक नगरीयकरण और औद्योगीकरण के प्रभाव के फलस्वरूप मलिन बस्तियों का विकास हुआ। मलिन बस्तियों के असंख्य दुष्परिणाम सामने आते हैं। मलिन बस्तियाँ वे स्थान हैं जहाँ असंख्य बुराइयाँ उत्पन्न होती हैं, और सम्पूर्ण समाज को प्रभावित करती हैं। जागरूकता के अभाव में इन मलिन बस्तियों की महिलाओं का विकास नहीं हो सकता है। आज, भारत के सभी प्रमुख शहरों और औद्योगिक केंद्रों में मलिन बस्ती देखी जा सकती हैं। ये क्षेत्र स्वास्थ्य की दृष्टि से बहुत हानिकारक हैं। अस्वास्थ्यकर और दूषित वातावरण के कारण यहाँ कई प्रकार की बीमारियाँ फैलती हैं और मृत्यु दर अधिक होती है।

किवोर्ड – मलिन बस्ती, पोषण एवं स्वास्थ्य, महिला ।

भूमिका -

भारत जैसे विकासशील देशों में झुग्गीवासी आमतौर पर तीसरे दर्जे के नागरिकों के रूप में माने जाते हैं, भले ही वे भारत के नागरिक बन गए हों। झुग्गीवासियों के पास अन्य शहरी समुदायों के बराबर रोजगार, भोजन, पानी, आवास और स्वच्छता जैसी बुनियादी सुविधाएं नहीं हैं (कुमार, 2014)। जनगणना 2011 के अनुसार, 31 प्रतिशत भारतीय शहरी क्षेत्रों में रहते हैं, और उनमें से लगभग 17.4 प्रतिशत लोग झुग्गियों में रहते हैं। जैसे-जैसे पूरे देश में शहरी जनसंख्या बढ़ रही है, झुग्गियों के क्षेत्र 18वीं शताब्दी से आज तक आम हो गए हैं (गुरुमूर्ति, के.टी.

2000)। झुग्गियां मुख्य रूप से विकासशील देशों के शहरी क्षेत्रों में पाई जाती हैं, साथ ही अमेरिका और यूरोप जैसे विकसित देशों में भी। ऑक्सफ़र्ड इंग्लिश डिक्शनरी के अनुसार, 'झुग्गी' शब्द रोम (जिप्सी) मूल का 'कैंट' शब्द हो सकता है। संक्षेप में, झुग्गी का मतलब निम्न वर्ग के बेघर लोगों का समुदाय होता है (MHUPA, 2013) । हालांकि, ग्रामीण-शहरी प्रवासन के कारण, सभी प्रकार के लोग झुग्गियों में रह रहे हैं।

मलिन बस्तियाँ नगरीय क्षेत्रों में ही अधिक विकास करती हैं। वैसे इन बस्तियों के विकास के अनेक कारण हैं जिनमें मुख्यतः नगरीयकरण और औद्योगीकरण दोनों ही महत्वपूर्ण हैं तथा ये ग्रामीण उत्प्रवास के लिए विशेषकर उत्तरदायी हैं। अधिकांश नगरीय अप्रवासी इतने निर्धन होते हैं कि वे अपने लिए उचित संसाधन नहीं जुटा पाते। यहाँ भूमि अत्यन्त दुर्लभ होती है तथा मकान का भी मूल्य नगरीय क्षेत्रों में ग्रामीण क्षेत्रों से बहुत अधिक होता है। जिसकी वजह से ये व्यक्ति मलिन बस्तियों में रहने के लिए बाध्य होते हैं। मलिन बस्तियों आने वाले अप्रवासी निर्धन व्यक्ति इनमें इसलिए भी निवास करते हैं, क्योंकि अनेक कारण उन्हें नगरीय क्षेत्रों में अच्छा जीवन बिताने के विषय में विचार करने को प्रेरित करते हैं। नगरीय क्षेत्रों की चकाचौंध बाह्य दशाओं की ऐसी प्रतिछाया प्रस्तुत करते हैं कि उन्हें लगता है कि ग्रामीण क्षेत्रों से यहाँ रोजगार के अधिक अवसर प्राप्त होंगे तथा अनेक प्रकार की नगरीय सुविधाएँ भी प्राप्त हो सकेंगी। नगरों में आ जाने से उन्हें न कोई रोजगार तो प्राप्त हो जाता है किन्तु इन लोगों के सामने एक समस्या अपने निवास स्थान की आ जाती है क्योंकि कम आय की वजह से इन्हें निवास के लिए उचित स्थान नहीं मिल पाता है। फलस्वरूप वह किसी भी खाली पड़ी हुई भूमि में, रेलवे लाइन के किनारे, नालों के किनारे तथा सड़कों के किनारे वह झोपड़ी, कोठरी अथवा बाँस को छप्परों में निवास बनाकर रहने लगते हैं। ऐसे स्थानों पर आवास से बस्तियाँ पास-पड़ोस के वातावरण को भी बुरे ढंग से प्रभावित करती हैं। यह वे स्थान हैं जहाँ गन्दगी चिर स्थायी होती है।

मलिन बस्ती के निवासियों की विशेषताएँ -

मलिन बस्ती के निवासियों की मुख्य विशेषताएँ गरीबी की उच्च दर, बेरोज़गारी की अधिक घटना, शहरी पतन का विशाल स्तर, नशे की लत, शराब की लत और अपराध जैसी सामाजिक समस्याएँ, मानसिक बीमारी और आत्महत्या की प्रवृत्ति, आर्थिक स्थिति का निम्न स्तर, अपर्याप्त बुनियादी ढाँचे की सुविधाएँ, कुपोषण, सुरक्षित पीने के पानी की कमी, खराब स्वास्थ्य देखभाल सुविधाएँ, खराब स्वच्छता वातावरण और जीवन स्तर का निम्न स्तर आदि हैं। (बंडोपाध्याय ए और अग्रवाल वी, 2013) ।

मलिन बस्तियों में रहने वाले लोगों की चिकित्सा और स्वास्थ्य समस्याएँ -

मलिन बस्तियों में रहने वाले लोग आमतौर पर विभिन्न बीमारियों से पीड़ित रहते हैं, और शहरों में गैर-झुग्गी आबादी की तुलना में इनकी दर काफी अधिक होती है। झुग्गी क्षेत्रों में आम बीमारियों में वायरल बुखार जैसे मलेरिया, दस्त, डेंगू, टाइफाइड और अन्य महामारी शामिल हैं (अविषेक बनर्जी, 2012)। झुग्गी इलाकों में रहने वाले बच्चों में दस्त एक आम बीमारी है। झुग्गी क्षेत्रों में विभिन्न बीमारियों का कारण मुख्य रूप से जनसंख्या का अधिक घनत्व, खराब रहन-सहन की स्थितियाँ, कम टीकाकरण दर, स्वास्थ्य देखभाल की अवहेलना और अपर्याप्त स्वास्थ्य सेवाएँ हैं। झुग्गी इलाकों में रहने वाली महिलाएं मुख्य रूप से मौसमी वायरल बुखार, खांसी और

जुकाम, अस्थमा और अन्य संक्रामक बीमारियों के साथ-साथ आनुवंशिक समस्याओं से पीड़ित हैं। ज्यादातर झुग्गी महिलाओं का अपने स्वास्थ्य की तरफ ध्यान कम रहता है क्योंकि वे मजदूरी वाले काम में ज्यादा समय बिताती हैं और अस्वच्छ परिस्थितियों में रहती हैं (Goswami S, 2014)। इनमें से कई महिलाओं को शिक्षा की कमी है, और इससे उनके बच्चों के खाद्य पोषण के बारे में जानकारी कम होती है। यह अध्ययन मलिन इलाकों में रहने वाली महिलाओं की स्वास्थ्य समस्याओं पर केंद्रित है।

अध्ययन का उद्देश्य -

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य मलिन बस्तियों की महिलाओं में पोषण और स्वास्थ्य की स्थिति का अध्ययन करना।

अध्ययन पद्धति -

यह अध्ययन बिहार के आरा नगर पर आधारित है। आरा नगर निगम के अंतर्गत मलिन बस्तियों में रहने वालीं 100 महिलाओं को स्तरीकृत दैव निदर्शन पद्धति से निदर्श चयन किया गया है। आरा नगर निगम के सम्पूर्ण वार्ड में से मात्र पांच वार्ड चुने गए हैं, और प्रत्येक वार्ड से 20 निदर्श नमूना महिला उत्तरदाताओं को चुना गया है, श्रेणी की महिलाएं शामिल हैं जो झुग्गी इलाकों में रहती हैं।

साहित्य की समीक्षा -

- **थापन, मीनाक्षी (1997)** ने अपने आलेख में लिखा है कि महिला शिक्षा और शहरी मलिन बस्तियों में उनके स्वास्थ्य पर किये गये अपने शाध में स्पष्ट किया कि जीवन के सभी चरणों में महिला स्वास्थ्य और संस्कृति के व्यक्तिगत विकास और स्वतंत्रता के लिए सकारात्मक सम्भवनाएँ है।
- **बसु एस और सिद्ध एस०ए० (2005)** ने अपने शोध आलेख में लिखा है कि महिला स्वास्थ्य पर कार्य स्थिति के शुद्ध प्रभाव की जाँच करते है। सामाजिक-आर्थिक कारकों और कार्य की स्थिति दोनों ही कारक महिला स्वास्थ्य को प्रभावित करते है। इन कारकों को नियमित करने के बाद भी महिला स्वास्थ्य पर प्रभाव बना रहता है।
- **शुभंकर बनर्जी (2005)** अपने अध्ययन में स्पष्ट किया है कि सामाजिक विकास के बावजूद भारत में ऐसी करोड़ों महिलाएँ है। जो अपनी अनेक सामाजिक, आर्थिक, मानसिक, असमर्थताओं के कारण मजबूर होकर कुपोषित है।
- **मीरा मिश्र** अपने अध्ययन में बताया कि अधिकांश महिलाओं का वजन एवं लम्बाई कम होती है और उनमें खून की कमी होती है। परिणामतः वे कमजोर बच्चों को जन्म देती है और स्वयं भी कुपोषण की शिकार हो जाती है।
- **मंजुलता छिल्लर (2010)** ने अपने शोध आलेख भारतीय नारीः शोषण के बदलते आयाम में बताया है कि आजादी के इतने सालों में बाद भी महिलाओं के प्रति समाज में अधिक परिवर्तन देखने को नहीं

मिलता है। आज भी महिलाओं के स्वास्थ्य और सेहत को लेकर लापरवाही बरती जाती है। समाज में महिलाओं के स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता कमी नजर आती है। खसकर ग्रामीण या अशिक्षा क्षेत्रों में इसका प्रतिशत अधिक है।

- **अखिलेशर लाल श्रीवास्तव (2017)** ने अपने अध्ययन के अंर्गत लिखतें है कि विभिन्न प्रकार के रोग वातावरण से व्यक्ति अथवा स्त्री को मिलते है। विश्व महिलाओं के चैथे सम्मेलन में यह कहा गया कि स्त्री का स्वास्थ्य परिवार की आर्थिक, सामाजिक स्थिति पर निर्भर करता है। काम के बोझ से स्त्रियों का ध्यान अपने स्वास्थ्य के प्रति जाता ही नहीं। इतने कठीन मेहनत के बाद उनको पौष्टिक भोजन भी प्राप्त नहीं होता है। इसकिए वे अस्वस्थ्य रखती है।
- **लेविस (1958)** के अध्ययन में अनेक सामान्य एवं भयावह रोगों के कारकों से सम्बन्धित धारणाओं की विवेचना की गयी है। मलेरिया, चेचक, मियादी बुखार, पेचिस, निमोनिया, तपेदिक इत्यादि रोगों से सम्बन्धित दृष्टिकोणों की विवेचना की गयी है। लेविस ने अपने अध्ययन में यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि विभिन रोगों के सम्बन्ध में समुदाय में प्रचलित अवधारणायें क्या हैं और इन अवधारणाओं का स्वास्थ्य एवं रोग से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार की समस्याओं के विवेचन में क्या महत्त्व है।

आंकड़ों का विश्लेषण :-

तालिका संख्या -1

उत्तरदात्रियों की आयु

आयु समूह	संख्या	प्रतिशत
18-25	20	20.00
26-35	62	62.00
36-45	13	13.00
50 से अधिक	5	05.00
योग	**100**	**100.00**

तालिका स्पष्ट होता है कि अध्ययन के निदर्श में 13.00 पारिवारिक मुखिया 36-45 वर्ष आयु समूह के हैं, 62.00 प्रतिशत उत्तरदात्री 26-35 वर्ष आयु समूह के हैं, 20.00 प्रतिशत उत्तरदात्री 18-25 वर्ष आयु समूह के एवं 5.00 प्रतिशत उत्तरदात्री 50 से अधिक आयु समूह के हैं।

स्पष्ट है कि अधिकांश उत्तरदात्री 62.00 प्रतिशत 26-35 वर्ष आयु समूह के हैं। स्पष्ट है कि अध्ययन में सम्मिलित उत्तरदात्री परिपक्व आयु-समूह के हैं।

तालिका संख्या – 2

महिलाओं में पोषण सम्बन्धित स्थिति

पोषण स्थिति	संख्या	प्रतिशत
सामान्य	35	35.00
कम वजन	54	54.00
अत्यधिक वजन /मोटापा	03	03.00
कुपोषित	08	08.00
कुल योग	**100**	**100.00**

इस अध्ययन से स्पष्ट होता है कि अधिकांश महिलाएं 54 प्रतिशत कम वजन स्थिति में है जबकि 35 प्रतिशत सामान्य पोषण स्थिति में है। 08 प्रतिशत महिलाएं कुपोषित स्थिति में है जबकि 03 प्रतिशत महिलाएं अत्यधिक वजन / मोटापा से ग्रस्त हैं।

अतः स्पष्ट होता है कि अधिकांश 54 प्रतिशत मलिन बस्तियों में रहने वाली महिलाएं कम वजन स्थिति है, जिससे आधार पर कहा जा सकता है कि महिलाएं पोषण सम्बन्धित समस्याओं का सामना कर रही है।

तालिका संख्या –3

महिलाओं के हीमोग्लोबिन गणना के आधार पर

हीमोग्लोबिन स्तर	संख्या	प्रतिशत
7-9.5	74	74.00
9.5-12	15	15.00
12-15	11	11.00
कुल योग	**100**	**100.00**

तालिका संख्या 3 से स्पष्ट होता है कि अधिकांश 74 प्रतिशत महिलाओं का हीमोग्लोबिन का स्तर 7-9.5/ ग्राम डीएल (ग्राम प्रति डेसीलिटर) के बीच है, जबकि 15 प्रतिशत महिलाओं का हीमोग्लोबिन का स्तर 7-9.5/ ग्राम डीएल (ग्राम प्रति डेसीलिटर) के बीच पाया गया। 11 प्रतिशत महिलाओं का हीमोग्लोबिन का स्तर 12-15 बीच का है।

अतः स्पष्ट होता है कि अधिकांश 74 प्रतिशत मलिन बस्तियों में रहने वाली महिलाओं का हीमोग्लोबिन का स्तर 7-9.5/ ग्राम डीएल (ग्राम प्रति डेसीलिटर) के बीच है।

तालिका संख्या –4

दैनिक जीवन में भोजन के आवश्यक तत्वों की जानकारी के आधार पर

तत्वों की जानकारी	संख्या	प्रतिशत
हाँ	27	27.00
नहीं	73	73.00
कुल योग	**100**	**100.00**

तालिका संख्या 4 से स्पष्ट होता है कि अधिकांश 27 प्रतिशत उत्तरदात्रियाँ दैनिक जीवन में भोजन के आवश्यक पोषक तत्वों की जानकारी रखती है, जबकि 73 प्रतिशत उत्तरदात्रियाँ जानकारी नहीं रखती है।

अतः यह कहा जा सकता है कि महिलाएँ अधिकांश 73 प्रतिशत दैनिक जीवन में भोजन के आवश्यक तत्वों की जानकारी नहीं रखती है। खान-पान तत्वों का सम्मिलित करती है।

तालिका संख्या –4

इलाज कराने के आधार पर

विचार	संख्या	प्रतिशत
सरकारी अस्पताल	53	53.00
गैर सरकारी	27	27.00
घरेलू उपचार	23	23.00
कुल योग	**100**	**100.00**

आँकड़ों से स्पष्ट ज्ञात होता है कि अधिकांश 53 प्रतिशत उत्तरदात्रियाँ बीमार होने पर सरकारी अस्पताल में इलाज कराती है, जबकि 27 प्रतिशत उत्तरदात्रियाँ बीमार होने पर गैर सरकारी अस्पताल में इलाज कराती है तथा 23 प्रतिशत उत्तरदात्रियाँ बीमार होने पर घरेलू उपचार का उपयोग करती है।

अतः स्पष्ट होता है कि अधिकांश 53 प्रतिशत ग्रामीण महिलाओं का मानना है कि बीमार पड़ती है तो सरकारी अस्पताल में इलाज करती है।

निष्कर्ष -

अध्ययन से प्राप्त आंकड़ों के अनुसार, आरा नगर निगम में मलिन बस्तियों की महिलाओं की खाद्य संरचना और उसकी गुणवत्ता के संबंध में कई चुनौतियां उभरती हैं। यह समस्याएँ न केवल उनके स्वास्थ्य को प्रभावित करती हैं, बल्कि उनके विकास और शैक्षिक विकास में भी बाधाएँ डालती हैं। खाद्य संरचना में अपूर्णता की स्थिति गंभीर है। उनकी आहार में प्रोटीन, विटामिन, और मिनरल्स की कमी है, जो उनके शारीरिक और मानसिक विकास के लिए अत्यंत आवश्यक हैं। परंपरागत रूप से महिलाओं को कम मात्रा में आहार दिया जाता है, जिससे उनकी पोषण की आवश्यकता पूरी नहीं हो पाती हैं। इसके अतिरिक्त, सामाजिक दबाव और सामाजिक मान्यताओं के कारण भी लड़कियाँ अपनी भोजन प्रवृत्ति में परिवर्तन नहीं ला पाती हैं। अधिकांश 54 प्रतिशत

मलिन बस्तियों में रहने वाली महिलाएं कम वजन स्थिति है, जिससे आधार पर कहा जा सकता है कि महिलाएं पोषण सम्बन्धित समस्याओं का सामना कर रही है । अधिकांश 74 प्रतिशत मलिन बस्तियों में रहने वाली महिलाओं का हीमोग्लोबिन का स्तर 7-9.5/ ग्राम डीएल (ग्राम प्रति डेसीलिटर) के बीच है। अधिकांश 73 प्रतिशत दैनिक जीवन में भोजन के आवश्यक तत्वों की जानकारी नहीं रखती है।

सन्दर्भ सूची -

1. Agarwal, Siddharth, et al. "Birth Preparedness and Compilation Readiness among Slum Women in Indore City, India." Journal of Health, Population and Nutrition, vol. 28, no. 4, 2010, pp. 383-391.
2. Amirul Hasan, Md and Vandana Shukla. "Nutritional Status of Women Living in Slums in Allahabad City, Uttar Pradesh, India." International Journal of Food and Nutritional Sciences, vol. 2, no.1, 2013, pp. 84-88.
3. Banerjee, Avishek "Status of Health among Slum Dwelling Women: A Case Study on Dankuni Municipality, Hooghly." International Journal of Current Research, vol. 4, no.11, 2012, pp. 49-53.
4. Donta, Balaiah. et al. "Awareness of Cervical Cancer among Couples in a Slum Area of Mumbai." Asian Pacific Journal of Cancer Prevention, vol. 13, 2012, pp. 4901-4903. Gangadharan, K. Utilization of Health Services in Urban Kerala: A Socio-Economic Study, Serials publications, 2005.
5. Goswami, Sribas. "A Study on Women's Healthcare Practice in Urban Slums: Indian Scenario." Evidence Based Women's Health Journal, vol. 4, no. 4, 2014, pp. 201-207.
6. Joshi, Seema. "Marriage, Migration and Labour Market in Slum Areas." Nagarlok, vol. 37, no. 3, 2005, pp. 34-39.
7. Kadam, A.M. "Female Health in Slum Areas: A Review." International Journal of Advanced Research, vol. 3, no. 2, 2015, pp. 48-51.
8. Meenakshi Thapan (1997), "Live age between Culture Education and women's Health in urban slum", vol-32, Issue No. 43 20July, 1997, Economic & Political weekly.
9. Narayen D (2006), Women Health is Rural Community of Kerala, Journal of Epidemiology and community Health, 1-8.
10. Basu, S, Sidh SH (2005) "Work status and Health of women: A comparative study of northern and southern states of rural Indias" World Health Population, (2008), 10(2), 40-52.

11. Vats, A (2009) "Nutritional and Health of form women in Uttarakhand", Asian Journal of Bio Science1-3
12. Negi, V.S. Rawat, (2010)" Work Participation and role of Gender in village, ecosystem, central Himalya's India", International Journal of Science and technology, 137-146.
13. Mathew, C.P. (2016), A Study on women Benefactions of National rural Health reason with special reference to Berwani District of Madhya Pradesh, Research Thesis.
14. नर्जी, शुभंकर (2005) , महिला कुपोषणः एक राष्ट्रीय समस्या कुरूक्षेत्र, अंक-2 दिस्मबर, ।
15. मिश्रा मीरा (2017), कुपोषण की रोकथाम: महिला स्वास्थ्य की भूमिका योजना अंक-2 फरवरी जुलाई दिस्मबर, 2017।

Email Id : Sheetal.jay27@gmail.com
Mob. 9102948345

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2026 Page No. : 60-63

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.22679720

जाति व्यवस्था पर डॉ. अम्बेडकर के विचार : एक अध्ययन

डॉ. सुनील कुमार चौधरी
सहायक आचार्य, इतिहास विभाग
हिंदू पी. जी. कॉलेज, जमानियां, गाजीपुर।

सारांश :

यह शोध पत्र भारतीय समाजशास्त्रीय और राजनीतिक चिंतन के महानायक डॉ. भीमराव अम्बेडकर के जाति व्यवस्था संबंधी विचारों का एक विश्लेषणात्मक अध्ययन है। डॉ. अम्बेडकर ने जाति व्यवस्था को केवल श्रम का विभाजन नहीं, बल्कि 'श्रमिकों का विभाजन' माना। उन्होंने अपनी कालजयी कृति 'एनीहिलेशन ऑफ कास्ट' (जाति का उच्छेद, 1936) में जाति व्यवस्था की धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक जड़ों पर कड़ा प्रहार किया। प्रस्तुत पत्र में जाति के उद्‌भव, के संदर्भ में उनके विचारों को विश्लेषित करने का प्रयास है।

बीज शब्द – जाति व्यवस्था, श्रमिक, समाजशास्त्रीय, जाति का उच्छेद।

प्रस्तावना –

प्राचीन काल से ही भारतीय सामाजिक व्यवस्था अत्यन्त जटिल रही है। समाज में अनेक प्रकार के विभाजन विद्यमान थे। इन सबमें सबसे बड़ा विभाजन था जाति व्यवस्था। यह विभाजन तथाकथित निम्न जाति में जन्में व्यक्तियों का न केवल शारीरिक शोषण करता था, अपितु मानसिक शोषण भी करता था। समाज में जाति व्यवस्था न सिर्फ दयनीय थी बल्कि देश के विकास में एक बड़ी बाधा भी थी, जो कि आज भी बनी हुई है, हालांकि समय–समय पर समाज सुधारकों द्वारा इसमें सुधार के लिए प्रयास किए जाते रहे हैं, लेकिन यह व्यवस्था भारतीय जनमानस की गहराईयों में इतनी गहरी जड़ बना चुकी है कि इतनी आसानी से उखाड़ फेंकना आसान नहीं है। इसी दिशा में डॉ. बी. आर. अम्बेडकर द्वारा एक सार्थक पहल की शुरूआत की गई।

भारतीय समाज में जाति व्यवस्था एक ऐसी संरचना रही है जिसने असमानता, शोषण और सामाजिक विभाजन को जन्म दिया। डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने इस व्यवस्था को केवल एक अकादमिक दृष्टिकोण से नहीं देखा, बल्कि उन्होंने इसकी तर्कपूर्ण व्याख्या भी की है, सी उन्होंने इसके दंश को स्वयं अनुभव किया था। उनका मानना था कि जब तक भारतीय समाज से जाति व्यवस्था का समूल उन्मूलन नहीं हो जाता, तब तक वास्तविक स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व की स्थापना संभव नहीं है।

डॉ. अम्बेडकर के द्वारा भारतीय समाज का विश्लेषण :

प्रारंभ से ही भारतीय समाजिक व्यवस्था काफी हद तक जड़तापूर्ण थी। इतिहासकार कार्ल मार्क्स के अनुसार, अंग्रेजों के आगमन से पूर्व भारतीय सामाजिक ढांचा जर्जर था। मेक्सवेबर ने भी लिखा है कि हिन्दू धर्म

दरअसल जादू, अन्धविश्वास और अध्यात्मवाद की खिचड़ी बन कर रह गया था।[1] तत्कालीन भारतीय समाज की मुख्य विशेषता थी– जाति–व्यवस्था, और जाति व्यवस्था ने भारतीय सामाजिक जीवन को इतना प्रभावित कर रखा था कि सामुदायिक, वर्गीय एवं राष्ट्रीय विचारों का अस्तित्व में आना असम्भव प्रतीत हो रहा था।[2]

ऐसी विषम सामाजिक परिस्थितियों में डॉ. बी. आर. अम्बेडकर का जन्म भारत के इतिहास में एक अभूतपूर्व घटना माना जाता है। दलित परिवार में जन्म लेने के कारण भीमराव को बचपन से ही इन सामाजिक असमानताओं का सामना करना पड़ा। छुआछूत का प्रहार इतना कड़वा था कि इसका एहसास अम्बेडकर को छात्र जीवन में ही हो गया था। डॉ. अम्बेडकर ने जगह–जगह अपमान के कड़वे घूंट पिए और असुविधाओं के सामने भी छूटने नहीं टेके। उन्होंने मन लगाकर पढ़ाई करी तथा उच्च शिक्षा प्राप्त की।[3]

उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए वह विदेश भी गए। इस प्रकार डॉ. अम्बेडकर ने कोलंबिया विश्वविद्यालय से पी. एचडी., एवं लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स एंड पॉलिटिकल साइंस से डी. एस सी. व लंदन से ही बार एट्लॉ की उपाधियां प्राप्त की। इसके बाद वे भारत में अपनी जन्म भूमि पर वापस आ गए। डॉ. बी. आर. अम्बेडकर हिन्दू समाज में सुधार कर उसे सही मार्ग देने का निश्चय किया। उन्होंने समाज का पुर्नमूल्यांकन कर यह निष्कर्ष निकाला कि समाज में सबसे ज्यादा दलित पिछड़ी जातियों एवं महिलाओं की स्थिति खराब है। उन्होंने अपना सारा ध्यान इन वर्गों के उत्थान एवं सेवा में लगाने का निश्चय किया।

जाति व्यवस्था का स्वरूप और अम्बेडकर का दृष्टिकोण :

जाति व्यवस्था के समर्थन हेतु कई आधार प्रस्तुत किए गए हैं। जाति प्रथा के संदर्भ में यह दलील दी जाती है कि श्रम का विभाजन प्रत्येक सभ्य समाज का अनिवार्य लक्षण होता है तथा जाति–प्रथा में कोई समस्या नहीं है। इस विचार के विरुद्ध डॉ. अम्बेडकर ने तीन प्रमुख दलीलें प्रस्तुत की हैं–

पहली कि जाति व्यवस्था केवल श्रम का विभाजन नहीं है बल्कि श्रमिकों का विभाजन है।[4] यद्यपि यह सत्य है कि श्रम का विभाजन जरूरी है किंतु किसी भी सभ्य समाज में श्रम के विभाजन के साथ इस प्रकार के पूर्णतया अलग वर्गों में श्रमिकों का अप्राकृतिक विभाजन नहीं होता।

दूसरी बात यह एक श्रेणीबद्ध व्यवस्था है।[5] जिसमें श्रमिकों का विभाजन सोपानात्मक क्रम में, एक के ऊपर दूसरे क्रम में होता है। किसी भी देश में ऐसी श्रेणीबद्ध व्यवस्था हमें परिलक्षित नहीं देती है।

तीसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि जाति व्यवस्था में यह विभाजन स्वतः नहीं होता है, यह स्वाभाविक अभिरुचियों का पालन नहीं करती। सामाजिक एवं व्यक्तिगत कार्य कुशलता के लिए जरूरी है कि किसी व्यक्ति की क्षमता को इस बिंदु तक विकसित किया जाए कि वह अपनी आजीविका का चुनाव स्वयं कर सके।

जाति प्रथा में इस सिद्धांत का उल्लंघन होता है क्योंकि इसमें व्यक्तियों का कार्य पूर्व निर्धारित कर दिया जाता है। जिसका चुनाव प्रशिक्षित मूल क्षमताओं के अनुसार नहीं किया जाता बल्कि जन्म आधारित तथा माता–पिता के सामाजिक स्तर पर होता है।

सामाजिक असमानता के इस स्वरूप को जिसमें ऊंची–नीची स्थितियां वाले विभिन्न सामाजिक वर्ग, असमान अधिकार और सुविधाएं प्राप्त करते हैं और सामाजिक अभिमति से प्रयुक्त सिद्धांतों के आधार पर एक–दूसरे को ऊंचा–नीचा मानकर अन्तःक्रिया करते हैं, को सामाजिक स्तरीकरण कहा जाता है। सामाजिक

स्तरीकरण के एक विशिष्ट मॉडल का नाम जाति व्यवस्था है।[6]

डॉ. अम्बेडकर ने भारतीय सामाजिक व्यवस्था का गहन अध्ययन किया और यह निष्कर्ष निकाला कि इसमें लोकतन्त्र के लिए कोई जगह नहीं है। इसमें स्वतन्त्रता के लिए कोई स्थान नहीं। यह स्पृश्यों का गणतन्त्र था, जो अस्पृश्यों पर स्थापित एक विशाल साम्राज्य था। यह हिन्दुओं का एक प्रकार का उपनिवेशवाद था, जो मात्र अस्पृश्यों का शोषण करने के लिए था। इस तरह उन्होंने यह स्थापित करने का प्रयास किया है कि भारतीय समाज में सबसे गहराई वाले साम्प्रदायिक विभाजन, अस्पृश्यों और स्पृश्यों के बीच है जो कि सामाजिक स्तरीकरण के घृणित स्वरूप अस्पृश्यता की संस्था का परिणाम है।[7] डॉ. बी. आर. अम्बेडकर एक समाज सुधारक के साथ–साथ एक तर्कशील चिन्तक भी थे। अपने सामाजिक चिन्तन में उन्होंने बताया कि हिन्दू समाज जाति व्यवस्था पर आधारित असमानता एवं शोषण का प्रतीक बनकर रह गया है। जिसमें सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक असमानता निहित है। वर्ण व्यवस्था ने समाज में छुआछूत को स्थापित किया है तथा यह व्यवस्था मानवता के लिए अभिशाप बन कर रह गयी है।[8]

अपनी पुस्तक 'जाति–भेद का विनाश' (1936) के माध्यम से उन्होंने लोगों को सचेत किया कि जब तक जाति व्यवस्था को समाप्त नहीं किया जाता तब तक हिन्दू समाज का सुधार एवं विकास सम्भव नहीं है। जाति व्यवस्था ने हिन्दू समाज को शक्तिहीन व कमजोर बना दिया है। यही कारण है कि इतने वर्षों से हिन्दू गुलामी का जीवन जीने के लिए मजबूर हैं।[9]

डॉ. अम्बेडकर के अनुसार, जाति व्यवस्था ने हिन्दू समाज में बंधुत्व को लगभग समाप्त कर दिया है। उन्होंने इसके लिए हिन्दू धर्म और उसके दर्शन को दोषी करार दिया। डॉ. अम्बेडकर ने हिन्दू धर्म दर्शन का गहन अध्ययन किया और कहा कि हिन्दू धर्म में असमानता एक स्वीकृत धार्मिक सिद्धान्त था और उसे जान–बूझकर एक धर्म मत के रूप में प्रचारित–प्रसारित किया जाता रहा था।

जाति–व्यवस्था एक अधिकृत धार्मिक तत्व था और कोई भी खुले तौर पर उसका पालन करने में लज्जा अनुभव नहीं करता था। इस प्रकार डॉ. अम्बेडकर ने यह निष्कर्ष निकाला कि सामाजिक स्तरीकरण पर आधारित यह सामाजिक व्यवस्था काफी गहरे ऐतिहासिक आधार रखती थी। इसकी ऐतिहासिक जड़े प्राचीन हिन्दू धर्म दर्शन में फैली थी जिसे काफी हद तक सिद्धांतकर मनु ने व्यवस्थित कानूनी और संस्थागत रूप दिया था। यह धर्म दर्शन मूलतः समानता, स्वतन्त्रता एवं बंधुत्व तीनों ही के खिलाफ था और उसका मूल मन्त्र असमानता का सिद्धान्त था, जो कि वर्ण व्यवस्था में निहित था और उसने जाति की संस्था के रूप में जटिलतम और विकृत रूप धारण कर लिया था।[10]

निष्कर्ष :

डॉ. अम्बेडकर के जाति व्यवस्था पर विचार आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं जितने उनके समय में थे। उन्होंने जाति व्यवस्था को केवल एक सामाजिक बुराई नहीं, बल्कि राष्ट्र के आर्थिक और नैतिक विकास में सबसे बड़ी बाधा के रूप में विश्लेषित किया।

उनका अंतिम लक्ष्य एक ऐसे समाज का निर्माण करना था जो 'स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व' के सिद्धांतों पर आधारित हो, जिसे उन्होंने आधुनिक राज्य के रूप में परिभाषित किया है।

संदर्भ ग्रंथ :

1. धनन्जय कीर, डॉ. अम्बेडकर लाइफ एण्ड मिशन, पृ० 1–3.
2. वहीं पृ. 3–4.
3. डब्ल्यू, एन. कुबेर, आधुनिक भारत के निर्माता डॉ. अम्बेडकर, पृ० 11.
4. अम्बेडकर, डॉ. बी. आर. 2020, बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वांग्मय खंड 1. नई दिल्ली : डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, पृ. 54.
5. वही, पृ. 54.
6. बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर संपूर्ण वाङ्मय, खण्ड 10, पृ० 41–42.
7. वही, पृ. 49
8. भटनागर, आर. एन., डॉ. अम्बेडकर जीवन और दर्शन, किताबघर, नई दिल्ली, 1990, पृ. 148.
9. बाली, एल. आर. डॉ. अम्बेडकर जीवन और दर्शन, सुमत प्रकाशन, नागपुर, 1987, पृ० 169.
10. वहीं पृ० 17.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2026 Page No. : 64-70

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.22679720

Water Power and Empire : Canal Irrigation as a Tool of Colonial Rule in British India

Mohd Adnan

Independent Researcher, Delhi, India.

Abstract :

This paper examines the political economy of canal irrigation in British India, arguing that water infrastructure served not only as a means of agricultural development but also as a strategic instrument of colonial rule. Although British administrators justified canal construction as a response to famine, low agricultural productivity, and environmental uncertainty, this study contends that irrigation projects primarily advanced imperial objectives of revenue extraction, territorial integration, and administrative control. Using an interdisciplinary historical approach, the paper analyses colonial administrative reports, irrigation commission records, legislative proceedings, and relevant historiography to explore the relationship between hydraulic engineering and colonial state formation. The study shows that canal irrigation transformed agrarian landscapes by reshaping land ownership, cropping patterns, and access to water while extending the fiscal and bureaucratic reach of the colonial state. Irrigation policies largely benefited commercially productive regions and influential landed elites, reinforcing social inequalities and marginalizing indigenous water-management institutions. By locating canal irrigation within the broader framework of colonial environmental history and political ecology, the paper challenges narratives that celebrate British irrigation as merely an engineering achievement. It argues instead that control over water was fundamental to the consolidation of imperial authority, making hydraulic infrastructure a

crucial foundation of governance, economic exploitation, and state power in colonial India.

Keywords : Canal Irrigation, Colonial Rule, Famine, Hydraulic Engineering, Imperial Authority.

Introduction :

The British began the construction of canal irrigation systems in India as early as 1817; however, a significant milestone in colonial hydraulic development was the inauguration of the Upper Ganga Canal in 1854.[i] During the same period, major irrigation initiatives were also undertaken in South India, particularly under the direction of engineers such as Arthur Cotton. However, the present study focuses primarily on the development of water infrastructure in North India, especially in the regions of the United Provinces (present-day Uttar Pradesh) and Punjab, and examines its relationship with British colonial power. The inspiration for this study comes from David Gilmartin's influential work, *Blood and Water: The Indus River Basin in Modern History*, which I engaged with in the context of my Ph.D. research topic. His analysis encouraged me to reconsider the role of water during the colonial period and raised a fundamental question: Was water in British India merely a natural resource to be managed and exploited, or did it also function as a medium through which power, governance, and social relations were constructed and transformed? This question forms the foundation of the present research, which explores the intersection of water, colonial authority, and social transformation in British India.

According to British civil servant W. H. Moreland, agriculture in the United Provinces was monsoon-dependent and practiced using traditional methods, resulting in unstable agricultural production and the poor condition of farmers. To address these problems, the British government introduced canal irrigation, improved agricultural technology, scientific farming, and better land management to increase agricultural production and stabilize government revenue.[ii] Proby Thomas Cautley, the Chief

Engineer of the Ganga Canal, argued that the Ganga and Yamuna canal systems were designed to increase agricultural productivity, improve mobility, provide protection against drought, and enhance state revenue. He presented these canals as public works that not only improved the ecological conditions of the region but also strengthened the efficiency of colonial governance.[iii] However, Elizabeth Whitcombe, in her study of canal irrigation in the Ganga–Yamuna Doab, analyses its impact on ecology and the rural economy. She argues that canal construction proved to be a costly colonial experiment, as its disadvantages often outweighed its benefits. According to Whitcombe, irrigation practices, state policies, and peasant responses together created significant environmental and economic disruptions. The introduction of large volumes of canal water into flat plains with already high groundwater levels led to severe waterlogging and disrupted natural drainage systems, increasing diseases such as malaria. Rising water tables weakened traditional wells, forcing cultivators to depend on uncertain canal supplies. At the same time, peasants faced exploitation from canal officials who imposed informal levies in addition to state taxes. Whitcombe also notes that canal irrigation promoted commercial agriculture at the cost of food crops, reduced soil fertility, and weakened pastoral economies by limiting fodder and draught animals. Moreover, canals failed to effectively mitigate famines. Thus, while canal irrigation imposed significant economic and ecological burdens on cultivators, it also strengthened the British colonial state's control over rural society by increasing peasants' dependence on the canal system and expanding administrative intervention in agricultural production and water distribution.[iv]

Thus, we see that canal irrigation, contrary to colonial claims, had several negative effects. To examine how canal irrigation influenced the formation of the British state, it is essential to understand the views of Karl Wittfogel. In the 1950s, Karl Wittfogel argued that water control (control dictated by state on nature) was closely linked to the authoritarian tendencies of the modern state. He maintained that the historical roots of modern authoritarianism lay in state-managed irrigation systems, which became the central focus of what he later termed the "hydraulic state." According to Wittfogel, the

dependence of large-scale irrigation works on centralized authority shifted power from local communities to authoritarian state managers. These managers controlled the knowledge, the mobilization of labor, and the military resources necessary to maintain and protect these irrigation systems. This concentration of power, in turn, gave rise to hierarchical class divisions and ideological frameworks that justified such authority. Although Wittfogel's arguments focused primarily on ancient examples, his main objective was to critique the authoritarian state power of his own time. He also sought to demonstrate how state power became legitimized through the control—and the scientific control—of nature, particularly in arid environments.[v]

Another scholar, David Mosse explains that the ideological divide between large-scale, bureaucratic irrigation systems and local, community-based, small-scale irrigation has an intellectual history of its own. Its roots lie in the 150 years of state-building in South Asia, beginning in the mid-nineteenth century. Mosse's central argument is that irrigation is not merely a resource for agriculture but also a tool of governance and state control. Through irrigation systems, the state establishes its presence and authority in rural society. However, local communities, farmers, and other social groups also shape these policies. Consequently, irrigation management is a continuous process of negotiation between the state and society. Furthermore, decisions regarding who receives water, in what quantity, and who is excluded are influenced by existing social power relations.[vi]

The British did not exercise direct control over rural life; instead, they governed through local landlords and revenue collectors. According to Thomas R. Metcalf, the talukdars relied on an organized network of employees and agents, known as *karindas*, to collect revenue. They also possessed the authority to hear both civil and criminal cases. In addition, they exercised control over local institutions such as the police and the *patwaris*. Thus, the British government-maintained control over almost every aspect of rural life in the United Provinces and Awadh through these zamindars and talukdars.[vii]

In the context of Punjab, Neeladri Bhattacharya explains that the British government established large-scale canal colonies in the pasture-rich uplands across the Sutlej River in colonial Punjab. Although this region was largely barren, it possessed immense potential for agricultural cultivation. By the early 1880s, these scrub-covered wastelands were brought under colonial control through systematic mapping, surveying, and the demarcation of boundaries. The first canal colony project was initiated in Multan in 1886. Over the following fifty years, the British constructed an extensive network of perennial canals across the uplands between the Sutlej and Jhelum rivers, transforming more than four million acres of pastureland into cultivable agricultural land.[viii] In this context, Imran Ali argues that the colonial government in Punjab transformed the rural economy through agricultural development, canal irrigation, and the establishment of new canal colonies. While canal irrigation and agricultural expansion significantly increased agricultural production, they also strengthened the colonial state's control over farmers and land resources. Colonial policies in Punjab gave rise to a rural elite consisting of large landholders and dominant zamindars, whereas the socio-economic condition of small cultivators and the lower classes remained largely unchanged.[ix]

According to Malcolm Lyall Darling, Punjab's farmers occupied a unique position during the colonial period. On the one hand, canal irrigation, agricultural expansion, and the growth of markets brought increased prosperity to farmers in certain regions. On the other hand, indebtedness to moneylenders, land transfers, and chronic rural debt kept many cultivators in severe economic distress.[x] In *At Freedom's Door*, Malcolm Darling observed that India had reached the threshold of political independence, yet the fundamental problems of rural society—poverty, indebtedness, illiteracy, unequal access to land, and the backwardness of agriculture—continued to persist. He argued that political independence alone was insufficient; genuine freedom could only be achieved through comprehensive socio-economic reforms in the rural and agricultural sectors.[xi]

In Conclusion, we can say that Canal irrigation in British India was not merely an agricultural or engineering project but a significant instrument of colonial rule. While it

increased agricultural production and expanded cultivation in many regions, it also enabled the British state to strengthen its control over land, water, and rural society. The regulation of irrigation, revenue collection, and land settlements extended colonial authority into the everyday lives of cultivators. Canal irrigation reshaped agrarian relations, created new social and economic inequalities, and reinforced state power. Thus, irrigation functioned not only as a source of economic development but also as a technology of governance, making water a powerful tool through which the colonial state consolidated its authority over people, resources, and the rural landscape.

References :

Primary sources :

1. Moreland, W. H. *The Agriculture of the United Provinces*. Allahabad: Government Press, 1904.
2. Cautley, Proby Thomas. *A Disquisition on the Heads of the Ganges and Jumna Canals, North-Western Provinces*. London: Smith, Elder & Co., 1864.
3. Cautley, Proby Thomas. *Report on the Canal Works of the Ganges and Jumna*. London: Smith, Elder & Co., 1860.
4. Cotton, Arthur. *Public Works in India*. London: Smith, Elder & Co., 1854.
5. Harris, D. G. *Irrigation in India*. London: Chapman and Hall, 1896.

Secondary sources :

1. Stone, Ian. *Canal Irrigation in British India: Perspectives on Technological Change in a Peasant Economy*. Cambridge: Cambridge University Press, 1984.
2. Bhattacharya, Neeladri. *The Great Agrarian Conquest: The Colonial Reshaping of a Rural World*. State University of New York Press, 2019.
3. Whitcombe, Elizabeth. *Agrarian Conditions in Northern India: The United Provinces under British Rule, 1860–1900*. Berkeley: University of California Press, 1972.

4. Whitcombe, Elizabeth. *"Development Projects and Environmental Disruption: The Case of the United Provinces."* Modern Asian Studies 16, no. 3 (1982): 475–505.
5. Gilmartin, David. *Blood and Water: The Indus River Basin in Modern History*. Berkeley: University of California Press, 2015.
6. Metcalf, Thomas R. *Land, Landlords and the British Raj: Northern India in the Nineteenth Century*. Berkeley: University of California Press, 1979.
7. Darling, Malcolm Lyall. *The Punjab Peasant in Prosperity and Debt*. London: Oxford University Press, 1925.
8. Darling, Malcolm Lyall. *At Freedom's Door*. London: Oxford University Press, 1949.
9. Ali, Imran. *The Punjab under Imperialism, 1885–1947*. Princeton: Princeton University Press, 1988.
10. Mosse, David. *The Rule of Water: Statecraft, Ecology, and Collective Action in South India*. New Delhi: Oxford University Press, 2003.

---

[i] Ian Stone, *Canal Irrigation in British India: Perspectives on Technological Change in a Peasant Economy* (Cambridge: Cambridge University Press, 1984), 13.
[ii] W. H. Moreland, *The Agriculture of the United Provinces* (Allahabad: Government Press, 1904), 77-89.
[iii] Proby Thomas Cautley, *A Disquisition on the Heads of the Ganges and Jumna Canals, North-Western Provinces* (London: Smith, Elder & Co., 1864), 46-69.
[iv] Elizabeth Whitcombe, *Agrarian Conditions in Northern India: The United Provinces under British Rule, 1860–1900* (Berkeley: University of California Press, 1972), 271-279.
[v] David Gilmartin, *Blood and Water: The Indus River Basin in Modern History* (Berkeley: University of California Press, 2015), 4.
[vi] David Mosse, *The Rule of Water: Statecraft, Ecology, and Collective Action in South India* (New Delhi: Oxford University Press, 2003), 53-92.
[vii] Thomas R. Metcalf, *Land, Landlords and the British Raj: Northern India in the Nineteenth Century* (Berkeley: University of California Press, 1979), 281-306.
[viii] Neeladri Bhattacharya, *The Great Agrarian Conquest: The Colonial Reshaping of a Rural World* (Albany: State University of New York Press, 2019), 385-435.
[ix] Imran Ali, *The Punjab under Imperialism, 1885–1947* (Princeton: Princeton University Press, 1988), 8-43.
[x] Malcolm Lyall Darling, *The Punjab Peasant in Prosperity and Debt* (London: Oxford University Press, 1925), 105-128.
[xi] Malcolm Lyall Darling, *At Freedom's Door* (London: Oxford University Press, 1949), 325-350.

Email- adnanahmad.skt786@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2026 Page No. : 71-76

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.22679720

आदिवासी महिलाओं पर स्वयं सहायता समूह का प्रभाव

बिभा कुमारी, शोधार्थी
प्रो.(डॉ.) अवध बिहारी सिंह, शोध निदेशक, प्रोफेसर व अध्यक्ष
स्नात्तकोत्तर समाजशास्त्र विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा, (बिहार)

शोध सारांश :

आदिवासी महिलाओं के सशक्तिकरण में स्वयं सहायता समूह की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका रही है। आदिवासी अक्सर सामाजिक, आर्थिक हास्यप्रधा के लिए धकेल जाते हैं और आदिवासी महिलाएं इस असमानता से प्रभावित होती है। आदिवासी महिलाओं को महिला सशक्तिकरण में स्वयं सहायता समूह के द्वारा किया जा रहा है। यह अध्ययन आदिवासी समुदाय की महिलाओं की स्वयं सहायता समूह की आत्म जागरूकता, राजनीतिक जागरूकता, आर्थिक उन्नति, सामुदायिक सहभागिता अधिकारों को ज्ञान और शिक्षा एवं प्रशिक्षण के प्रभाव का विश्लेषण करना है। इस अध्ययन में पहचाने गए कारकों के वैज्ञानिक विश्लेषण करके आदिवासी महिलाओं के जीवन प्रभावित करने में इन सामाजिक समूह की क्षमता का आकलन करने के लिए एक अधिक व्यवस्थित दृष्टिकोण व्यवस्थित किया जा सकता है। इसे स्वयं सहायता समूह की भागीदारी के माध्यम से उनके समग्र सशक्तिकरण का मूल्यांकन होगा।

शब्द कुंजी – आदिवासी, महिला सशक्तिकरण, स्वयं सहायता समूह।

भूमिका –

भारत का आदिवासी समाज ऐतिहासिक रूप से प्रकृति से गहरे जुड़ा हुआ है। उनकी आजीविका मुख्यतः वनों, कृषि और परंपरागत कार्यों पर आधारित रही है। आधुनिकता और विकास की दौड़ में यह समुदाय अपेक्षाकृत पिछड़ा रह गया। आर्थिक असुरक्षा, शिक्षा का अभाव और सामाजिक अलगाव ने इन्हें हाशिए पर ला दिया। ऐसे परिदृश्य में स्वयं सहायता समूह आदिवासी समाज के उत्थान का माध्यम बने। छोटे समूहों में बचत, ऋण और सामूहिक उद्यमों की शुरुआत ने इन्हें आत्मनिर्भरता और सशक्तिकरण की ओर अग्रसर किया। भारतीय समाज के निर्माण में ग्रामीण एवं शहरी संस्कृति के अतिरिक्त जनजाति संस्कृति का भी महत्वपूर्ण योगदान रहा है। भारत विविधताओं का विशाल देश है। यहाँ अनेक धर्म, मत, सम्प्रदाय, जाति–प्रजाति एवं जनजाति के लोग निवास करते हैं। देश की आबादी का लगभग एक–चौथाई भाग जनजातियों का है। सृष्टि के आरम्भ से ही आदिवासी इस धरती के वासी हैं, जो दुनिया के चकाचौंध से दूर पहाड़ों और जंगलों में रहते आये हैं। प्रकृति से उनका सम्बन्ध सहज और स्वभाविक है। अनेक मामलों में गैर जनजातियों से भिन्न होते हुए भी आदिवासी समुदाय प्राचीनकाल से ही विषाल भारतीय सभ्यता और संस्कृति का अंग रहा है। इसने देश की मुख्यधारा के साथ

मिलकर ही देश की सभ्यता एवं संस्कृति के विकास में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है।

15 नवम्बर, 2000 ई. को बिहार प्रांत का विभाजन हुआ और एक नये प्रांत झारखण्ड का जन्म हुआ। इस विभाजन के पूर्व बिहार में 32 जनजातियाँ मौजूद थीं। ये थीं– संथाल, उराँव, मुंडा, हो, खरवार, भूमिज, लोहरा, कोल, किसान, परहइया, बिरजिया, असुर, शबर, बिरहोर, गोंड, बैगा, बनजारा, गोड़ाइत, बथुड़ी, कोरा, चेरो, माल पहाड़िया, करमाली, खोंड, चिक–बराइक, कवर, बेदिया, खड़िया, कोरबा, महली एवं सौरिया पहाड़िया। विभाजन के उपरांत आज बिहार में जनजातियों की संख्या काफी कम हो गयी है।

आदिवासी क्षेत्रों में बाहरी तत्त्वों के प्रवेश की प्रक्रिया बहुत पहले प्रारंभ हो चुकी थी। इस प्रक्रिया के प्राचीन भारत के इतिहास के उत्तरार्द्ध और पूर्व मध्यकाल में प्रारंभ होते हुए देखा जा सकता है। ब्राह्मणों को मिले भू अनुदानों के कारण ब्राह्मणों का इस क्षेत्र में आना सबसे पहले प्रारम्भ हुआ। ब्राह्मणों ने यहाँ कृषि तकनीकि के साथ–साथ अपनी संस्कृति के मुख्य तत्त्वों का प्रचार–प्रसार किया। आदिवासियों की संस्कृति के कुछ तत्त्वों को भी ब्राह्मणवाद में अंगीकार किया गया। इस सम्मेलन का रोचक परिणाम शाक्त धर्म के उदय के रूप में देखा जा सकता है। इस मेल–जोल का आदिवासियों पर एवं उनकी सामाजिक सांस्कृतिक स्थिति पर सकारात्मक प्रभाव पड़ा। बाद में मैदानी क्षेत्र की कई कृषक जातियों का वहाँ प्रवेष हुआ। इन जातियों में कोयरी, कुर्मी आदि मुख्य थे। इनकी सामाजिक मान्यताओं का भी आदिवासी जीवन पर प्रभाव पड़ा। मुगलकाल में भी यह प्रक्रिया जारी रही। मुगलों के समय इस क्षेत्र में राज्य के आविर्भाव ने सांस्कृतिकरण की प्रक्रिया को तेज किया। राज्य सांस्कृतिकरण का स्वयं एक अभिकर्ता था। औपनिवेशिक सत्ता की स्थापना के बाद यह प्रक्रिया और तेज हो गई औपनिवेशिक व्यवस्था ने आदिवासी क्षेत्रों एवं समाज का भी औपनिवेशीकरण करना प्रारंभ किया। इसका परिणाम यह हुआ कि वृहत्त मात्रा में बाहरी लोगों का इस क्षेत्र में आगमन हुआ। इस काल में औद्योगिकरण और शहरीकरण की तीव्र प्रक्रिया ने भी आदिवासियों के बाहरी लोगों के सम्पर्क को बढ़ाया।

यद्यपि इन सम्पर्कों का परिणाम प्रारंभ से ही आदिवासियों के लिये नकारात्मक रहा। इनका सम्पर्कों से मुख्यतः शोषण ही हुआ। लेकिन इस सम्पर्क के सकारात्मक पहलू को भी देखा जा सकता है। आदिवासियों को बाहरी संस्कृति के तत्वों को देखने एवं अंगीकार करने का मौका मिला। आदिवासी महिलाओं पर विशेष रूप से इसका प्रभाव पड़ा। उनके रहन–सहन, सोच एवं नजरिये पर इसका प्रभाव पड़ा। बाहरी लोगों के सम्पर्क में आने के बाद उनकी पारम्परिक झिझक समाप्त हुई। विशेषकर नये आर्थिक क्रियाकलापों में भागीदारी के क्रम में उनका मध्यस्थ करने वलों एवं मालिकों से सामना हुआ। इससे उनके आत्मविश्वास में स्वाभाविक रूप से वृद्धि हुई। उन्हें बेहतर जिंदगी जीने की प्रेरणा मिली। स्वभावतः आदिवासी महिलाओं ने इस सम्पर्क के सकारात्मक पहलुओं को अपने जीवन में अंगीकार किया और उनकी मनोदशा पहले की तुलना में अधिक सकारात्मक हुई। इस सम्पर्क ने आदिवासी महिलाओं के सशक्तिकरण के लिये न केवल आंतरिक और मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि निर्मित की वरन् अधिक गति भी प्रदान की।

साहित्य की समीक्षा :

- नाबार्ड रिपोर्ट (2005) स्वयं सहायता समूह को बैंक लिंकेज कार्यक्रम को आदिवासी क्षेत्रों में प्रभावी गरीबी उन्मूलन का साधन बताया है।
- विश्व बैंक (2011) ने आदिवासी महिलाओं में आत्मविश्वास और सामूहिक निर्णय क्षमता को बढ़ाया है।

- मिशन शक्ति, ओडिशा (2014) स्वयं सहायता समूह मॉडल ने लघु वनोपज आधारित उद्यमों को प्रोत्साहित कर ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सशक्त किया।
- तेजस्विनी परियोजना, मध्यप्रदेश आदिवासी महिलाओं के लिए स्वयं सहायता समूह आधारित प्रशिक्षण और उद्यमिता कार्यक्रम का उल्लेखनीय उदाहरण है।

अध्ययन का उद्देश्य :

- आदिवासी महिलाओं में स्वयं सहायता समूह की भूमिका का अध्ययन करना है।
- आदिवासी महिलाओं के उथान में स्वयं सहायता समूह के प्रभाव का अध्ययन करना।

अध्ययन पद्धति :

प्रस्तुत शोध आलेख द्वितीयक तथ्यों पर आधारित है। जिसमें सरकारी रिपोर्ट, NABARD, ग्रामीण विकास मंत्रालय, आदिवासी मंत्रालय, विश्व बैंक और NGO की परियोजना, गैर सरकारी रिपोर्ट, शोध आलेख, जनगणना, पुस्तकों आदि को शामिल किया गया है। विभिन्न स्रोतों से प्राप्त द्वितीयक आंकड़ों का विश्लेषण किया गया है।

आदिवासी समाज में स्वयं सहायता समूह पर प्रभाव :

- **आर्थिक सशक्तिकरण** – सामूहिक बचत और बैंक ऋण से आदिवासी महिलाएँ बकरी पालन, कुक्कुट पालन, तसर पालन, बांस शिल्प और लघु वनोपज प्रसंस्करण करती हैं। साहूकारों पर निर्भरता कम हुई और आत्मनिर्भरता बढ़ी। सशक्तिकरण का राजनैतिक–सामाजिक अवधारणा है जो महिलाओं को निर्णय की स्वायत्ता, निर्णय में सहभागिता एवं समाज में न्यायोचित स्थान प्रदान करने से संबद्ध है लेकिन इसका सर्वाधिक प्रमुख आधार आर्थिक है। शक्ति कोई वस्तु नहीं है जिसका आदान–प्रदान किया जा सकता है। यह एक आंतरिक ऊर्जा है जिसे अपने अंदर से ही प्राप्त किया जा सकता है। इसके लिये आर्थिक रूप से निराश्रित होना, स्वायत्त होना व स्वतंत्र होना सबसे पहली कड़ी है। समानता व स्वतंत्रता के आदर्श को कारगर ढंग से आर्थिक प्रगति के बिना लागू नहीं किया जा सकता है। उसी प्रकार सशक्तिकरण भी आर्थिक प्रगति के बिना एक अमूर्त अवधारणा ही बन कर रह जायेगी। आर्थिक विकास का निर्णय का स्वविवेकाधिकार प्रदान करता हैं, इस लिहाज से भी इस अवधि में आदिवासी का आर्थिक सशक्तिकरण हुआ हैं। इसमें सरकार के प्रयास भी सराहनीय है। उल्लेखनीय है कि आजादी के बाद देष का आर्थिक उतरोत्तर बढ़ा है। विशेषकर द्वितीयक श्रेणी की प्रगति उल्लेखनीय रही है। देश के अर्थव्यवस्था में आये इस संरचनात्मक परिवर्तन का लाभ आदिवासी महिलाओं को मिला है। वे सक्रिय रूप से निर्माण क्षेत्र में, विनिर्माण क्षेत्र, आवाजाही के साधन में एवं अन्य आर्थिक गतिविधियों में सहभागिता कर रही हैं। देश के कुछ क्षेत्रों में हुए 'हरित क्रांति' ने भी उन्हें अपने क्षेत्र से बाहर काम का अवसर दिया है। सरकार भी विभिन्न योजनाओं के अंतर्गत उनकी आर्थिक सुरक्षा को सुनिश्चित कर रही है। विभिन्न योजनाओं में उनके प्रगति को प्राथमिकता दी गई है। 8वीं पंचवर्षीय योजना में विकास प्रक्रिया में समान साझेदार एवं प्रतिभागी के रूप में महिलाओं पर विशेष बल दिया गया हैं। इसी क्रम में 9वीं पंचवर्षीय योजना में योजना, प्रक्रिया और स्व–सहायता दलों के निर्माण में लोगों की सहभागिता पर बल दिया गया है। सरकार अब महिलोन्मुखी बजट निर्माण पर जोर दे रही है। महिला एवं बाल विकास मंत्रालय के बजट परिव्यय में लगातार वृद्धि हो रही है।
- **सामाजिक एवं सांस्कृतिक सशक्तिकरण** – स्वयं सहायता समूह ने सामूहिक बैठकों और चर्चाओं के माध्यम से महिलाओं को सामाजिक निर्णयों में शामिल किया। शराबखोरी, अंधविश्वास और बाल विवाह जैसी

कुरीतियों के खिलाफ अभियान चलाए गए। आदिवासी का सामाजिक एवं सांस्कृतिक सशक्तिकरण भी हुआ है। संस्कृति एक व्यापक अवधारणा है जिसके अंतर्गत मानव निर्मित सृजित समस्त अभौतिक पक्ष आते हैं। संस्कृति का विकास किसी भी जाति को आत्मगौरव की भावना से युक्त करता है। जाहिर है कि सामाजिक एवं सांस्कृतिक सशक्तिकरण ही सशक्तिकरण का सबसे बड़ा मनोवैज्ञानिक आधार है। इसी के द्वारा महिलायें सशक्त होने की अनुभूति कर सकती हैं और अपने आप पर गौरव कर सकती हैं। इस अवधि में इस दिशा में भी आदिवासी महिलाओं ने प्रगति की है। उन्होंने इतिहास में महिलाओं की भूमिका को पुनर्परिभाषित करने का प्रयास किया और महिला के सम्पत्ति के उत्तराधिकार, पर्यावरण संरक्षण में महिलाओं की भूमिका, ग्रामीण पंचायत में उनकी उपस्थिति और आदिवासी प्रथाओं में सुधार जैसे मुद्दों पर बहस किया। हाल में आदिवासी सांस्कृतिक विशिष्टता के प्रति बढ़ी जागरूकता और महिलाओं के बुलंद आवाज के साथ एक नई तस्वीर उभरी है। झारखंड आंदोलन में महिलाओं की परिस्थिति को केन्द्रीय स्थान मिला है। शिक्षित आदिवासी महिलाओं ने, जो झारखंड आंदोलन के नयी धारा से जुड़ी हैं, अशिक्षित महिलाओं को संगठित करने का प्रयास किया है। उन्होंने आदिवासी महिलाओं के परंपरागत पहचान जैसे संभावित डायन या मूर्ख या असभ्य को ध्वस्त करने का प्रयास किया है। कई महिलायें लेखिका बन कर उभरी हैं जो आदिवासी संस्कृति की विशिष्टता और आधुनिकता के सम्मेलन के लिये उत्सुक हैं। इस प्रकार इस अवधि में सांस्कृतिक सशक्तिकरण के गम्भीर प्रयास हुए जिसके कारण महिलाओं ने अब अपनी जाति पर गर्व करना प्रारंभ कर दिया है। रूढ़ियों को त्याग एवं आधुनिकता के तत्त्वों को स्वीकार कर वे एक नई संस्कृति को जन्म दे रही हैं।

- **शिक्षा और जागरूकता** – स्वयं सहायता समूह द्वारा वयस्क साक्षरता कार्यक्रम और बच्चों की शिक्षा पर बल दिया गया। लड़कियों की शिक्षा को बढ़ावा मिला। आदिवासी महिलाओं का सामाजिक सशक्तिकरण भी बड़ी तीव्र गति से हुआ। इसके अंतर्गत शिक्षा के क्षेत्र में, स्वास्थ्य के क्षेत्र में एवं बच्चों के पालन–पोषण के संदर्भ में गुणात्मक परिवर्तन आये जिससे आदिवासी महिलायें सामाजिक रूप से और सशक्त होकर उभरीं। इस संदर्भ में भी सरकार के प्रयास सराहनीय रहे हैं। विभिन्न विधानों एवं योजनाओं के तहत सरकार ने सामाजिक रूप से महिलाओं के सशक्तिकरण को उत्प्रेरित किया। शिक्षा के क्षेत्र में सरकार के प्रयास के परिणामस्वरूप आदिवासी महिलाओं में हुए शिक्षा का प्रसार उल्लेखनीय माना जा सकता है।
- **स्वास्थ्य और पोषण** – स्वास्थ्य शिविर, पोषण आहार और स्वच्छता पर जागरूकता कार्यक्रम। मातृ–शिशु मृत्यु दर में कमी। आदिवासी महिलाओं का सामाजिक सशक्तिकरण भी बड़ी तीव्र गति से हुआ। इसके अंतर्गत शिक्षा के क्षेत्र में, स्वास्थ्य के क्षेत्र में एवं बच्चों के पालन–पोषण के संदर्भ में गुणात्मक परिवर्तन आये जिससे आदिवासी महिलायें सामाजिक रूप से और सशक्त होकर उभरीं। इस संदर्भ में भी सरकार के प्रयास सराहनीय रहे हैं। विभिन्न विधानों एवं योजनाओं के तहत सरकार ने सामाजिक रूप से महिलाओं के सशक्तिकरण को उत्प्रेरित किया।
- **राजनीतिक भागीदारी** – पंचायत चुनावों में आदिवासी महिलाएँ सक्रिय हुईं। ग्रामसभा और पंचायत बैठकों में भागीदारी बढ़ी। वैश्वीकरण और आधुनिकीकरण ने अधिक तीव्र कर दिया है, इस आंदोलन के कई नाम हैं– महिलावाद, नारी मुक्ति आंदोलन और दुनिया के विभिन्न भागों में इसे कई अन्य नामों या नारों द्वारा जाना जाता है। वहाँ के समाज विज्ञानों में अपनी स्थानीय समस्याओं के अंतर्गत जेंडर समस्या को महत्त्व दिया जाता

है। हमारे यहाँ भी नारी आंदोलन चल रहा है और उसे गति देने में उच्च वर्ग, मध्यम वर्ग और शहर की पढ़ी लिखी स्त्रियों का योगदान विशेष है।

चुनौतियाँ :

- शिक्षा और तकनीकी कौशल का अभाव।
- उत्पादों के विपणन की समस्या और बिचौलियों का हस्तक्षेप।
- पुरुष प्रधान मानसिकता और परंपरागत सोच।
- दूरस्थ क्षेत्रों में बैंकिंग सुविधाओं की कमी।

भविष्य की संभावनाएँ :

- डिजिटल प्लेटफॉर्म से आदिवासी उत्पादों को राष्ट्रीय–अंतरराष्ट्रीय बाजार तक पहुँचाना।
- लघु वनोपज आधारित उद्योगों को प्रोत्साहित कर स्वयं सहायता समूह को और मजबूत करना।
- सरकारी योजनाओं जैसे स्टार्ट–अप इंडिया और स्किल इंडिया से आदिवासी स्वयं सहायता समूह का समन्वय।
- स्वयं सहायता समूह ने आदिवासी समाज में महिलाओं के आत्मविश्वास को बढ़ाया।
- आर्थिक आत्मनिर्भरता से सामाजिक और राजनीतिक स्थिति मजबूत हुई।
- स्वास्थ्य, शिक्षा और जागरूकता में सुधार देखा गया।

निष्कर्ष :

आदिवासी समाज में स्वयं सहायता समूह केवल आर्थिक सहयोग का साधन नहीं हैं, बल्कि सामाजिक, शैक्षिक और राजनीतिक परिवर्तन के उत्प्रेरक भी हैं। स्वयं सहायता समूह ने आदिवासी महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाया, सामाजिक बुराइयों से लड़ने की शक्ति दी और उन्हें निर्णय प्रक्रिया में शामिल किया। भविष्य में यदि इन समूहों को और तकनीकी व संस्थागत सहयोग मिले तो आदिवासी समुदाय का समग्र विकास और तेजी से संभव होगा। औपनिवेशिक सत्ता की स्थापना के साथ ही भारत में वृहत्त पैमाने पर आधुनिक पूँजीवादी उद्यमों की स्थापना हुई।75 पहले तो इन उद्यमों की स्थापना के कारण आदिवासी क्षेत्रों में विस्थान प्रारंभ हुआ। आदिवासी अपने जीविकोपार्जन के पारंपरिक स्त्रोतों से वंचित हुए। भूमि एवं वनों से उन्हें बड़े पैमाने पर बेदखल कर दिया गया।76 इसका सर्वाधिक दुष्परिणाम आदिवासी महिलाओं पर पड़ा, क्योंकि आदिवासी महिलायें आर्थिक क्षेत्र में सक्रिय रूप से भूमिका निभाती थीं और अपने परिवार के जीवनयापन के लिये मुख्य रूप से जिम्मेदार होती थीं। भूमि एवं विशेषकर वनों पर उनकी आश्रितता अत्यधिक थी। औपनिवेशिक काल की आर्थिक गतिविधियों के कारण आदिवासी महिलाओं का संबंध भूमि एवं वन से विच्छेदित हो गया। लेकिन औपनिवेशिक काल कें आर्थिक संदर्भ में सकारात्मक तथ्य यह था कि इसने बड़े पैमाने पर नये आर्थिक क्रियाकलापों को जन्म दिया। स्वयं सहायता समूह ने आदिवासी समुदाय को आत्मनिर्भरता और सशक्तिकरण की दिशा में मार्ग प्रशस्त किया है। हालाँकि, इनकी स्थिरता और व्यापक प्रभाव सुनिश्चित करने के लिए सरकारी सहायता, प्रशिक्षण और बाजार तक पहुँच आवश्यक है।

संदर्भ सूची :

- NABARD Report (2005). *SHG-Bank Linkage Programme in India*.

- World Bank (2011). *Empowerment of Tribal Women through SHGs*.
- Ministry of Tribal Affairs, Government of India Reports.
- Mission Shakti, Odisha – Annual Report (2018).
- Tejaswini Rural Women Empowerment Programme, Madhya Pradesh (IFAD Report, 2014).
- शर्मा, श्रीनाथ (2006) जनजातीय समाजशास्त्र : मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल पृ. क्र.– 14।
- 'प्रसाद' राजीव रंजन (2015) बस्तरनामा : शरा पब्लिकेशन पृ. क्र. 177–179।
- Murdock, G. P. (1948) our primitive contemporaries. Mac Millon Newyork.
- Majumdar D.N. and Madan T.N. (1967) An Introduction to social anthropology: Bombay, Asia publishing house.
- हसनैन नदीम (1997) जनजातीय भारत : जवाहर पब्लिशर्स एण्ड डिस्टीब्यूटर्स, पेज 33–38

Mob No.- 9934960669

Email id- bibha9934960669@gmail.com

Email Id: awadhbiharisingh195@gmail.com

Mob. No:- 9431463994

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2026 Page No. : 77-83

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.22679720

भारतीय किसान का बदलता परिदृश्य : औपनिवेशिक दौर व समकालीन हिंदी उपन्यासों के संदर्भ में

वर्षा शर्मा

शोधार्थी, हिंदी विभाग, आगरा कॉलेज, आगरा।

डॉ. भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय, आगरा।

शोध सार :

भारत में कृषि सदियों से अर्थव्यवस्था और समाज का आधार रही है। और वही कृषि किसानों की स्थिति व भारतीय अर्थव्यवस्था में सुधार का महत्वपूर्ण साधन है। वही कृषक वर्ग साहित्य में एक केंद्रीय विषय के रूप में रहा है। भारतीय समाज में कृषक वर्ग का स्थान महत्वपूर्ण रहा है। लेकिन उसकी स्थिति दयनीय ही रही है। इसीलिए हम देखते हैं कि यही वर्ग समय–समय पर उपन्यासों का केंद्रीय विषय भी रहा है। जिससे कृषकों की स्थिति उनके संघर्ष का प्रभावशाली चित्रण हमें अलग–अलग कालखंडों में देखने को मिलता है।

स्वतंत्रता से पूर्व के हिंदी उपन्यास जैसे प्रेमचंद का गोदान, कर्मभूमि, प्रेमाश्रम जैसे उपन्यासों में कृषकों का शोषण, कर्ज, जमींदारी प्रथा के कारण किसानों की दुर्दशा का चित्रण हमें मिलता हैं। औपनिवेशिक शासन की नीतियों ने किसानों की समस्या को और बढ़ा दिया। इस काल के उपन्यासों में कृषक केवल आर्थिक संकटों से नहीं अपितु मानसिक सामाजिक और आर्थिक संकट से भी जूंझता दिखाई देता है। समय व परिस्थितियों में परिवर्तन तो हुआ लेकिन किसान आज भी संघर्ष कर रहा है। पहले औपनिवेशिक सत्ता, जमींदारों और महाजनों के विरुद्ध वही आज नवउदारवादी नीति, औद्योगिकरण, भूमंडलीकरण और प्राकृतिक आपदाओं के विरुद्ध किसान संघर्ष कर रहा है।

बीज शब्द :

कृषक जीवन, इक्कीसवीं सदी, हिंदी उपन्यास, तुलनात्मक अध्ययन, किसान संकट, औपनिवेशिक भारत, समकालीन साहित्य, भूमंडलीकरण, औद्योगिकरण।

शोध आलेख :

हिंदी साहित्य में प्रेमचंद का आगमन एक महत्वपूर्ण घटना है। इसका एक महत्वपूर्ण कारण है कि प्रेमचंद से पूर्व ऐयारी और तिलिस्म उपन्यास लिखे जा रहे थे। प्रेमचंद के समय से ही वास्तविक अर्थों में उपन्यास युग माना जा सकता है। प्रेमचंद एक मध्यवर्गीय व्यक्ति थे। इसी कारण वह किसानों की पीड़ा, मजदूरों की स्थिति और एक गुलाम व्यक्ति का दर्द बेहतर तरह समझ रहे थे। जिसे इन पंक्तियों के माध्यम से समझा जा सकता

है– 'चारों ओर फैले हुए जीवन और अनेक सामयिक समस्याओं पराधीनता जमींदारों, पूंजीपतियों और सरकारी कर्मचारियों द्वारा किसानों का शोषण, निर्धनता, अशिक्षा, अंधविश्वास, दहेज प्रथा, घर और समाज में नारी की स्थिति, वेश्याओं की जिंदगी, वृद्ध समस्या, विधवा विवाह, सांप्रदायिक वैमनस्य, अस्पृश्यता, मध्यवर्ग की कुंठाएं आदि ने उन्हें उपन्यास लिखने के लिए प्रेरित किया।'(1)

वही प्रेमचंद कहते हैं– 'कि मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और रहस्यों को खोलना ही उपन्यास है।'(2)

भारत की आत्मा गांवों में बसती है। और भारत कृषि प्रधान देश है। जो भारतीय अर्थव्यवस्था का अहम हिस्सा है। खेती किसानों पर निर्भर है। इसीलिए किसान हमारे समाज के रीढ़ की हड्डी है। यह खाद्य सुरक्षा के साथ ही कृषि से जुड़े उद्योगों को भी बढ़ावा देते हैं। आंकड़ों के अनुसार भारत में लगभग 70% आबादी किसी न किसी रूप से कृषि से संबंधित कार्यों से जुड़ी हुई है। खेती पर निर्भर होने के बावजूद किसानों को उनकी मेहनत का उचित मूल्य नहीं मिलता। किसान की समस्याएं एक जटिल व चिंताजनक विषय हैं। यह समस्या हमें आज से नहीं अपितु प्राचीन समय से देखने को मिलती है। उस समय किसानों की स्थिति समाज व शासन वर्ग पर निर्भर करती थी। बाढ़, सूखा आदि से किसानों की स्थिति और भी खराब हो जाती थी। जमींदारों के खेत पर काम करना किसानों की दुर्दशा को और बढ़ता गया। साथ ही लगान और कर की समस्या के तले किसानों की गर्दन दबती जा रही थी। कुछ राजाओं ने किसानों की भलाई के लिए कार्य भी किए जिसमें सिंचाई कर में छूट, बीज की व्यवस्था जैसी योजनाएं थी। लेकिन यह भी ज्यादा कारगर सिद्ध ना हुई। पुराने समय में खेती के उपकरण बहुत साधारण होते थे। और सिंचाई के लिए नहरे, कुएं, तालाब आदि का उपयोग होता था। परंतु अत्यधिक निर्भरता वर्षा के जल पर ही थी।

20वीं शताब्दी के प्रारंभ में देश के किसानों का संगठित रूप हमें देखने को मिलता है जो किसान आंदोलन का रूप लेता है। खेड़ा आंदोलन 1917–18 में मोहनलाल पांडया जुड़े। वहीं इसी आंदोलन से गांधी जी 1918 में जुड़े। इस आंदोलन के विषय में इतिहासकार सुमतिसरकार लिखते हैं– 'खेड़ा सत्याग्रह, जो भारत में पहला वास्तविक गांधीवादी किसान सत्याग्रह था। एक छिटपुट आंदोलन बनकर रह गया। 559 में से केवल 70 गांवों पर ही इसका प्रभाव पड़ा। राजस्थान का बिजौलिया आंदोलन प्रजा शक्ति से उत्पन्न हुआ। वही कर में 22 प्रतिशत वृद्धि के खिलाफ 1927 में गुजरात में 'बारदोली' किसान आंदोलन शुरू हुआ।'(3)

इसी कालखंड में प्रेमचंद का लेखन किसानों की समस्याओं को इंगित करता है। प्रेमचंद किसान को ग्रामीण तंत्र व नई आर्थिक व्यवस्थाओं में दबे हुए पाते हैं। इसे वे 'महाजनी सभ्यता' के नाम से संबोधित करते हैं। प्रेमचंद जी लिखते हैं– 'पुरानी सभ्यता सर्वजन सुलभ प्रजातांत्रिक थी। ज्ञान और उपासना का गंभीरता और सहिष्णुता का सम्मान राजा भी करता था और किसान भी करता था।.... आधुनिक प्रणाली ने जनसाधारण को अपनी परिधि से बाहर कर दिया है। उसने अपनी आडंबर पर खड़ी की है। भौतिकता और स्वार्थपरता उसकी आत्मा है। इसके बावजूद जनतांत्रिक ही आधुनिक सभ्यता का गुण कही जाती है।'(4)

स्वतंत्रता से पूर्व और स्वतंत्रता के पश्चात यूं तो देखने में एक लंबी अवधि प्रतीत होती हैं। परंतु इस अवधि में किसानों की स्थिति पर विचार किया जाए तो कुछ खास परिवर्तन होता हमें दिखाई नहीं देता। समृद्ध किसानों की गिनती आज भी आसानी से की जा सकती है। आज भी खेती किसानी और किसान गहरे संकट से जूझ

रहे हैं। जो समस्याएं स्वतंत्रता से पहले हमें देखने को मिलती थी वह हमारे समक्ष और भी विकराल रूप में दिन प्रतिदिन प्रस्तुत हो रही है। खेती के विकास की 'हरित क्रांति' का फायदा बहुराष्ट्रीय कंपनियों को होता दिखाई दे रहा हैं। 'पंकज सुबीर' ने अपने उपन्यास 'अकाल में उत्सव' में भ्रष्ट सरकारी तंत्र व बहुराष्ट्रीय कंपनियों को होने वाले मुनाफे के बारे में कुछ इस प्रकार कहा है– 'कितना बड़ा मजाक है कि गरीब किसान को मक्का का तो न्यूनतम समर्थन मूल्य तय है। मगर उस मक्का से कॉर्नफ्लैक्स बनाने वाली बहुराष्ट्रीय कंपनी के लिए कोई भी न्यूनतम समर्थन मूल्य नहीं है। डेढ़ रुपए किलो की मक्का से कॉर्नफ्लेक्स बनाने वाली बहुराष्ट्रीय कंपनी कॉर्नफ्लेक्स बनाकर तीन सौ दिया। बस एक सीधा सा लॉजिक किसी को नहीं दिखता कि जो किसान धूप बरसात ठंड में खेतों में अपनी जिंदगी को झोंकते हुए पॉच महीने में जो फसल पैदा करता है। उसे केवल पंद्रह सौ रुपए क्विंटल मिल रहा है। और जो वातानुकूलित चेंबर में बैठकर मशीन से उस मक्का को केवल पांच मिनट में चपटा कर कॉर्नफ्लैक्स बना रहा है। बीस गुना तीस हजार रुपए।'(5)

जहां एक ओर 'अकाल में उत्सव' आज के समय की भ्रष्ट तंत्र व्यवस्था को दिखाता है। वही स्वतंत्रता से पूर्व प्रेमचंद अपने उपन्यास में भ्रष्ट व्यवस्था को दिखाते हैं। किस तरह महाजन किसानों का शोषण करते थे। प्रेमचंद जी के उपन्यास गोदान में महाजनी की समस्या को अत्यंत मार्मिक ढंग से दिखाया गया है। यह समस्या केवल आर्थिक शोषण ही नहीं अपितु उनके जीवन के चारों ओर फैले कर्ज के जंजाल को दर्शाता है। किसान का शोषण करने वाले जमींदार राय साहब अमरपाल सिंह, महाजन झींगुरी सिंह, दरोगा जी, दातादीन, पटवारी लाल पटेश्वरी आदि के रहते होरी व होरी जैसे लोग कभी संपन्न नहीं हो सकते। वे केवल दिन रात मर ही सकते हैं। गोबर द्वारा कहा गया है– 'तो फिर अपना इलाका हमें क्यों नहीं दे देते। हम अपने खेत, बैल, हल, कुदाल सब उन्हें देने को तैयार हैं। करेंगे बदला? यह सब धूर्तता निरी मोटमरदी। जिसे दुख होता है वह दर्जनों मोटरे नहीं रखता, महलों में नहीं रहता, हलवा पूरी नहीं खाता और ना नाच रंग में लिप्त रहता है। मजे से राज का सुख भोग रहे हैं उस पर दुखी हैं।'(6)

कर्ज भारतीय समाज की पुरानी समस्या है। और आज के समय में भी हमारे समक्ष मौजूद है। महाजन को कर्ज ना मिलने पर किसानों को बटाईदार बना लिया जाता है। यहां तक कि उनके खेत गिरवी रख लिए जाते थे। आज के बैंक कर्ज के नए साहूकार हो गए हैं जो खेती को नीलाम कर रहे हैं। फसल बेचने पर जो कुछ पैसा किसान को मिलता है सूदखोर वहां पहले ही पहुंच जाते हैं। और जबरन कर्ज वसूलते हैं। यह बात गोदान के होरी द्वारा कही गई है– 'पंच में परमेसर रहते हैं। उनका जो न्याय है वह सर आंखों पर। अगर भगवान की इच्छा है कि हम गांव छोड़कर भाग जाएं तो हमारा क्या बस पंचो, हमारे पास जो कुछ है, वह अभी खलियान में है। एक दाना भी घर में नहीं आया, जितना चाहे ले लो। सब लेना चाहो तब ले लो। हमारा तो भगवान मालिक है। जितनी कमी पड़े उसमें हमारे दोनों बैल ले लेना।'(7)

यह समस्या प्रेमचंद के उपन्यासों में ही नहीं अपितु इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों में भी देखने को मिलती है। 'अकाल में उत्सव' उपन्यास में देखते है कि किस तरह राम प्रसाद कर्ज के बोझ के तले तबाह हुआ है। बीवी 'कमला' के चंद गहनों को छोड़कर बाकी सब कुछ या तो बिक चुका है, या सेठ महाजन के पास गिरवी रखे हैं।

औद्योगीकरण की समस्या हमें पहले भी देखने को मिलती थी। जोकि आज भी हमारे सामने व्याप्त है।

जिसके कारण खेत व किसानी जीवन को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। वही प्रेमचंद की रंगभूमि 1924 हिंदी साहित्य का एक महत्वपूर्ण सामाजिक उपन्यास है। जिसमें औपनिवेशिक भारत के बढ़ते हुए औद्योगिकरण और उससे उत्पन्न सामाजिक आर्थिक समस्याओं को अत्यंत मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। जिसमें औद्योगिकरण बनाम परंपरागत जीवन हमें देखने को मिलता है। इसमें साम्राज्यवादी ताकतों और देशी पूंजीपतियों के गठजोड़ को बखूबी दिखाया गया है। इस तरह के विकास में आम जनता की भलाई नहीं बल्कि पूंजीपतियों के लाभ का उद्देश्य निहित रहता है। उपन्यास में भूमि अधिग्रहण का प्रश्न केंद्रीय है जिसमें किसानों को जबरन उनकी भूमि से बेदखल किया जाता है और वहां पर उद्योग धंधे स्थापित करना चाहते हैं। जबकि वह भूमि वहां के लोगों की आजीविका का एकमात्र स्रोत है। वही सूरदास इस अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करता है। वही इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में औद्योगीकरण की समस्या हमें देखने को मिलती है। आज के समय के उपन्यासों में कई रचनाकारों ने बदलते ग्रामीण परिवेश, भूमंडलीकरण और औद्योगीकरण के प्रभाव को विशेष रूप से चित्रित किया है। किस तरह से औद्योगिकरण ने कृषक जीवन, पारंपरिक खेती, ग्रामीण संस्कृति को प्रभावित किया है यह अकाल में उत्सव उपन्यास के माध्यम से देखा जा सकता है।

प्रेमचंद जी के समय में हम किसानों को खेती के लिए वर्षा के जल के भरोसे पाते हैं। उस समय में सिंचाई व्यवस्था एक सीमित और असमान रूप से वितरित व्यवस्था दिखाई देती है। बड़े और संपन्न जमींदार किसानों को ही सरकारी नहरे से सिंचाई की सुविधा मिलती थी। छोटे गरीब किसान अपनी खेती के लिए वर्षा के जल पर निर्भर रहते थे। कुएं खुदवाने या सिंचाई व्यवस्था के लिए किसान साहूकारों से कर्ज लेते थे। स्वतंत्रता से पूर्व किसान उपन्यासों में सिंचाई व्यवस्था मुख्यतः अपर्याप्त आसमान और वर्षा पर आधारित थी। परंतु इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों में सिंचाई व्यवस्था अब केवल तकनीकि या कृषि से संबंधित नहीं अपितु सामाजिक राजनीतिक तथा पर्यावरणीय विमर्श का भी हिस्सा बन गई है इस दौर में सिंचाई व्यवस्था में तकनीकी प्रगति देखने को मिलती है। ड्रिप इरीगेशन, स्प्रिंकलर, बोरवेल, ट्यूबवेल, वाटर हार्वेस्टिंग जैसी तकनीकों का उल्लेख देखने को मिलता है। आज के समय में कई उपन्यासों में किसानों के जल अधिकारों व सिंचाई की कमी के कारण आत्महत्या या आंदोलन जैसे मुद्दे भी देखने को मिलते हैं जोकि स्वतंत्रता से पूर्व किसान उपन्यासों में हमें नही दिखाई देते। सिंचाई की नई तकनीक को चित्रित करता हुआ उपन्यास चलती चाकी इक्कीसवीं सदी का महत्वपूर्ण उपन्यास है। सिंचाई सुविधाओं में सुधार के बेहतर तरीके जिससे किसानों को खेती में केवल वर्षा पर निर्भर न रहना पड़े। 'हम भी आधुनिक तरकीब के सहारे बूंद सिंचाई करके उपलब्ध पानी से अधिक से अधिक खेतों की सिंचाई करेंगे। फिर मैंने देखा है कि गांव के ज्यादातर तालाब और पारंपरिक पानी के स्रोतों को पाट दिया गया है। उन्हें फिर से जिंदा करना होगा ताकि बरसात का अधिक से अधिक पानी उसमें जमा हो सके। इससे एक तो सिंचाई के लिए पानी उपलब्ध होगा और दूसरा यह की जमीन के पानी का स्तर कुछ सुधरेगा। मैं चाहता हूं कि आप मेरे साथ ब्लॉक विकास अधिकारी के पास चले हम उनसे इस योजना पर बातचीत करेंगे मदद मांगेंगे। शायद कोई बेहतर नतीजा निकले।'[8]

प्राचीन समय में अंधविश्वास भारतीय समाज का एक गहरा और व्यापक पहलू रहा है। जिसे प्रेमचंद के समय के उपन्यासों में भी देखा जा सकता है। स्वतंत्रता से पूर्व के किसान उपन्यासों में अज्ञानता गरीबी, शिक्षा के अभाव के कारण ही अंधविश्वास को समाज ने जन्म दिया। जिनकी जड़ें न केवल प्राचीन समय में अपितु आज

के समय में भी जड़ जमाए हैं। बीमारियों को लोग ईश्वर का प्रकोप व मनुष्य द्वारा किया गया पाप का फल मानते हैं। और इस बात का फायदा पंडित साधु संत मौलवी उठाते थे। यह लोग बीमारी के इलाज के नाम पर तंत्र–मंत्र जादू टोना झाड़ फूंक जैसे उपाय करते थे। अंधविश्वास हमें गोदान में भी कई बार देखने को मिलता है गोबर और झुनिया के अवैध संबंध को पाप मानकर समाज उनका बहिष्कार करता है। साथ ही जब होरी का बेटा गोबर बीमार होता है तो परिवार ताबीज झाड़–फूंक करता है। होरी की मृत्यु के समय गोदान के बिना उसका उद्धार नहीं होगा ऐसा माना जाता है। यह दर्शाता है कि मृत्यु और मोक्ष जैसे विषयों को भी धार्मिक आडंबर और पाखंड से जोड़ दिया गया है।– 'हॉ गोदान कर दो यही समय है। धनिया यंत्र की भांति उठी, आज जो सुतली बेची थी, उसके बीस आने पैसे लायी और पति के ठंडे हाथ में रखकर सामने खड़े दातादीन से बोली– महाराज घर में ना गाये है, ना बछिया है, ना पैसा। यही पैसे हैं। यही इनका गोदान है। और पछाड़ खाकर गिर पड़ी'।[9]

अंधविश्वास केवल पुराने समय के उपन्यासों में ही नहीं अपितु इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों में भी हमें बखूबी देखने को मिलता है। चलती चाकी उपन्यास में सुखीराम का बेटा बीमार पड़ता है, तो वे लोग लड़के को डॉक्टर के पास ले जाने के बजाय झाड़ फूंक करने वाले ओझा को बुलाते है। श्वेतानंद के समझाने पर भी वे लोग डॉक्टर से ज्यादा तांत्रिक पर भरोसा करते है। 'क्या कहें महाराज सुखी राम का बेटा काफी समय से बीमार है। गांव के डॉक्टर से दवाई भी ले आए लेकिन ठीक नहीं होता। उन सबों को लगता है कि किसी ऊपरी हवा का असर है। कल रात को चार–पांच ओझा सोखा आए है। वही पचरा गा रहे है। आज दोपहर को भूत भगाने की पूजा होगी।'[10]

जाति व्यवस्था भारतीय समाज की एक सामाजिक संरचना थी। जिसका आधार जन्म कर्म पर टिका था। इस व्यवस्था ने शोषण को और बढ़ा दिया। इसकी जड़े वैदिक युग से लेकर मध्यकाल और आधुनिक भारत तक फैली हुई है। रंगभूमि उपन्यास जाति व्यवस्था का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करता है। जिसका केंद्र बिंदु अंधाभिखारी सूरदास है, जो समाज के हाशिये पर रहते हुए भी न्याय की मांग करता है। समाज उसे धार्मिक दृष्टि से 'दीन' और 'दया' का पात्र मानता है। लेकिन मानव अधिकार देने से कतराता है। सूरदास की भूमि छीनने के लिए नगरपाल और उद्योगपति उसे अयोग्य और निम्न समझते है। जमीन पर स्वामित्व रखने के बावजूद सूरदास की आवाज को कोई महत्व नहीं दिया जाता। यह जातिगत असमानता को दर्शाता है। गोदान में भी कई जगह ऐसे प्रसंग हमारे समक्ष प्रस्तुत होते है। जिसमें हम उस समय में मौजूद जाति व्यवस्था को देखते है। गोदान जैसे धार्मिक कार्यों में ब्राह्मण का होना जरूरी समझा जाता है। होरी भी मरते समय गोदान की चिंता करता है। और ब्राह्मणों के बिना वह मोक्ष प्राप्त नहीं कर सकता ऐसा समाज सीखना है। वही प्रेमचंद के गोदान उपन्यास में मातादीन और सिलिया जैसे पात्रों के माध्यम से भारतीय समाज में व्याप्त जाति व्यवस्था, नैतिक पाखंड और स्त्री शोषण को भी उजागर करते है। उपन्यास से मातादीन ऊंची जाति का प्रतिनिधित्व करता है। लेकिन आचरण में पाखंडी है। ब्राह्मण होने के बावजूद चोरी छिपे नीची जाति की सिलिया के साथ संबंध बनाता है। और बाद में पल्ला झाड़ लेता है। दातादीन ने ढांढस बंधाया और कहा– 'तुम्हारे लिए अभी मैं क्या कहूं बेटा? चल कर नहाओ खाओ फिर पंडितों की जैसी व्यवस्था होगी, वैसा किया जाएगा। हां एक बात और सिलिया को त्यागना पड़ेगा।'[11] इन पंक्तियों से स्पष्ट होता है कि जाति व्यवस्था किस तरह समाज में जड़ जमाए हुए थी। वहीं चलती चाकी उपन्यास में भी जाति व्यवस्था देखने को मिलती है। आजादी से पूर्व भी जाति व्यवस्था थी और आजादी

के बाद भी वह जड़ जमाए हैं जो की चलती चक्की उपन्यास के एक पात्र द्वारा समझी जा सकती है। 'गृह स्वामी ने कहा महाराज हम हरिजन है। बरखा भी रुकने वाली नहीं लगती। अंधेरा घिर आया है। समझ में नहीं आ रहा आपका स्वागत सत्कार कैसे करें। हम पाप के भागी तो ना होंगे।'(12)

प्रेमचंद के समय में किसान आत्महत्या का जिक्र हमें नहीं मिलता उन्होंने अपने उपन्यासों में किसानों की दुखद स्थिति, आर्थिक बदहाली, सामाजिक शोषण को अत्यंत यथार्थवादी ढंग से प्रस्तुत किया है। जो पूरी व्यवस्था के खिलाफ एक मौन चीख के रूप में दिखाई देती है। होरी एक गरीब किसान है। उसकी सारी जिंदगी केवल गाये और गाय की लालसा में ही बीत जाती है। वह पूरी जिंदगी मेहनत करता है। लेकिन अंत में कर्ज सामाजिक रीति–रिवाज जातिवाद अन्याय के बोझ तले दबकर मर जाता है। लेकिन वह आत्महत्या नहीं करता परंतु आज के किसानों की स्थिति अलग है आज के समय में भारत के किसान आत्महत्या कर रहे है। जोकि एक गंभीर समस्या है। आजकल के समय में ब्याज की दरें सूदखोर महाजनों से अधिक घातक सिद्ध होती है। प्राकृतिक आपदाएं किसानों को तबाह कर देती है। वही मुआवज़े में देरी व भ्रष्टाचार देखने को मिलता है। किसानों को अपने उपज का उचित दाम नहीं मिलता। बिचौलिया, मंडिया भी किसानों का शोषण करते है। सभी समस्याओं से तंग आकर किसान आत्महत्या करने पर मजबूर है। जोकि फॉस और हालफनामें जैसे उपन्यासों में देखा जा सकता है। 'आंध्र प्रदेश में किसानों द्वारा आत्महत्या के मामले में अचानक वृद्धि सन् 1997–98 में शुरू हुई। जब कपास के दाम गिरे और फसलें भी फेल करने लगी। एक साथ दो पहाड़ सी मुसीबतें जिनके उपाय दुष्कर थे। किसानों के हाथ में नहीं थे। संख्या के बारे में अलग–अलग आंकड़े थे। एक रिपोर्ट के अनुसार पिछले तीन सालों में 15000 से ज्यादा किसान खुदकुशी कर चुके थे।'(13)

निष्कर्ष :

दोनों कालखंडों में कृषक जीवन केंद्र में रहा है। किंतु उनकी समस्याएं उनके संघर्ष के स्वरूप में समय के अनुसार अनेक परिवर्तन हमें देखने को मिलते है। स्वतंत्रता से पूर्व के उपन्यासों में जहॉ जमींदारी प्रथा, सामंती व्यवस्था, औपनिवेशिक शासन के कारण किसानो की दूर्दशा दिखाई देती है। वही आज के समय में भ्रष्ट सरकारी तंत्र किसानों के शोषण का कारण बन रहा है। जो कर्ज की समस्या स्वतंत्रता से पूर्व थी वही समस्या आज भी देखने को मिलती है। इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों में केवल भूमि और कर्ज की समस्या नहीं बल्कि भूमंडलीकरण, औद्योगिकरण, जलवायु परिवर्तन, आत्महत्या सरकार के उदासीनता जैसे गहरे संकटों से किसान जुंझता दिखाई देता है। इस समय के उपन्यास अधिक जटिल और यथार्थ पारक बन गए हैं अब किसान विस्थापित हाशिये पर खड़ा एक नागरिक बन चुका है।

संदर्भ सूची :

1. हिंदी साहित्य का इतिहास, डॉ. नगेंद्र, पृष्ठ संख्या– 574
2. प्रेमचंद : कुछ विचार, पृष्ठ सं.–71
3. भारत का इतिहास : रोमिला थापर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2008, पृष्ठ सं.–219
4. गांधी एवं किसान आंदोलन : महेंद्र प्रताप, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ सं.– 32–33
5. अकाल में उत्सव, पंकज सुबीर, शिवना प्रकाशन, आठवां संस्करण 2018, पृष्ठ सं.– 43

6. गोदान, प्रेमचंद, वाणी प्रकाशन, द्वितीय संस्करण 2007, पृष्ठ सं.– 18
7. वही, पृष्ठ सं.–131
8. चलती चाकी, सूर्यनाथ सिंह, सामयिक प्रकाशन, पृष्ठ सं.– 77
9. गोदान, प्रेमचंद, वाणी प्रकाशन, द्वितीय संस्करण 2007, पृष्ठ सं.– 371
10. चलती चाकी, सूर्यनाथ सिंह, सामयिक प्रकाशन, पृष्ठ सं.–139
11. गोदान, प्रेमचंद, वाणी प्रकाशन, द्वितीय संस्करण 2007, पृष्ठ सं.–260
12. चलती चाकी, सूर्यनाथ सिंह, सामयिक प्रकाशन, पृष्ठ सं.– 41
13. हलफनामे, राजू शर्मा, राधाकृष्ण प्रकाशन, पृष्ठ सं.– 47

vershasharma144@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2026 Page No. : 84-88

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.22679720

हिन्दी साहित्येतिहास लेखन में डॉ. सुमन राजे की भूमिका

लक्ष्मी देवी

हिन्दी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

शोध-सार :

साहित्य एक निरन्तर चलने वाली, प्रक्रिया है। समय के परिवर्तन के साथ–साथ साहित्य में परिवर्तन होता चला जाता है। इसी परिवर्तन तथा विकास की प्रक्रिया का सुव्यवस्थिति एवं सुसंस्कृति लिखा गया दस्तावेज साहित्य का इतिहास कहलाता है। हिन्दी साहित्य इतिहास लेखन की एक सुदीर्घ परम्परा रही है। इसी परम्परा के अंतर्गत एक नई चेतन एवं नए दृष्टिकोण का उदय डॉ0 सुमन राजे ने किया। सुमन राजे एक वरिष्ठ साहित्यकार, इतिहासकार उन्होंने उन विषय वस्तुओं को अपने शोध कार्य का विषय बनाया जो साहित्य में विवादित या अनसुलझे हुए थे एवं उन पहलुओं पर अपना ध्यान आकृष्ट किया जिन पर या तो पहले से काम नही किया गया था। या बहुत कम किया गया था, उन्होंने इन अनदेखे पहलुओं को उजागर करने का एक सफल प्रयास किया। डॉ0 राजे ने स्त्रीवादी हस्ति को लेकर साहित्येतिहास की दुनिया को कदम रखा। इनके द्वारा दिये गये साहित्य इतिहास में योगदान को इस शोध पत्र में प्रस्तुत किया गया है।

बीज शब्द– साहित्य, इतिहास, परम्परा, लोकचेतना, दृष्टि।

हिन्दी साहित्य का इतिहास एक नवीन दृष्टिकोण से लिखने के लिये डॉ0 सुमन राजे ने हिंदी तथा अन्य भारतीय भाषाओं से आधारभूत सामग्री का संकलन किया तथा साहित्येतिहास लेखन का एक नया दृष्टिकोण विकसित किया, जिसके परिणाम स्वरूप उन्होंने चार साहित्येतिहास सम्बन्धी पुस्तके लिखी जो इस प्रकार है–

1. साहित्येतिहासः संरचना और स्वरूप
2. साहित्येतिहास आदिकाल
3. हिंदी साहित्य का आधार इतिहास
4. इतिहास में स्त्री

इन चारों साहित्येतिहास ग्रंथों में महिला लेखन को समायोजित न करने से मिली। डॉ0 सुमन राजे ने साहित्येतिहास ग्रंथों ये देखो कि स्त्री साहित्य को अनदेखा किया गया और यह परम्परा एक बाद–बाद एक निरंतर चलती रही। हिंदी साहित्येतिहास में इस मुद्दे पर की विचार नही किया गया, इसके अतिरिक्त साहित्येतिहास का काल–विभाजन, विभिन्न आधारो पर किया गया जैसे– सम्प्रदाय, विचारधाराओं किसी एक प्रवृत्ति विशेष, शासको के आदि को पर किया गया, पर इस आधी आबादी को इतिहास लेखन में कभी तवज्जो नहीं दिया गया इतिहास लेखन की प्रकृति सामंती होती है, किंतु साहित्य समावेशी होता है, इसलिए साहित्य के

इतिहास की भी समावेशी होना आवश्यक है, इस समावेशिता का अभाव का परिणाम यह चारो पुस्तके है, इस परंपरा में आने वाली डॉ0 सुमन राजे की प्रथम पुस्तक है–

साहित्येतिहास संरचना और स्वरूप :– (1975) है डॉ0 राजे इस पुस्तक की भूमिका में अपनी साहित्येतिहास सम्बन्धी दृष्टि स्पष्ट करते हुए लिखती है– "इतिहास– लेखन एक न समाप्त होने वाली प्रक्रिया है, क्योंकि वह इतिहास पुरूष की अनुवर्न्तनी है।" यह द्विमुखी होती है। एक तो नवीन बने हुए रेखांकनों की आत्मसात करती है, दूसरे और नये मूल्यों के आलोक में पुराने सभी कुछ की पुर्नव्याख्या करती है। इसलिए हर युग का अपना इतिहास होता है, हर इतिहास का भी अपना युग होता है।[1] इस पुस्तक में उनकी साहित्य इतिहास दर्शन की दृष्टि का पता चलता है, वे इतिहास को एक शाश्वत जीवंत प्रक्रिया मानती है, इतिहास में नवीन एवं पुरातन सभी समान रूप से उपयोगी होते हैं, चाहे वह लोक, एवं शास्त्र की बात हो, हर स्थिति का अपना इतिहास होता है, अथवा बात अन पहलुओं की हो जो अनदेखा रहे अब तक जिन्हें इतिहास में सम्मिलित नहीं किया, जिन्हें इतिहास से अलगाया गया, जिन्हें गौण समझकर अनदेखा कर दिया गया, किन्तु डॉ0 राजे के इतिहास दृष्टि में गौण लेखकों का महत्वपूर्ण स्थान है वह उनके सम्बन्धी में लिखती है– गौण लेखक वह है जो न तो अपने समय में न उसके बाद ही पहचान पाते है। वे समय की आवश्यकता से उत्पन्न होते और उसमें अपना योगदान देकर समाप्त हो जाते है।[2]

जिस प्रकार किसी भी समय में कोई एक धारा प्रमुख तथा अन्य धाराएं गौण रूप से सक्रिय होती है उस प्रमुख एक धारा में लिखने वाले लेख को मुख्य तथा अन्य गौण धाराओं में लिखने वाले लेखकों की गौण लेखक मानकर उनकी अवहेलना इतिहास में की जाती है, उन्हीं गौण लेखकों को मुख्य धारा से जुड़ने का प्रयास करती है डॉ0 सुमन राजे, वह साहित्येतिहास लेखन का मूलधारा मूल्य को मानती हुई इस सम्बन्ध में लिखती है– "सबसे अधिक महत्वपूर्ण है जिसकी सबसे अधिक उपेक्षा की है वह है मूल्यों का संयोजन, इसके बिना मानविकी इतिहास लिखा ही नही जा सकता, और साहित्य का तो बिल्कुल नहीं।"[3] इस पुस्तक में लेखिका मूल्यवान साहित्य की यादे वह लोक साहित्य या शिष्ट सक्रिय जो भी उसे इतिहास में सम्मिलित या शिष्ट जो भी उसे इतिहास में सम्मिलित करना आवश्यक मानती है, जिस साहित्य में मूल्यों का अभाव है वह साहित्य की श्रेणी में नही आता है, साहित्य समाज को एक आदर्श समाज बनाने का कार्य करता है शिष्टता सीखता है, जो मूल्यों के अभाव में संभव नही है।

साहित्येतिहास आदिकाल (1976) से सामान्यतः आदिकाल विभिन्न विवादों से घिरा हुआ काल है, विवादित विषयों में रूचि लेने वाली डॉ0 राजे से यह काल कैसे छूट सकता था, अतः उन्होंने साहित्येतिहास आदिकाल नामक पुस्तक की रचना की यह आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के बाद आदिकाल पर लिखी गई दूसरी पुस्तक है। "डॉ0 सुमन राजे" हिन्दी साहित्य के इतिहास को नवजागरण के आधार पर दो युगों में विभाजित करती है इसका मुख्य कारण है– ऐतिहासिक मूल्यों का साहित्य से जुड़ाव, इस प्रकार डॉ0 सुमन राजे जी द्वारा किया गया साहित्येतिहास का काल–विभाजन परंपरागत से बिल्कुल अलग है उनका मत है– "हिन्दी साहित्येतिहास पर विचार करने से स्पष्ट होता है कि ऐसे दो युग अवतरित हो चुके हैं जिनमें मानवीय चेतना ने अपने उधर्व शिखरों को छूने का प्रयास किया है जिसमें साहित्य किसी शिष्ट वर्ग मात्र की सम्पति न रहकर सम्पूर्ण लोक चेतना के लिए उद्धारित हो गया है, इन्हे हम नवजागरण (रेनशा) के नाम से अभिहित कर सकते है, जिनके

परंपरागत अभियान 'भक्तिकाल' और आधुनिक काल है।'[4] सम्भवतः वह प्रथम भारतीय नवजागरण को बौद्ध लेखन में थेरिया, और थेर, गाथाओ से लेकर हिन्दी भक्तिकाल की सीमा में समाहित करती है। इसी क्रम को आगे लिखती है।

"भक्ति पद्यति अपने युग का सर्वग्राही मूल्य है, परन्तु वह फिर भी सम्पूर्ण लोक चेतना, के नवजागरण का माध्यम है, इसी प्रकार आधुनिकता का लक्ष्य न होकर मानव मुक्ति के प्रति अभिनय शील नवजागरण का माध्यम है।"[5] वह दूसरे भारतीय नवजागरण को आधुनिक काल कहते जो मानव मुक्ति का एक प्रयत्न है, इस प्रकार वह मूल्य और माध्यम, यानी दोहरे आधार पर काल–विभाजन करती है– वह मध्य युगीन, नवजागरण के अंतर्गत आदिकाल भक्तिकाल और रीतिकाल को समाहित करती है। कारण है 'भक्ति के मूल्य' इन तीनों कालो में प्रवाहित होता है, उन्होंने भाषा के आधार पर प्रारम्भिक रचनाओं का अध्ययन करके पाया कि सिद्धी के दोहे अपभ्रंश में है, जबकि चर्यापरी की भाषा पुरानी हिन्दी है या तात्कालीन लीकभाषा में वह अपभ्रंश और पुरानी हिन्दी की एक नही समझती है और संक्रमण काल के सिद्ध साहित्य के अंतर्गत सिद्धों के चर्यापदों रचनाओं से हिन्दी साहित्य का प्रारम्भ मानती है। उसके बाद अप्रभंश के दीता–कोशों की स्थान देती है, वही संयोजन काल के अंतर्गत नाथ साहित्य की सम्प्रेषण काल से भक्ति की धारा तीव्र हो जाती है। अतः इसके अंतर्गत जैन साहित्य, निर्गुण भक्ति साहित्य ऐतिहासिक वीर काव्य प्रेमाख्यान काव्य आदि को स्थान दिया गया है, इस ढंग का काल–विभाजन मानवीय चेतना को आधार बनाकर किया जा सकता है न कि सिर्फ तथ्यों के आधार पर इसी को समग्रता के साथ प्रस्तुति कका अलग प्रयास स्वरूप है–

हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास (2003)

वह इस पुस्तक की भूमिका में लिखती है– 'आधा इतिहास लेखन इसलिए और जरूरी हो जाता है कि उपलब्ध सामग्री ऐसी–ऐसी दिशाओं की ओर संकेत करती है जहाँ साहित्येतिहासकर का ध्यान अभी तक गया ही नहीं था अन्ततः बात तो दृष्टि की ही है न। दृष्टि के बदल जाने से ही साहित्येतिहास का यत्न से बनाया गया पूरा ढ़ाँचा चरमराने लगता है। और हम बजाय दृष्टि को विकसित करने के अतिरिक्त सन्दर्भों, सूत्रों, वृतान्तों को काटने–छाँटने लगते हैं या इधर–उधर खोंसने लगते हैं। अब, वक्त आ गया है कि नयी सामाजिक और साहित्यिक आवश्यकताओं के अनुरूप पुनर्गठित किए जाए, उसके साथ एक प्रकार का बलात्कार ही है। साहित्येतिहास लेखन की प्रक्रिया इतिहास बनाते हुए उसे खोजने की है।'[6]

यह डॉ0 राजे की साहित्यितिहास संबंधी तीसरी व सबसे महत्वपूर्ण पुस्तक है, इसको दो भागो में बांटा गया है, प्रथम भाग मे 'साहित्य का इतिहास' व दूसरे भाग में 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' का विवेचन किया गया है, इस संपूर्ण साहित्य का विकास महिला लेखन के परिप्रेच्छ में दिखाया गया है कि किन परिस्थितियों मे महिलाओं का लेखन कार्य अविच्छन्न धारा से आज तक चला आ रहा है, प्रथम भाग में तमिल, तेलगु, कन्नड़, गुजराती आदि विभिन्न भाषाओं के साहित्य के साथ ही आदिसाहित्य ऋगर्वेदिक ऋषिकाओं की सूक्तियों का वर्णन भी किया गया है, उसके बाद बोद्धकालीन थेरियो ने अपनी अनुभूतियों विचारों को गीतों मे व्यक्त उसका उदाहरण सहित विवेचन किया गया है, इसके बाद उल्लेख मिलता है, इस पुस्तक मे महिला लेखन की एक निरन्त चलने वाली प्रक्रिया का दिग्दर्शन प्राप्त हुआ है। वहीं ग्रामीण अंचलों एक अलग स्वरूप संवेदना की अभिव्यक्ति मिलती है, मूलःरूप से महिलाओं का अभिव्यक्ति लोकगीतों के माध्यम से से ही होती है, जो पीड़ी दर पीड़ी स्वतः

हस्तांतरित होता रहा है। वहीं दूसरे भाग हिन्दी साहित्य के इतिहास मे वह मध्यकाल व आधुनिक को समायोजित करती है, जिसमें वह भक्तिकाल व रीतकालीन लेखिकाओं को साध्वी, रानिया बेगमें, वेश्याओं के साहित्य को सम्मिलित करती है, जिमें धर्माश्रय राजाश्रय, लोकाश्रय है, इस माध्यम वह मध्यकाल दीर्घ परंपरा के लेखक और सामने लाने का अथक प्रयास करती है, उसके बाद के युग अर्थात् आधुनिक काल मे महिला लेखन के विविध रूपों पर चर्चा करती हुए वह कहती है "आधुनिक युगीन नवजागरण एक राजनीतिक, सामाजिक– मूल्य है।"[7]

आधुनिक काल के संदर्भ में उनका यह वक्तव्य दिखाना है, इस युग का महिला लेखन मध्युग के महिला लेखन से कुछ अलग ढंग का है, जिसमे किसी ईश्वर की प्रार्थना या अवतार के सहारे न बैठकर तत्कालीन सरोकारों से जुड़कर अपना निश्चित लक्ष्य प्राप्त करना है। अपनी शोषण के विरूद्ध आवाज उठना अपना अस्तित्व पहचान, आधुनिक काल के साहित्य का केन्द्र है। समाज मे फैले विभिन्न रूढ़ियों का विरोध करते हुए उनसे मुक्त होना, तथा विविध विमर्शों के माध्यम से सामाजिक विसंगतियों को दूर करना है, इस भाग में हिन्दी साहित्य के मध्ययुग से समकालीन महिला साहित्य तक का समावेश किया गया है।

इतिहास में स्त्री 2012 –

यह पुस्तक डॉ0 सुमन राजे की साहित्यतिहास संबंधी चौथी पुस्तक है इस पुस्तक में लेखों को एक साथ संकलित किया गया है, जिसमे लेखों के माध्यम साहित्य के इतिहास में स्त्री की उपस्थिति दर्ज किया गया है। जिससे संबंधित विविध, विवादों, कालो से लड़ना पड़ता है। तब कहीं साहित्य में इतिहास मे महिलाओं की उपस्थिति मिलती है, इसमें गायिकाओं के लेखन पर विचार किया है तथा मध्ययुग मे किन माध्यमों के द्वारा महिला लेखन की उपस्थित मिलती है, तथा साहित्य इतिहास की तत्कालीन परिस्थितियाँ क्या रही एवं उनमे लेखन करने वाली कौन महिला थी, उसके बाद के लेखन मे हिन्दी व उर्दू की सांझी परंपरा का विकास हुआ है। इसमे राजघरानों की रानिया एवं बेगमों के साहित्य के समान्तर धारा चल रही थी जिसमे विभिन्न प्रकार का लेखन हो रहा था उस समय की परिस्थितियों के अनुरूप साहित्य रचा जा रहा था इसमें एक लेख है, जीवनी और आत्मकथा का अर्धनारीश्वरत्व प्रेमचंद्र हार आत्मकथा का अर्धनारीश्वरत्व एवं लोक एवं वेद की समन्वय को दिखाती है लोककला जो स्त्री पूजा त्यौहारों पर बनाती है उसका विवेचन भी इस पुस्तक मे किया गया है। इसके संबंध वह कहती है– 'अस्तु स्त्री के चित्रांकन का एक 'प्रतीकशास्त्र तो है पर वह उनका अपना है, लोक का है।'[8]

उक्त अध्ययन करने के बाद यह निश्चित हो जाता है, इतिहास के सामंती व्यवसथा को डॉ0 राजे जी नकारा है, साथ ही इतिहास लेखन में तिथियों की प्रामाणिता के अलावा मानवीय संवेदनाओं का मूल आधार रखना आग्रह तथा लोक व शाखा के समन्वय में ही साहित्येतिहास की मूल चेतना मिलती है इनके अलगवा से साहित्य का इतिहास नही लिखा जा सकता है, डॉ0 राजे जी ने महिला साहित्य लेखन की परंपरा का प्रस्तुत करने के अथक प्रयास किया और यह निश्चित किया, हिंदी साहित्य का इतिहास अभी तक सम्पूर्ण नही हुआ, वह अभी भी आधा इतिहास ही है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. सुमन राजे, साहित्येतिहास : संरचना और स्वरूप, प्रथम संस्करण 1975 ग्रंथम प्रकाशन कानपुर,

पृ0 सं0 5
2. वहीं, पृ0 सं0 197
3. वहीं, पृ0 सं0 5
4. सुमन राजे, साहित्येतिहास आदिकाल, प्रथम संस्करण 1976, ग्रंथम प्रकाशन कानपुर, पृ0 सं0 38
5. वही, पृ0 38
6. डॉ0 सुमन राजे 'हिन्दी साहित्य का आधा इतिहास आठवाँ संस्करण, 2022, वाणी प्रकाशन ग्रुप दरियागंज नई दिल्ली, पृ0 सं0 8
7. वही, पृ0 सं0 255
8. सुमन राजे, इतिहास में स्त्री, पहला सांख्य 2024 वाणी प्रकाशन ग्रुप दरियागंज नई दिल्ली, पृ0 सं0 155

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2026 Page No. : 89-99

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.22679720

Between Submission and Emancipation : A Thematic and Semiological Study on the Image of Maghrebi Women in French Cinema from 2000 to 2013

Rafay Kamaal
Research Scholar,
Centre for French and Francophone Studies, School of Language,
Literature and Culture Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi-110067.

Introduction :

Since the colonial era, Muslim women have been a subject of fascination and scrutiny in the Francophone world. This obsession was also noticed by the famous postcolonial author Frantz Fanon who says that "this woman who sees without being seen frustrates the colonizer."[1] Upon their arrival in North Africa, French colonisers perceived Muslim women as victims of oppressive patriarchal traditions. Their purported emancipation was therefore presented as a central component of the French *mission civilisatrice* which served as one of the key justifications for the colonization of the region called Maghreb. Colonial discourse also exploited the difficult social conditions faced by many women to legitimize the continuation of French rule in Maghreb. In Algeria, in particular, the colonial administration sought to win the support of women as a means of weakening nationalist resistance, discouraging demands for independence, thus consolidating its control.[2]

[1] Frantz Fanon, *L'An V de la révolution algérienne*, Éditions François Maspero, Paris, 1959.

[2] *Histoire de l'Algérie à la période coloniale*, edited by Abderrahmane Bouchène et al., Paris, La découverte, 2014, p. 736.

After decolonization, discussions on the conditions of Maghrebi women in politics, media, and public discourse continued, especially in France which is home to a large Maghrebi community whose presence in the country itself is a colonial legacy. Also, many authors have written about the conditions of Muslim women in the French-speaking world, including France. In this context, one can mention several big names such as Frantz Fanon, Simone de Beauvoir, Assia Djebar, Malika Mokeddem, Tahar Ben Jelloun, Yamina Benguigui and Amina Wadud. Like the media and literature, the seventh art has also given considerable attention to this topic, producing many films which portray the lives of Muslim women in France, placing them between the submission demanded by traditional dictates and the desire for emancipation. And it's this portrait that the present study aims to understand. To this end, it will analyse the following, films released between 2000 to 2013: *Samia* (2000) by Philipp Faucon, *Inch'Allah Dimanche* (2001) by Yamina Benguigui, *The Secret of the Grain* (2007) by Abdellatif Kechiche, *Le choix de Myriam* (2008) by Malik Chibane, *Cheba Louisa* (2013) by Françoise Charpiat.

This study will tackle the following questions: how are women of maghrebi origin represented on screen? According to French cinema, what is the impact of traditional maghrebi values and French values on their lives? What are the recurring themes and tropes in French cinema that are used to show the challenges they face? To answer these questions, this study will rely on a thematic and semiological analysis of the above-mentioned films. Among many approaches proposed for analyzing cinema, the thematic approach is the most widespread, and the one which is also practiced by the viewer.[3] As far as semiology is concerned, it was originally conceived to study sign systems in order to decode their meaning.[4] Since cinema contains numerous communicative signs, it can be regarded as functioning like a linguistic code composed of various signs. And no approach is better than semiology to decode signs. Therefore, this study will use the abovementioned two approaches to decode the deeper meanings of the selected films, which, in turn, will help us understand the way French cinema addresses the issues and challenges related to the lives of Muslim women in French society. The main objective is to investigate, through cinematic representations, the social conditions of Maghrebi women in France and the potential avenues for improving their situation.

[3] Jacques Aumont, Michel Marie, *L'analyse des films*, 2nd edition, Collection « Nathan Cinéma, 2002, P. 91.

[4] James Monaco, *How to read a film*, 3rd edition, Oxford university press, New York, 2000, P. 157.

This study is divided into three parts. The first part examines those films that portray the patriarchal confinement of Muslim women and their contrasting desire for mobility. The second part analyzes those films that show the surveillance and restriction imposed on them as well as their attempts to escape it. The third part focuses on those films that address the dichotomy of modesty and obscenity in the case of maghrebi women.

Maghrebi woman between confinement and mobility :

The first film which we are going to talk about is *Inch'Allah Dimanche*. It is directed by Yamina Benguigui, the first maghrebi woman filmmaker who is also the director of some of the best documentary films on Maghrebis like *Femmes d'islam* and *Mémoires d'immigrés, l'héritage maghrébin*. Released in 2001, *Inch'Allah Dimanche* portrays the life of Zouina, a newly arrived maghrebi woman in France, who is forced by her husband to stay indoors. She is not allowed to leave, to interact with neighbours, to listen to radio, to put up make-up etc. Benguigui's film shows that this subjugation by her family is rooted in maghrebi traditions which stipulate that a woman should take care of children, obey her husband, prepare meals, perform household chores and so on. Any deviation from this rule can be punished as shown by the scenes where Zouina is beaten up by her husband.

Amidst scenes of confinement, the film also shows the desire for mobility which such women have. This desire is visible in scenes where Zouina tries to improve her French to connect with the outside world, attempts to find an Algerian family in the city, starts listening to the feminist programs on radio, buys a make-up kit, discusses female sexuality with her friends and talks to a white man. For her, it's a battle between the inside and the outside that she must win at all costs. In the end, she manages to break free from the chains of traditions, which leads to her emancipation, thanks in part to the help of her new white French friends.

Though the film denounces racism against North Africans in France, thus highlighting double marginalization of Muslim women in France, the central idea is a bitter critique of the patriarchal traditions rooted in maghrebi culture that put so many restrictions on women, reducing them to mere silent beings. Benguigui is undoubtedly a strong woman, both in her professional career as an artist and in her political career as Minister Delegate for Francophonie. Claiming to fight for the rights of women through francophonie,[5] she never hesitates to take a

[5] « Yamina Benguigui : Je me bats pour les femmes avec la francophonie », interview by Patrick SIMONIN for TV5Monde on 14.03.13. Online link: https://www.youtube.com/watch?v=4vD-_woSS4w

stand. This can be verified after watching the film, in which she shows that the traditional maghrebi values constitute a prison for women. Also, according to Benguigui's own statement, these values have regional roots but over the course of many centuries, they came to be attributed to islam and are nowadays practiced with great severity throughout the Arabo-Muslim world in the name of religion.[6] Thus, Zouina's status as a domestic slave—as depicted in the film—finds absolutely no support in islam. It is rather traditional patriarchy that demands the submission of Zouina. For Benguigui, French values, on the other hand, represent emancipation. One can see the zenith of that emancipation in the final scenes where Zouina is seen travelling with a white man in a bus. These scenes present Zouina as an emancipated woman, representing the reformed maghrebi community, and a white man as a savior symbolising a welcoming France.

That being said, we can nevertheless observe that the story told by Yamina Benguigui conforms to the popular idea propagated by the media that Muslim women are victims of religious traditions, as sociologist Thomas Deltombe states:

> "The media are accustomed to describing young women from families of Muslim culture as eternal victims of religious traditions."[7]

Conversely, French civilization is presented as a culture capable of freeing maghrebi women from those traditions. This premise is present in some films that view the community as a monolithic entity without suggesting the diversity within it. But this diversity does exist, as Abdellatif Kechiche demonstrates in his film titled *The Secret of the Grain*. On this subject, the filmmaker says:

> "There is also the desire to show them differently than according to the idea that we have in France of the Arab woman and of male domination in Arab households."[8]

Faced with the prevailing idea in French society, the filmmaker wishes to present a new image of Arab women. There are several female characters in his film, and each has her own way of life. Not every woman is a victim of patriarchal traditions, as suggested by the character of Rym in the film. Taking into account what Thomas Deltombe and Abdellatif Kechiche think,

---

[6] « Le monde selon Yamina Benguigui », interview by Michel Doussot, published on 10.12.2012 on Blogpasblog. Online Link: https://blogpasblog.wordpress.com/2011/12/10/le-monde-selon-yamina-benguigui/

[7] Thomas Deltombe, *L'islam imaginaire : la construction mediatique de l'islamophobie en France*, 1975-2005, La Découverte, Paris, p. 100.

[8] Tiphaine Manac'h, « L'image de « la Maghrébine » dans le cinéma français (1970-2007) », in *Genre & Histoire*, n° 20, Automne 2017.

we understand that Benguigui's film fails to break down stereotypes attached to Arab women, even though it ardently advocates for their emancipation.

Maghrebi woman between Surveillance and freedom :

There are many films that depict, on the one hand, the surveillance on maghrebi women by their families. On the other hand, they show that these women nevertheless wish to adopt values typically considered French, which in turn would symbolise their freedom like rejecting parental surveillance, working in an office, singing, dancing, hanging out with male friends etc. This dichotomy inevitably presents complex scenarios as shown by the film *Samia* of Philippe Faucon. This film is an adaptation of Soraya Nini's autobiographical account titled *They Say I'm a Beurrette*, published in 1993. Like the book, the film tells the story of a maghrebi girl in France who wants to live her life according to French values, but she is often reprimanded by her family. Every time she leaves the house, she is always followed and spied on by her brother Yacine who represents parental authority and ensures that his sister does nothing shameful to tarnish the family's honor.

Not only in *Samia*, but in most films on the subject, one can notice, alongside each maghrebi woman who longs for freedom, the presence of a male character who follows her, reprimands her, and occasionally beats her to ensure that family honor is not violated. This male character is sometimes husband (*Inchallah, dimanche*), sometimes brother (*Pierre and Djemila*), sometimes fiancé (*Cheba Louisa*), or sometimes father (*Le choix de Myriam*). Under such circumstances, the struggle for freedom becomes more arduous. Samia nonetheless rejects submission to her brother's will, does what she wants, even if it goes against so-called family traditions. Thus, this portrait of Samia becomes a symbol of female emancipation within her community.

Likewise, muslim women are not allowed to choose their partner as shown by the film *Cheba Louisa* of Francoise Charpiat. In this film, Djemila wants to marry a man of her choice but her family promises her to another man without her consent. This scene reminds us of another Djamila from the film *Pierre et Djamila* of Gérard Blain. Presenting a romantic story between a French and an Arab along the lines of Romeo and Juliet or Tristan and Isolde,[9] this film shows that Djamila is not allowed to marry his lover Pierre, a white man from outside the

[9] Videau André, « Pierre et Djemila, un film de Gérard Blain », in *Hommes et Migrations*, n°1105 (Numéro spécial Alimentation), juillet 1987.

community. Same is the case with Djamila of *Cheba Louisa*. The man with whom she wants to marry is his office colleague; he is liberal and doesn't have any problem with Djamila working after marriage. But since he hails from the majority community of France, he is rejected by her family. Her unemployed fiancé, chosen by the family, on the other hand, is a traditional man, who expects her to take care of household chores after marriage.

This situation creates a difference between the time she spends with her family and that which she passes with her lover. Accordingly, the film shows a binary of two opposite roles, both played by Djamila. In the first role, she is shown as a housewife, serving the people at the dining table. But in the second role, one can see the scenes where she is working in the office, wearing formal attire. The film highlights that Djamila is caught between two cultures and tries to reconcile between them as much as possible.[10] According to Philippe Faucon too, the director of the film titled *Samia*, this dilemma is common among most Muslim women who choose to participate in mainstream French society.[11] As Djamila feels suffocated in the patriarchal system prevalent in her family, in the end, she chooses the second role, that of a modern woman which guarantees her financial and emotional independence. Similarly, despite stiff opposition from her family, she starts singing and dancing in a club. In all this, she is assisted by her white French friend Emma, which brings us back to the white saviour portrayed in most films on the subject. This white person signifies the French republican values which have the power to liberate Muslim women.

Maghrebi woman between modesty and obscenity :

It is well established that Maghrebi and French cultures often hold markedly different conceptions of what constitutes modest and obscene behavior. In maghrebi societies, women are supposed to wear modest clothes, covering their bodies. They are not allowed to wear revealing clothes such as bikinis, to have a male friend or premarital intimate relations. All these activities are considered obscene in maghrebi culture. Yet, such things are normal in French culture. In many films on the subject, one can observe the narrative revolving around this difference. These films show Muslim women hanging out with their male friends, having premarital intimate

[10] « Cheba Louisa, une comédie », interview by Jean-François Cadet, published on 09.05.2013 on RFI. Online link: https://www.rfi.fr/fr/emission/20130507-1-rachida-brakni

[11] Interview of Philippe Faucon by Fernand Denis, published on 27.03.2001 on the site of La Libre. Online link: https://www.lalibre.be/culture/cinema/2001/03/27/entretien-avec-philippe-faucon-F74NC2RG5VGXHPC7Q4AGVQ76WI/

relations, wearing bikinis on the beach etc. Such scenes highlight the fact that these women nevertheless desire to control their sexuality and to lead their lives according to their own choice. In *Cheba Louisa*, released in 2013, we see several images, challenging the notion of modesty as perceived in maghrebi values. Djemila, the heroine of the film, fights with her family to live alone in a separate apartment because she can no longer tolerate the restrictions imposed on her by the family. After shifting to a new apartment, she invites her boyfriend to stay with her. In one scene, one can observe Djemila sleeping with her boyfriend. This behavior may be shocking in a traditional society like that of Djamila, but it's normal in French society. Moreover, in the film, this scene highlights her emancipation because according to the film critic Tiphaine Manac'h, the eroticization in such films signifies emancipation and integration into French society.[12]

Likewise in the film titled *Samia*, there are several scenes that show the protagonist's attempts to emancipate herself by doing something which is considered obscene by her family. The most shocking one is when she goes to the beach with a male friend. In this scene, we see Samia half-naked, wearing only a bikini, a western costume worn by women when they go to the beach but this revealing attire is forbidden according to maghrebi traditions. Wearing such an outfit is scandalous, shameful, and outrageous. This is the first time Samia has worn such a costume, and one can notice that she is uncomfortable. With her eyes downcast, she tries to distance herself from her male friend.

The same goes for Malik Chibane's film *Douce France*. This film deals with the issue of hijab, worn by Muslim women, which is undoubtedly the most controversial topic in France since the Creil scarf case of 1989.[13] Released in 1995, the film shows the contrast between two Muslim sisters: Souad and Farida. Souad is well-educated, doesn't wear a hijab and has a non-muslim boyfriend. Farida is also well-educated but unlike Souad, she has a Muslim boyfriend and always wears a hijab. The latter is fired by her employer when she refuses to remove the hijab. Throughout the film, Farida suffers from a dilemma: should she continue to wear the hijab or remove it like her sister and many other maghrebi girls? In the end, after much reflection, she decides to remove it, which denotes her emancipation. Removing hijab is obscene in maghrebi

[12] Tiphaine Manac'h, « L'image de « la Maghrébine » dans le cinéma français (1970-2007) », in *Genre & Histoire*, n° 20, Automne 2017. En ligne depuis le 1 Décembre 2017.
[13] Clotilde Barral, « L'affaire du foulard », in *Hommes et Migrations*, n°1129-1130, janvier-février 1990.

tradition but since it is often considered as an assault on laicity as enshrined in French republican values, its removal is modest in French culture and a sign of being liberated and integrated in French society.

Conclusion :

In this study, we first discussed the French obsession, be it before and after colonization, with the emancipation of Muslim women. This obsession is often reflected in politics, media, literature and cinema. We chose the last one for this study.

In the first part, we examined the film of Yamina Benguigui, which denounces the confinement of women within the domestic sphere and highlights their desire for freedom and mobility. Frustrated by the patriarchal values imposed by her family, the protagonist, Zouina, seeks to explore the world beyond the boundaries of her home and assert her independence.

In the second part, we analyzed two films, namely *Samia* and *Cheba Louisa*, both of which highlight the tension between surveillance and personal freedom. These films portray female protagonists who aspire to embrace aspects of French society, such as pursuing professional careers, singing, dancing, attending social gatherings, and forming friendships with men. At the same time, they depict their family members as antagonists who closely monitor their behavior, viewing such activities as transgressions that could compromise the family's honor and reputation.

Finally, in the third part, we analyzed three films that illustrate the tension between differing conceptions of modesty and obscenity in Maghrebi and French cultural contexts. These films portray female protagonists negotiating competing social norms regarding dress, bodily autonomy, and sexuality. In many of these cinematic representations, emancipation is associated with the adoption of French styles of clothing, greater control over one's sexuality, and, in some cases, the decision to remove the hijab.

Regarding the signs of submission, several are common across these films like doing household chores, wearing the scarf, and the presence of male guardians, islamic practices, rejection of worldly pleasure in the name of religion. Women with these signs are considered submissive. Conversely, there are several signs of emancipation, such as dressing in the French style, dancing, music, singing, and friendship with white French people who are portrayed as saviors. Women with these signs are viewed as emancipated. This binary is the crux of the films in question.

Having said that, one should also note that some of these signs might not be reliable indicators of submission or emancipation. A woman with or without these signs can be either submissive and emancipated. This characterisation, as Julien Gaertner suggests, is nothing but stereotyping[14] since it perpetuates clichés regarding the Maghrebis. However, given the reputation of muslim societies as oppressive towards women, it is easily consumed by the French audience.[15]

Furthermore, there is a problem of generalization in these films. In this regard, it is important to remember that "Maghrebis" is not a monolithic entity. Among them, there is a great diversity of women, in terms of age, social class, and cultural influences. That's why Denise Brahimi declares such generalisations, shown in the abovementioned films, as western fantasies about the Arabo-Islamic world.[16] This is a major criticism that we find in Orientalist discourse regarding the portrayal of women by Westerners. They refuse to pay attention to the thousands of examples of women who are both practicing Muslims as well as well-integrated into French society. Instead, they tend to select only those cases which seem to be problematic. In the context of Muslim women, this selection proves easier given the popular French opinion about them. As cinema has the power to influence the public psyche, creating an illusion of reality for the audience as posited by the French film theorist Christian Metz,[17] this feeling is swiftly transferred to the hearts of audiences.

Also, it would have been desirable for us to know how the director chose the signs that indicate submission and emancipation of their characters. After painstakingly searching through their interviews about the films, we could not find anything relevant. Such a revelation could have strengthened their point of view on Muslim women; otherwise, there are many authors such as Patricia Geesey who, in her analysis of various female characters of North African origin in French cinema, proposes that the submissive portrait of Muslim women, aims to generate only

---

[14] Julien Gaertner, L'Émir préfère les blondes : La mise à distance des « Arabes » dans les comédies françaises (1973-1983), in *Le Temps des médias*, 2017, N°28, pp. 48-60.

[15] Julien Gaertner, Aspects et représentation du personnage arabe dans le cinéma français, in *Confluences Méditerranée : retour sur une décennie*, L'Harmattan, 1995–2005, 2005/4 N°55, pp. 189-201.

[16] Denise Brahimi, *50 ans de cinéma maghrébin*, Minerve, France, 2009, Page : 106.

[17] Christian Metz, *Essais sur la signification du cinéma*, tome II. Ed. Klincksieck, Paris, 1973, p. 14.

sensationalism for the French public,[18] who is supposedly shocked to discover a culture which doesn't allow women to live freely.

References :

a. Books :

1. Christian Metz, Essais sur la signification du cinéma, tome II. Ed. Klincksieck, Paris, 1973.
2. Denise Brahimi, *50 ans de cinéma maghrébin*, Minerve, France, 2009.
3. Frantz Fanon, L'An V dc la révolution algéricnnc, Éditions François Maspcro, Paris, 1959.
4. Jacques Aumont, Michel Marie, *L'analyse des films*, 2nd edition, Collection « Nathan Cinéma, 2002.
5. James Monaco, *How to read a film*, 3rd edition, Oxford university press, New York, 2000.
6. *Histoire de l'Algérie à la période coloniale*, edited by Abderrahmane Bouchène et al., Paris, La découverte, 2014.
7. *Les écrans de l'intégration : l'immigration maghrébine dans le cinéma français*, Sylvie Durmelat et Vinay Swamy (Dir), Presses universitaires de Vincennes, 2015.
8. Thomas Deltombe, *L'islam imaginaire : la construction mediatique de l'islamophobie en France*, 1975-2005, La Découvcrtc, Paris.

b. Articles :

1. Barral Clotilde, « L'affaire du foulard », in *Hommes et Migrations*, n°1129-1130, janvier-février 1990.
2. Gaertner Julien, Aspects et représentation du personnage arabe dans le cinéma français, In *Confluences Méditerranée : retour sur une décennie*, L'Harmattan, 1995–2005, 2005/4 N°55, pp. 189-201.
3. Gaertner Julien, L'Émir préfère les blondes : La mise à distance des « Arabes » dans les comédies françaises (1973-1983), in *Le Temps des médias*, 2017, N°28.
4. Tiphaine Manac'h, « L'image de « la Maghrébine » dans le cinéma français (1970-2007) », in *Genre & Histoire*, n° 20, Automne 2017.
5. Videau André, « Pierre et Djemila, un film de Gérard Blain », in *Hommes et Migrations*, n°1105 (Numéro spécial Alimentation), juillet 1987.

c. Sitography :

1. « Yamina Bcnguigui : Jc mc bats pour lcs fcmmcs avcc la francophonic », intcrvicw by Patrick SIMONIN for TV5Monde on 14.03.13. Online link: https://www.youtube.com/watch?v=4vD-_woSS4w
2. « Le monde selon Yamina Benguigui », interview by Michel Doussot, published on 10.12.2012 on Blogpasblog. Online Link: https://blogpasblog.wordpress.com/2011/12/10/le-monde-selon-yamina-benguigui/

[18] *Les écrans de l'intégration : l'immigration maghrébine dans le cinéma français*, Sylvie Durmelat et Vinay Swamy (Dir), Presses universitaires de Vincennes, 2015, P. 210.

3. « Cheba Louisa, une comédie », interview by Jean-François Cadet, published on 09.05.2013 on RFI. Online link: https://www.rfi.fr/fr/emission/20130507-1-rachida-brakni
4. Interview of Philippe Faucon by Fernand Denis, published on 27.03.2001 on the site of La Libre. Online link: https://www.lalibre.be/culture/cinema/2001/03/27/entretien-avec-philippe-faucon-F74NC2RG5VGXHPC7Q4AGVQ76WI/

d. Filmography :

1. Blain, Gérard, *Pierre et Djemila*, Selena Audiovisuel, Les Productions du Cercle Bleu, Les Films Plain-Chant, Les Films A2 and Xanadu Film, France, 1987.
2. Benguigui, Yamina, *Inch'Allah dimanche*, Missane Belkiss Films, France and Algeria, 2001.
3. Benguigui, Yamina, *Mémoires d'immigrés, l'héritage maghrébin*, Bandits/Elemiah, France, 1997.
4. Charpiat, Françoise, *Cheba Louisa*, Wild Bunch, Direct Cinéma and Legato Films, France, 2013.
5. Chibane, Malik, *Douce France*, France, 1995.
6. Chibane, Malik, *Le choix de Myriam*, France, 2008.
7. Faucon, Philippe, *Fatima*, Serge Noël pour Possibles Média, France and Canada, 2015.
8. Faucon, Philippe, *Samia*, Ognon Pictures and Arte France Cinéma, France, 2000.
9. El Mechri, Mabrouk, *Kung Fu Zehra*, Les Films du kiosque, France, 2022.
10. Guerdjou, Bourlem, *Zaïna, cavalière de l'Atlas*, Rezo Productions and Prokino Filmproduktion, Germany and France, 2005.
11. Herzi, Hafsia, *Bonne mère*, Saïd Ben Saïd and Michel Merkt, France, 2021.
12. Huppert, Caroline, *Pour Djamila*, France, 2012.
13. Kechiche, Abdellatif, *La Graine et le Mulet*, Pathé Renn Productions and Hirsch, France, 2007.
14. Lilienfeld, Jean-Paul, *La journée de la jupe*, Arte France, Films Mascaret, Film Fontana and RTBF, France and Belgium, 2009.
15. Mihaileanu, Radu, *La source des femmes*, Elzévir Films, Oï Oï Oï Productions, Europa Corp, France 3 Cinéma, Compagnie Cinématographique Européenne, Panache Productions and Radio Télévision Belge Francophone, France, Belgium, and Italy, 2011.
16. Moknèche, Nadir, *Délice Paloma*, Sunday Morning Productions, Arte France Cinéma, Laïth Média, Canal+, CinéCinéma and Poste Image, Algeria and France, 2007.
17. Moknèche, Nadir, *Le Harem de Madame Osmane*, Bloody Mary Productions, France 3 Cinéma, Astoria Films, Canal+ Horizons, Tornasol Films, P.H.F. Films and Zilis Films, Spain, France and Morocco, 2000.
18. Moknèche, Nadir, *Lola Pater*, Blue Monday and Versus Production, France and Belgium, 2017.
19. Moknèche, Nadir, *Viva Laldjérie*, BL Prod., Gimages, Arte France Cinéma, Need Productions and Sunday Morning Productions, Algeria, France and Belgium, 2004.
20. Paternina, Miguel Courtois, *Leïla née en France*, France, 1992.

Contact no.: 9990864824
Email : rafaykamaaljnu@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2026 Page No. : 100-105

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.22679720

स्वतंत्रता के बाद भारत में आदिवासी महिलाओं की सामाजिक–आर्थिक और शैक्षिक स्थिति

प्रीति भटनागर, शोधार्थी,
प्रो0 राजेन्द्र सिंह (रज्जू भाइया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज।
(इलाहाबाद राज्य विश्वविद्यालय)

सारांश :

आदिवासी दो शब्दों से मिलकर बना है आदि+वासी आदि शब्द का अर्थ है बहुत पहले से और वासी का अर्थ है जो वास करते है भारत के संविधान में आदिवासियों को 'अनुसूचित जनजाति' कहा गया है। आदिवासियों को भारत के संविधान की पांचवी अनुसूची में ''अनुसूचित जनजाति'' के रूप में मान्यता दी गई है। भारत में अनेक प्रकार की जनजातियाँ है, जैसे गोंड, भील, संथाल, मुंडा, खासी, गारों, अंगामी भूटिया, चेचू कोडाबा आदि। प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य स्वतंत्रता के बाद भारत में आदिवासी महिलाओं (गोंड जनजाति) की सामाजिक आर्थिक व शैक्षिक स्थिति का अध्ययन करना है। शोध कार्य बलिया जिले के दो तहसील सदर तहसील और बांसडीह तहसील में किया गया है। प्राथमिक स्त्रोत में साक्षात्कार और अवलोकन एवं द्वितीयक स्त्रोत में पाठ्य–पुस्तक, समाचार पत्र एवं रिपोर्ट आदि का उपयोग किया गया है। मेरे इस शोध पत्र में गोंड जनजाति कौन है गोंड जनजाति के महिलाओं की सामाजिक आर्थिक और शैक्षिक स्थिति में स्वतंत्रता के बाद क्या परिवर्तन आये साथ ही उनकी समस्याएं और उनकी स्थिति में क्या विकास हुये इन सभी का अध्ययन किया गया है।

शोध अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष के आधार पर ज्ञात हुआ है, कि गोंड जनजाति के महिलाओं की स्थिति में उत्तम परिवर्तन हुआ है गोंड जनजाति की महिलाएं जो शिक्षित है उनकी सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक स्थिति बहुत ही अच्छी है, साथ ही गोंड जनजाति की महिलाएं आत्मनिर्भर बन रही है, शिक्षण कार्य कर रही महिलाओं का दृष्टिकोण अधिक सार्थक है। साथ ही जो महिलाएं शिक्षित नहीं है उनके परिवार की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है उनकी स्थिति निम्न है गोंड जनजाति के महिलाओं की स्थिति कैसे उच्च हो इसका भी सुझाव दिया गया है।

मुख्य शब्द – गोंड़ जनजाति की महिलाएं, सामाजिक स्थिति, आर्थिक व शैक्षिक स्थिति, बलिया के गोंड़ जनजाति की महिलाए, वर्तमान स्थिति गोंड जनजाति के महिलाओं की समस्याएं, लैंगिक असमानता, शिक्षित महिलाएं।

प्रस्तावना –

आदिवासी शब्द का अर्थ होता है जो आदिकाल से यहां के निवासी है। भारत में अनेक प्रकार की

जनजातियां पायी जाती है। अनुसूचित जनजातियां देश भर में मुख्यता वनों, जंगलों और पहाड़ी इलाकों में फैली हुई है। भारत के संविधान में आदिवासियों को 'अनुसूचित जनजातियां' कहा गया है। हमारे भारतीय संविधान में 550 जनजातियों को अनुसूचित जनजाति घोषित किया गया है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले सन् 1941 में भारतीय जनजातियों की कुछ जनसंख्या 2,47,1200 थी, स्वतंत्रता के बाद वर्ष 1951 में यह संख्या घटाकर 1,91,16,498 रह गई। सन् 1961 की जनगणना के अनुसार भारत में जनजातियों की कुल संख्या 29883470 थी वर्ष 1971 में यह जनसंख्या 38015162 थी। वर्तमान समय में करीब 705 अनुसूचित जनजातियां है। गोंड जनजाति भारत की प्रमुख जनजाति है गोंड जनजाति भारत के सबसे बड़े आदिवासी समूहों में से एक है। गोंड जनजाति के लोगों का रंग काला, काले बाल, व होठ मोटे, नाक बड़ी व चिपटी होती है। गोंड जनजातियां सबसे ज्यादा पश्चिम बंगाल, मध्यप्रदेश, गुजरात व उत्तर प्रदेश में पाए जाती है। गोंड जनजातियां उत्तर प्रदेश में सोनभद्र, मीरजापुर, वाराणसी, चंदौली, जौनपुर, भदोही, आजमगढ़, गाजीपुर, मऊ, देवरिया, बलिया आदि जनपदों में निवास करती है। गोंड जनजाति के लोग कृषि व पशुपालन करते है गोंडों की उत्पत्ति संबंधी कई धारणाएं, कथाएं प्रचलित है ऐसा कहा जाता है कि गोडों की उत्पत्ति भगवान शंकर से हुई है। गोंड़ समाज की महिलाओं के गहने, उनका पहनावा, उनका श्रृंगार, गोदना आकर्षण का केन्द्र होता है। गोंड समाज की महिलायें साड़ी पहनती है और सिर पर माथे के थोड़ा ऊपर एक पट्टी बांधती है। गोंड समाज की महिलाएं गोदना की बहुत ही शौकीन होती है। महिलाओं की ऐसी मान्यता है कि गोदना गुदवाने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है साथ ही शरीर व सिर दर्द नहीं होता है। गोंड समाज में लौटावा विवाह प्रचलित है साथ ही विधवा विवाह, बाल विवाह प्रचलित है विवाह में कन्या के घर वालों को दहेज देना पड़ता है। त्यौहारों में बाजरा व चावल बनाया जाता है। गोंड समाज की महिलाएं अपनी परम्पराओं के प्रति बहुत की समर्पित व निष्ठावान होती है। और अपने घर–परिवार की रक्षा करने के उद्देश्य से जरूरत पड़ने पर दुर्गा का रूप भी धारण कर लेती है। गोंड समाज में महिलाएं अपने घर–परिवार व समाज में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। महिलाओं का योगदान खेती, परिवार की देखभाल घर का काम–काज व सामाजिक परम्पराओं को जीवित रखने में होता है। गोंड जनजाति की महिलाएं शारीरिक रूप से मजबूत होती है। और साथ ही प्रकृति पूजक होती है, प्रकृति की रक्षा करती हैं और प्रकृति को अपना भगवान मानती है।

उद्देश्य – स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद गोंड़ जनजाति के महिलाओं की स्थिति :–

1. गोंड जनजाति कौन है गोंड जनजाति के महिलाओं का रहन–सहन का अध्ययन करना।
2. गोंड जनजाति के महिलाओं की सामाजिक–आर्थिक और शैक्षिक स्थिति का अध्ययन करना।
3. गोंड जनजाति के महिलाओं की वर्तमान स्थिति का अध्ययन करना।
4. गोंड जनजाति के महिलाओं की समस्याओं का अध्ययन करना।
5. गोंड जनजाति के महिलाओं की समस्याओं को खत्म करने के उपाय का अध्ययन करना।

शोध प्रविधि व अध्ययन क्षेत्र :

प्रस्तुत अध्ययन प्राथमिक एवं द्वितीयक समंको पर आधारित है। प्राथमिक स्त्रोत में साक्षात्कार का उपयोग किया गया है। आंकड़ों के संकलन के लिए साक्षात्कार द्वारा सूचनायें संकलित की गयी है। कुछ सूचनाओं के संकलन के लिए अवलोकन का उपयोग किया भी गया है। द्वितीयक आंकड़ों के लिए समाचार पत्र, पत्रिका, पुस्तकें, रिपोर्ट व इंटरनेट का उपयोग किया गया है।

अध्ययन क्षेत्र :

उत्तर प्रदेश के बलिया जिले के दो तहसील सदर तहसील व बांसडीह तहसील को अध्ययन के लिए चुना गया है। भारत में बहुत सारी जनजातियां है। अध्ययन के लिए गोंड जनजाति की महिलाओं को चुना गया है। बुजुर्ग महिलाओं लड़कियों, शिक्षित महिलाओं और अशिक्षित महिलाओं से प्राप्त जानकारी के अनुसार निष्कर्ष निकाला गया है।

स्वतंत्रता के बाद गोंड जनजाति के महिलाओं की सामाजिक–आर्थिक व शैक्षिक स्थिति :

भारत देश में आदिवासी समाज की महिलाओं की स्थिति आजादी के 76 साल बाद जब मैं बलिया जिले के सदर तहसील और बांसडीह तहसील में गई और बुजुर्ग महिलाओं से बात की। उन्होंने अपनी स्थिति और अपने माँ–बाप (स्वर्गवासी) की स्थिति आजादी से बाद की बताई।

सामाजिक–आर्थिक व शैक्षिक स्थिति :

देश तो आजाद हो गया था लेकिन महिलायें अभी भी आजाद नहीं हुई। महिलाओं की स्थिति दयनीय है। महिलाओं की मानसिकता बहुत ही रूढ़िवादी थी। महवारी को लेकर महिलाओं ने आपस में बहुत सारे कानून बनायी थी। उच्च जाति के लोग गोंड जनजाति की महिलाओं के साथ भेदभाव करते थे। उन्हें अछूत मानते तथा अपने घर का पानी नहीं पीने देते थे। महिलाओं की सोच निम्न थी क्योंकि महिलायें बेटियां पैदा करना नहीं चाहती थी उनके लिए बहुत ही चिंता का विषय था कि इतनी गरीबी मे ंदहेज का पैसा कहा से ले आयेगी। ठेकेदार, बिचौलिये उन्हें ऋण देते थे ब्याज के नाम पर शारीरिक व मानसिक शोषण करते थे महिलाओं से बंधुआ मजदूरी कराई जाती और मजदूरी के नाम पर उनको कुछ जरूरत का समान दे दिया जाता था। बड़ी जातियों के लोगों के कुएं से पानी पीना मना था गोंड जनजाति की महिलाएं मरती रहे लेकिन उच्च जाति का वैद्य उन्हें हाथ नहीं लगाता था। जंगलों से, खेत में काम करके बाजरा, छोटे चावल लाकर जीविकोपार्जन करती थी जंगल, खेतों से फल–फूल तोड़कर अपना भोजन बनाती थी, गोंड जनजाति में विधवाओं का पुनर्विवाह करने की परंपरा है। अगर महिला पुर्नर्विवाह ना करना चाहे फिर भी उसे विवाह करना पड़ता था। गरीबी चरम सीमा पर थी दो समय का खाना और कपड़े यही उनके जीवन की सबसे बड़ी उपलब्धि थी। उन्हें सम्पत्ति में सलाह देना मना था और साथ ही अपने पसंद के लड़के से अपनी मर्जी से शादी नहीं कर सकती थी। गोंड जनजाति की महिलायें आत्मनिर्भर नहीं थी आत्मनिर्भर के नाम पर खेती व जंगलों से लकड़ी काटना था। शिक्षा का कोई अधिकार नहीं था साथ ही शिक्षा प्राप्त करने के लिए ना उनके पास पैसे थे ना ही उन्हें शिक्षित होने में कोई दिलचस्पी थी। परिवार के समझौते में उनकी बातों का कोई सम्मान नहीं किया जाता था। महवारी के समय महिलाओं को उतना ही काम करना पड़ता था जितना बाकि दिनों में, जिससे उनके स्वास्थ्य की स्थिति खराब हो जाती थी धीरे–धीरे समय बदला और महिलाएं जागरूक होने लगी परिवर्तन प्रकृति का नियम है और समाज में परिवर्तन होना स्वाभाविक है। महिलायें धीरे–धीरे जागरूक होने लगी साथ ही संविधान से उन्हें कुछ हक प्राप्त हुए गोंड जनजाति की महिलाएं छोटे व्यवसाय व हस्तशिल्प के कार्य करने लगी बलिया जिले में गोंड महिलाएं अपने गांव में पानी और खेती की जिम्मेदारी सम्भालने लगी, महिलायें जादू–टोने व रूढ़िवादी सोच को खत्म कर शिक्षित होने लगी। महवारी को लेकर सफाई रखने लगी साथ ही बहुत सारी महिलाओं का उपयोग करने लगी बलिया में गोंड जनजाति की महिलाएं आंगनबाड़ी में काम करने लगी। उन्हें घर में भी सम्मान दिया जाने लगा।

गोंड जनजाति की महिलाएं बहुत सारे श्रृंगार करने लगी और हिन्दू धर्म की परम्परा को मानने लगे। ऐसा प्रतीत होता है कि बलिया जिले में गोंड जनजाति की महिलाओं ने हिन्दू संस्कृति को आत्मसात कर लिया है। हिन्दुओं के विभिन्न उत्सवों को मनाती है। सामाजिक जीवन में अंधविश्वास रूढ़िवादिता तथा परम्परागत जीवन मूल्यों की प्रधानता कम होने लगी। और महिलाएं अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होने लगी। लेकिन अभी भी शिक्षा को महत्व कम दिया जाता है।

वर्तमान समय में बलिया जिले में गोंड जनजातियों के महिलाओं की सामाजिक स्थिति :

वर्तमान समय में गोंड जनजाति के महिलाओं के साथ भेदभाव न के बराबर है उन्हें समाज में अछूत के नजरों से नहीं देखा जाता है। समाज में महिलाओं को सम्मान उनकी जाति से नहीं बल्कि उनके व्यवहार, उनकी आर्थिक व व्यावसायिक स्थिति से मिलता है। महिलाएं पुरूषों से कन्धा से कन्धा मिलाकर चल रही है। महिलाएं किसी भी शॉपिग माल में, किसी भी किराने की दुकान पर जाकर खरीदारी कर रही है उनके साथ कोई भी छुआ–छूत, भेदभाव नहीं है। बलिया जिले में बहुत सारे परिवार की ऐसी महिलाएं है जिनकी समाज में स्थिति बहुत ही उत्तम है। सभी महिलाओं ने हिन्दु मान्यताओं व रीति–रिवाजों को अपना लिया है। बहुत सारे परिवार ऐसे पाये गए जहां मुखिया महिला ही है। बहुत सारे परिवार की महिलाओं से जब मैनें बात की तो उनकी बात से पता चला कि गोंड महिलाओं के जो रिति–रिवाज पहले थे वह रिति–रिवाज उन्हें पता ही नहीं है।

आर्थिक स्थिति :

वर्तमान समय में बलिया जिले में गोंड जनजाति के महिलाओं की आर्थिक स्थिति अच्छी है। महिलाओं के पास सोने, चाँदी व हीरे के गहने है। बहुत सारी महिलाएं आत्मनिर्भर है। बहुत परिवारों में ऐसा देखा गया कि पुरूषों से ज्यादा महिलाएं आर्थिक रूप से मजबूत व सम्पन्न है। महिला एक महीने में लाख रूपये अर्जित कर रही है। वे घरों में कृषि व छोटे–मोटे काम करके खुद को आत्मनिर्भर बना रही है। बहुत सारी महिलाये जो शिक्षित ना हो पाई वे भी घरों में साफ–सफाई का काम, छोटे फैक्ट्रियों में बिस्कुट, नमकीन, पेनों की पैकिंग कर महीने में 15 से 20 हजार रूपये कमा ले रही है। महिलाओं को सम्पत्ति में अधिकार प्राप्त हो रहा है। लड़किया अब घर की लक्ष्मी कहला रही है। बलिया जिले के बांसडीह तहसील में गोंड जनजाति के परिवारों से मिलने गई तो घर की बहु–बेटियां नहीं थी पूछने पर पता चला कि बाहर किसी कम्पनी में कार्यरत् और सरकारी पोस्ट पर कार्यरत् है। और उन्होंने बाहर ही घर व फ्लैट ले लिया है। और समय–समय पर अपने परिवार की आर्थिक मदद करती है।

शैक्षिक स्थिति :

शिक्षा से बलिया जिले में गोंड जनजाति के महिलाओं की स्थिति बहुत ही अच्छी हो गई है। कहा जाता है कि एक शिक्षित महिला पूरे परिवार को शिक्षित कर देती है अगर हर परिवार शिक्षित हो जाए तो पूरा समाज और देश शिक्षित होता जाता है। परिवार में अगर माँ शिक्षित नहीं है तो लड़कियों को शिक्षित कर रही है और लड़कियों को शिक्षित नहीं कर पा रही तो ऐसे घर में शादी कर रही जहाँ उनकी लड़की के बच्चे शिक्षित हो सके। बलिया जिले के बहुत सारे परिवार ऐसे है जहां लड़कियां अंग्रेजी मीडियम स्कूल में, सरकारी स्कूल में, देश विदेश में IIT, MNIT, बड़े–बड़े विश्वविद्यालय में इंजीयरिंग, डॉक्टर, प्रोफेसर, राजनीति, ड्रामा थियेटर की पढ़ाई कर रही है। महिलाएं कम्प्यूटर के कोर्स कर रही है दूसरे शहरों में जाकर IIT, NIT, NET, CLAT, की तैयारी (कोचिंग)

कर रही है। महिलाएं शिक्षित होकर अपने अधिकारों के बारे में जागरूक हो रही है साथ ही राजनीति में महत्वपूर्ण योगदान दे रही है। महिलाओं को यह ज्ञात हो गया है कि शिक्षा से ही हमारा स्तर बदल सकता है।

सिंह (2014) ने जनजातीय युवाओं के संदर्भ में सांकेतिक बुद्धि एवं उपलब्धि उन्मूखीकरण को लेकर अनेक अध्ययनों की विवेचना की। जिसमें उन्होंने पाया कि सांवेगिक बुद्धि जनजातीय युवाओं के उपलब्धि उन्मूखीकरण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है स्नातक प्रथम वर्ष के 66 लड़कों तथा 66 लड़कियों को लेकर **मिश्रा एवं झा (2014)** ने अकादमी निष्पादन के प्रभाव का अध्ययन किया, अध्योपरान्त उन्होंने पाया कि छात्रों की तुलना में छात्राओं द्वारा अधिक अकादमिक निष्पादन का प्रदर्शन किया गया (मजूषा नामदेव) 2018 महिलाएं शिक्षित होकर IAS, PCS, प्रोफेसर, डॉक्टर, चार्टर अकांउटेंट, ऑनलाइन बिजनेस विमेन बन रही है। साथ ही बहुत सारे सामाजिक कार्यक्रमों में भाग ले रही है और फराटेदार अंग्रेजी बोल रही है। सरकार भी आदिवासी महिलाओं को शिक्षित होने में मदद कर रही है उनकी पढ़ाई के हिसाब से स्कालरशिप दे रही हैं।

समस्याएं :

1. आज भी कुछ गोंड जनजाति की महिलाएं अशिक्षित है। क्योंकि उन्हें शिक्षित करना जरूरी नहीं समझा जाता है। भारतीय समाज में यह सोच है कि महिलाएं घर के काम के लिए बनी है।
2. जाति और लिंग के आधार पर भेदभाव किया जाता है। आज भी कुछ उच्च जाति के लोग गोंड जनजाति के महिलाओं से छुआछूत का भेदभाव रखते हैं। समाज में उन्हें अपमान और भेदभाव का सामना करना पड़ता है। जो उनकी सामाजिक स्थिति को मजबूत होने से रोकती है।
3. महिलाओं को घर में ही भेदभाव का सामना करना पड़ता है लड़कियों को लड़कों की अपेक्षा पढ़ाई करने के लिए कम समय व अवसर मिलता है।
4. बलिया जिले में कुछ ऐसी महिलाएं भी हैं। जिन्हें रोजगार का अवसर कम मिलता और अपनी जीविका के लिए लघु हस्तशिल्प कामों तक सीमित रहना पड़ता है।
5. गोंड जनजाति की महिलाएं अपने सामाजिक मार्यादाओं से बंधी होती है उनकी मानसिक स्थिति आज भी पुराने समय की है यही मानसिक स्थिति उन्हें जीवन के फैसले लेने में कठिनाई लाती है।
6. वर्तमान समय में गोंड जनजाति के महिलाओं (बलिया जिला) की स्थिति बहुत अच्छी हो गयी लेकिन आज भी उन्हें दूसरे लोग आरक्षण के ताने व छोटी जाति, जंगली लोग कहकर प्रताड़ित करते हैं।

निष्कर्ष :

परिवर्तन समाज में बहुत ही महत्वपूर्ण है। बलिया जिले में गोंड जनजाति के महिलाओं की सामाजिक–आर्थिक व शैक्षिक स्थिति में परिवर्तत उत्तम हुआ है। स्वतंत्रता के बाद गोंड जनजाति के महिलाओं की स्थिति दयनीय रही लेकिन धीरे–धीरे सामाजिक–आर्थिक व शैक्षिक स्थिति में परिवर्तन होने लगा, महिलाएं शिक्षित होने लगी और साथ ही अपने अधिकर के प्रति जागरूक होने लगी, गोंड जनजाति के पुरूष शिक्षित होने लगे जिससे उनकी रूढ़िवादी मानसिकता खत्म होने लगी और अपनी पत्नी, बेटियों को शिक्षित करने लगे, इसमें सामाजिक संस्थाओं व इंटरनेट का बड़ा योगदान है। संविधान से उन्हें बहुत सारे हक प्राप्त हुए जिससे उन्हें अपनी स्थिति में परिवर्तत करने को मौका मिला। बलिया जिले के गोंड जनजाति की महिलाएं शिक्षित हो रही है और उनकी स्थिति बहुत की अच्छी हो गयी लेकिन कहते हैं ना परिवर्तन हर तरफ एक समान नहीं होता है। अभी भी कुछ

ऐसे परिवार की महिलाएं जो शिक्षित नहीं है और शिक्षित ना होने के कारण वह अपनी स्थिति में ज्यादा परिवर्तन नहीं कर पर रही है अपनी आर्थिक स्थिति की वजह से उच्च शिक्षा ग्रहण नहीं कर पार रही है। जो महिलाएं शिक्षित है वे अपने घर में सभी बच्चों को शिक्षित कर रही है क्योंकि उन्हें यह एहसास हो गया है कि शिक्षा से उनकी सामाजिक व आर्थिक स्थिति में परिवर्तन हो रहा है। बड़े–बड़े शहरों में जाकर शिक्षा ग्रहण कर रही है और देश व समाज के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे रही है।

सुझाव :

शोध निष्कर्ष से पता चलता है कि बलिया जिले में गोंड जनजाति की महिलाओं का विकास धीरे–धीरे होता गया लेकिन अभी भी कुछ परिवारों की महिलाओं की स्थिति अच्छी नहीं है। और महिलाओं की स्थिति कमजोर हो तो यह समाज के लिए बहुत बड़ी समस्या है। महिलाओं को महिलाओं का साथ देना चाहिए जब तक एक महिला दूसरी महिला का साथ नहीं देगी तब तक महिलाओं का उत्थान नहीं हो पायेगा। सरकार द्वारा गोंड जनजाति के महिलाओं के लिए ठोस कदम उठाना चाहिए जैसे बेटी बचाओं और बेटी पढ़ाओं कार्यक्रम सरकार ने चलाया है वैसे ही और भी स्कीम चलाना चाहिए शिक्षा ही महिलाओं को मानसिक व आर्थिक स्तर पर आत्मनिर्भर बना सकती है। भारत की राष्ट्रपति श्रीमती द्रोपदी मुर्मु से सभी आदिवासी महिलाओं को प्रेरणा लेनी चाहिए एक आदिवासी महिला अपनी स्थिति इतना उच्च कर सकती है तो बलिया की सारी गोंड जनजाति की महिलाएं अपनी स्थिति को बहुत ही उच्च बना सकती है। बलिया के गोंड जनजाति की महिलाएं जो उच्च शिक्षा व उच्च पद पर नौकरी कर रही है वे महिलाएं पूरे उत्तर प्रदेश में कैम्प लगाकर महिलाओं को जागरूक करे। और साथ ही सरकार निशुल्क कम्प्यूटर कोर्स करायें। आम महिलाओं की जो समस्याएं है वही समस्याएं गोंड जनजाति महिलाओं की भी है। सरकार महिलाओं के विरूद्ध हो रहे अपराध को रोकने के लिए ठोस कानून व प्राथमिक कानून का निर्माण करना चाहिए।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. नेताम, कैलाश सिंह, शहडोल जिले के आदिवासियों पर भौगोलिक वातावरण का प्रभाव, पीएचडी शोध प्रबंध, अवधेश प्रताप सिंह रीवा।
2. पटेल सीमा (2022) गोंड जनजाति में सामाजिक परिवर्तन रीवा जिले के विशेष संदर्भ में, अनुसंधान शौर्यम्, इंटरनेशनल वैज्ञानिक अनुसंधान पत्रिका (शोध शौर्यम्), पृ. 19–24
3. सिंह, जे. (2014), भावनात्मक बुद्धिमत्ता एवं उपलब्धि अभिमुखत्ता जनजाति युवाओं, माइंड एण्ड सोसाइटी, खंड 03 (तृतीय एवं चतुर्थ) पृ. 19–24
4. मिश्रा, एस. एवं झा, एम. (2014), लिंग एवं प्रातः कालीन सतर्कता से संबंधित शैक्षिक प्रदर्शन, माइंड एण्ड सोसाइटी, खंड 03 (तृतीय एवं चतुर्थ) पृ. 32–35
5. नामदेव, मंजुला (2018), गोंड जनजाति के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन माइंड एण्ड सोसाइटी, खंड 07 (तृतीय एवं चतुर्थ) पृ. 55–58

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2026 Page No. : 106-120

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.22679720

Problems and Prospects of International Marketing of the Indian Leather Industry: An Analytical Study of Export Performance and Market Opportunities in European Union Countries

Ritika Jindal, Author
Dr. Jyotsanna Lokhandde, Research Supervisor & Assistant Professor,
Department of Commerce and Management,
SHRI KHUSHAL DAS UNIVERSITY, HANUMANGARH, RAJASTHAN.

Abstract :

The Indian leather industry is one of India's leading export-oriented manufacturing sectors. It contributes substantially to foreign exchange earnings, employment generation and industrial growth. The European Union (EU) remains a key destination for Indian leather and leather products because of its large consumer base, high purchasing power and sustained demand for premium-quality goods. At the same time, the market is shaped by stringent environmental regulations, sustainability expectations and evolving trade policies. These developments create both opportunities and competitive challenges for Indian exporters.

This study examines the export performance, market structure and future prospects of the Indian leather industry with special reference to the European Union. The analysis is based exclusively on secondary sources, including government publications, trade statistics, industry reports and published research. A comparative and analytical approach is adopted to evaluate how value-added manufacturing, digital marketing, green production practices, global supply chain restructuring and the proposed India–EU trade cooperation may influence future export growth. The study also assesses the significance of changing consumer preferences and the increasing demand for sustainable and design-oriented leather products in European markets.

The findings indicate that long-term export competitiveness cannot be achieved through conventional production-oriented strategies alone. Indian manufacturers need to strengthen product

quality, design capability, technological modernisation, sustainability practices and international branding. Greater emphasis on value-added products and market-oriented innovation is essential for expanding India's presence in high-value European markets. Coordinated efforts by industry, government agencies and export promotion institutions can further improve market access and enhance India's global competitive position. The study concludes that future export growth will depend not only on production capacity but also on the industry's ability to respond effectively to evolving market requirements, regulatory standards and sustainability expectations.

Keywords : Indian leather industry, export performance, European Union, market opportunities, value-added products, sustainability, international marketing, global competitiveness.

1. Introduction :

The Indian leather industry has long been an important pillar of the country's export economy. Rich livestock resources, skilled craftsmanship and a well-established leather-processing tradition have enabled India to emerge as one of the world's major producers and exporters of leather and leather products. Over time, the sector has expanded beyond raw and finished leather to include footwear, handbags, belts, garments, fashion accessories and other value-added products. This transformation has strengthened India's position within the global leather value chain.

The European Union is one of the most significant export destinations for Indian leather products. Countries such as Germany, Italy, France, Spain and the Netherlands account for a substantial share of European demand. Consumers in these markets place strong emphasis on product quality, durability, environmental responsibility and transparent production practices. Consequently, the EU represents both a profitable market and a demanding regulatory environment for Indian exporters.

International trade has changed considerably in recent years. Digital marketing, e-commerce, supply chain restructuring, sustainability regulations and ongoing trade negotiations have reshaped global business practices. These developments have also influenced India–EU trade relations. Reduced trade barriers, improved regulatory cooperation and simplified export procedures could create new opportunities for Indian leather manufacturers. However, exporters must also respond to stricter environmental standards, evolving consumer preferences and increasing competition from other producing countries.

Market expectations have shifted from cost-based competition towards innovation and sustainability. European buyers increasingly prefer environmentally responsible products supported by reliable traceability systems, premium design and strong brand value. As a result, export performance depends not only on manufacturing capability but also on technological advancement, product differentiation and compliance with international standards.

Against this background, the present study analyses the export performance and market opportunities of the Indian leather industry in the European Union. It explores the factors that influence international competitiveness and identifies strategic areas that can strengthen India's long-term position in European markets. The study also highlights emerging opportunities associated with value-added production, sustainable manufacturing, digital marketing and future India–EU trade cooperation.

2. Literature Review :

Mukhopadhyay et al. (2020) examined the global export competitiveness of the Indian leather industry. The study argued that production capacity alone cannot sustain long-term export growth. It identified quality improvement, technological modernisation, product diversification and value-added manufacturing as the main drivers of competitiveness. The authors further observed that innovation-oriented strategies are essential for maintaining India's position in developed markets, particularly the European Union.

Shahriar et al. (2021) analysed the comparative competitiveness of major Asian leather-exporting countries. The findings showed that India faces strong competition from China, Vietnam and Bangladesh. The study recommended shifting from a cost-based production model towards higher product quality, design development and international brand building to strengthen export performance.

Hira et al. (2022) investigated sustainable production practices and environmental compliance in the leather industry. The study concluded that cleaner tanning technologies, efficient wastewater treatment, energy conservation and ESG-oriented management improve market access and competitiveness in European markets. Environmental sustainability was identified as a strategic business advantage rather than merely a regulatory obligation.

Reshma et al. (2023) assessed the impact of technical standards, product certification and non-tariff barriers on Indian leather exports. The study reported that compliance with international quality standards enhances export opportunities despite increasing operational costs. It also highlighted the importance of stronger technical cooperation between government agencies and industry for improving standardisation and regulatory compliance.

According to the **APLF Industry Report (2024)**, the European Union continues to be the largest destination for Indian leather and leather products. Germany, Italy, France and Spain remain the principal importing countries. The report also noted rising demand for premium, design-oriented and environmentally sustainable leather products, creating new opportunities for Indian exporters specialising in value-added products.

The **Department-related Parliamentary Standing Committee on Commerce (2025)** reviewed the current status and future prospects of the Indian leather industry. The report identified

technological modernisation, research and development, skill enhancement and access to quality raw materials as critical factors for export expansion. It further recommended increased investment in innovation and quality improvement to strengthen global competitiveness.

The **Council for Leather Exports (CLE, 2026)** evaluated India–European Union trade relations and the likely impact of a future Free Trade Agreement (FTA). The report suggested that tariff concessions, combined with stronger environmental compliance, quality assurance and design innovation, could significantly improve India's export share in the European market. Digital marketing and global brand development were also recognised as key components of future export strategies.

Research Gap :

The reviewed literature from **2020–2026** primarily focuses on export competitiveness, sustainability, environmental compliance and India–EU trade relations. However, limited research integrates export performance, market opportunities, digital marketing, value-added manufacturing, global supply chain transformation and future export strategies within a single analytical framework. The present study addresses this gap by providing a comprehensive assessment of export performance and emerging market opportunities for the Indian leather industry in the European Union.

3. Objectives, Research Questions and Research Methodology

3.1 Objectives of the Study :

The study aims to analyse the international marketing prospects of the Indian leather industry with special reference to the European Union. The specific objectives are -

- To analyse the export performance of the Indian leather industry in the European Union.
- To examine the current market position of Indian leather products in major EU importing countries.
- To evaluate emerging opportunities such as value-added products, green manufacturing, digital marketing and global supply chain transformation.
- To assess the potential impact of India–EU trade cooperation and the proposed Free Trade Agreement on future export prospects.
- To recommend policy and business strategies for strengthening the long-term global competitiveness of the Indian leather industry.

3.2 Research Questions :

The study addresses the following research questions -

- Which economic and trade-related factors influence India's leather exports to the European Union?
- What emerging market opportunities are available for Indian leather products in EU countries?

- Can sustainability, ESG practices and environmental compliance improve international competitiveness?
- What role do value-added products, design innovation and digital marketing play in future export growth?
- Which policy measures can strengthen India–EU trade cooperation and improve export performance?

3.3 Research Methodology :

This study adopts a **qualitative, descriptive and analytical** research approach. It relies entirely on secondary data to evaluate the export performance and market opportunities of the Indian leather industry in the European Union.

Information was collected from published research articles, international trade reports, government publications, industry reports and official export statistics. A comparative review of these sources was conducted, followed by a critical synthesis to develop a balanced understanding of the industry's current position and future prospects.

The analysis extends beyond descriptive reporting by examining how export performance, trade policies, environmental standards, technological advancement, sustainability and market dynamics collectively influence the international competitiveness of the Indian leather industry.

3.4 Sources of Data :

The study is based exclusively on secondary sources, including -

- Research articles and international journals
- Ministry of Commerce and Industry, Government of India
- Council for Leather Exports (CLE)
- India Brand Equity Foundation (IBEF)
- International Trade Centre (ITC)
- Directorate General of Foreign Trade (DGFT)
- European Union trade and policy documents
- Industry reports and market analyses
- Published theses and academic literature.

These sources were comparatively analysed to examine export trends, market structure, business opportunities and the competitive position of the Indian leather industry.

3.5 Limitations of the Study :

The study has the following limitations -

- It is based entirely on secondary data and does not include primary surveys or interviews.

- The analysis focuses mainly on the European Union; other international markets are outside its scope.
- Differences in reporting periods and data presentation across sources may affect direct comparisons; therefore, only the most recent and reliable information has been considered.
- The study does not employ econometric modelling or advanced statistical techniques, as its primary objective is analytical interpretation rather than quantitative forecasting.
- Future export prospects may change because of evolving global economic conditions, trade agreements and regulatory developments. Therefore, the findings should be interpreted as informed projections rather than definitive outcomes.

4. Results and Data Analysis :

4.1 Export Performance of the Indian Leather Industry :

The Indian leather industry remains one of the country's major export-oriented manufacturing sectors and plays an important role in foreign exchange earnings and employment generation. India has established itself as a leading producer and exporter of leather and leather products, particularly finished leather, leather footwear, leather garments, saddlery, harness and other value-added leather goods. The industry's export structure has gradually shifted from raw and semi-processed leather towards finished products with higher market value.

Although export performance experienced temporary fluctuations because of the COVID-19 pandemic, supply chain disruptions, rising raw material costs and changing consumer demand, the sector maintained its presence in international markets. Recent evidence suggests that value-added leather products are expanding faster than traditional finished leather, indicating a structural shift in global demand toward premium products.

Table 1. Major Export Product Categories of the Indian Leather Industry

Product Category	Global Demand	Market Potential in the European Union
Leather Footwear	Very High	Very High
Leather Goods	High	High
Finished Leather	Moderate	Moderate
Leather Garments	Moderate	High
Fashion & Premium Accessories	High	Very High

Analysis :

The findings indicate a growing preference for value-added leather products within the European

Union. Premium footwear, handbags, belts, wallets and fashion accessories continue to generate strong market demand. Consequently, Indian exporters should prioritise finished and design-oriented products rather than relying primarily on raw or semi-processed leather exports. Such a transition is expected to improve export earnings and strengthen long-term competitiveness.

4.2 European Union Market Analysis :

The European Union continues to be the most important export destination for Indian leather products. Germany, Italy, France, Spain, the Netherlands and Belgium represent the principal markets because of their strong purchasing power, organised retail systems and sustained demand for premium-quality leather goods. Consumer preferences in these countries increasingly favour quality, sustainability, innovative design and transparent production practices.

Table 2. Major Potential Importing Countries in the European Union

Country	Major Market Demand
Germany	Leather Footwear and Leather Goods
Italy	Premium Leather and Finished Leather
France	Fashion Leather Products
Spain	Footwear and Leather Garments
Netherlands	Multi-brand Distribution
Belgium	Premium Imports and Re-export
Germany	Leather Footwear and Leather Goods
Italy	Premium Leather and Finished Leather
France	Fashion Leather Products
Spain	Footwear and Leather Garments
Netherlands	Multi-brand Distribution
Belgium	Premium Imports and Re-export

Analysis :

Consumer preferences differ across EU member states. Therefore, exporters should adopt country-specific marketing strategies instead of applying a uniform approach. Product design, pricing, branding and distribution should be tailored to the requirements of individual markets to maximise export opportunities.

4.3 Market Opportunity Analysis :

The literature identifies several emerging opportunities for the Indian leather industry in the European market. Demand for environmentally sustainable products has increased substantially, while

premium fashion products continue to dominate higher-value market segments. The transition towards green manufacturing and responsible sourcing has created new possibilities for exporters capable of meeting international sustainability standards.

Table 3. Emerging Market Opportunities for the Indian Leather Industry

Opportunity	Expected Impact
India–EU FTA	Higher Export Growth
Green Leather	Access to Premium Markets
Digital Marketing	Direct Global Customer Reach
Product Diversification	Higher Profitability
Premium Branding	Better Price Realisation
Circular Economy	Long-term Competitiveness

Indian manufacturers can strengthen their market position by investing in cleaner production technologies, digital supply chain management, traceability systems, international certification and global branding. These measures are expected to improve market access and increase competitiveness within high-value European markets.

4.4 Major Factors Influencing Export Growth :

The review of published studies identifies several factors that positively influence the export performance of the Indian leather industry -

- Development of value-added leather products.
- Technological modernisation of manufacturing facilities.
- Product design and innovation.
- International quality certification.
- Green manufacturing practices.
- Adoption of ESG standards.
- Stronger India–EU trade cooperation.
- Digital marketing and e-commerce.
- Transparent and efficient global supply chains.

Collectively, these factors enhance productivity, improve market access and strengthen international competitiveness.

4.5 Competitive Position Analysis :

India competes with major leather-exporting countries such as China, Vietnam, Bangladesh

and Indonesia. These countries have strengthened their market position through advanced manufacturing technologies, cost efficiency and aggressive export strategies. Nevertheless, India continues to possess important competitive advantages, including a skilled workforce, diversified product portfolio and expertise in producing premium-quality leather goods.

The analysis indicates that future competitiveness will depend less on production cost and more on innovation, product quality, sustainability, design capability and international brand recognition. Therefore, Indian manufacturers should focus on value creation rather than volume expansion alone.

4.6 Major Findings :

The analysis leads to the following major findings -

- The European Union remains the most stable and valuable export destination for Indian leather products.
- Value-added leather goods are expected to drive future export growth.
- Sustainable manufacturing provides greater access to premium European markets.
- Digital marketing, e-commerce and global branding have become essential components of export strategy.
- Stronger India–EU trade cooperation and a future Free Trade Agreement could create significant export opportunities.
- Technological modernisation, research and development and design innovation will play a decisive role in strengthening India's long-term global competitiveness.

5. Market Opportunities for the Indian Leather Industry in European Union Countries :

The Indian leather industry is entering a new phase of transformation driven by innovation, sustainability, product differentiation and global branding. The European Union remains the world's largest importer of leather products and footwear, offering significant opportunities for Indian exporters. Although India's share in the EU market is still modest, growing demand for premium and sustainable products provides substantial scope for expansion.

5.1 India–EU Free Trade Agreement (FTA): A Strategic Opportunity :

Progress in India–EU trade negotiations has created new expectations for the leather sector. Lower import tariffs on leather and footwear could improve the price competitiveness of Indian products in European markets. In addition, greater regulatory cooperation and simplified customs procedures would strengthen export growth, encourage investment and support long-term commercial

partnerships.

5.2 Rising Demand for Value-Added Products :

Consumer preferences in Europe have shifted towards premium footwear, handbags, fashion accessories, travel goods and luxury leather products. India possesses strong craftsmanship, manufacturing capability and design potential in these segments. Greater investment in product development, design innovation and brand building can significantly increase India's presence in high-value EU markets.

5.3 Green Manufacturing and Sustainability :

Environmental sustainability has become a major purchasing criterion across Europe. Products manufactured through cleaner technologies, efficient wastewater treatment, energy conservation and environmentally responsible processes enjoy stronger market acceptance. Adoption of green tanning technologies, CETPs and ESG-based management can improve both regulatory compliance and premium market access.

5.4 Digital Marketing and E-Commerce :

Digital transformation is reshaping international trade. B2B platforms, e-commerce, virtual trade fairs and digital sourcing networks provide Indian exporters with direct access to overseas buyers. Digital catalogues, online branding and supply chain digitisation can reduce marketing costs while expanding international visibility, particularly for MSMEs.

5.5 Global Supply Chain Reconfiguration :

Following the COVID-19 pandemic, global buyers have diversified their sourcing strategies. This shift creates opportunities for India to strengthen its position as a reliable manufacturing and export hub. Consistent product quality, timely delivery and transparent supply chains can help Indian firms establish long-term partnerships with European importers.

5.6 Design Innovation and Premium Branding :

Competition in Europe increasingly depends on innovation rather than price alone. Consumers value design, durability, functionality and brand reputation. Indian manufacturers should move beyond contract manufacturing by developing internationally recognised brands and investing in design collaboration, fashion research and product innovation.

5.7 Policy and Institutional Support :

Government initiatives, the Council for Leather Exports (CLE) and export promotion agencies can accelerate industrial upgrading through technology adoption, quality certification, skill development, research support and international marketing assistance. Policy measures supporting MSMEs, innovation and export promotion will further strengthen India's global competitiveness.



Figure: Strategic Fingerprint Framework for Enhancing Export Competitiveness of Indian Leather Industry in the European Union

Figure 1 . Strategic Framework for Enhancing the Export Competitiveness of the Indian Leather Industry in the European Union

Integrated Analysis :

The evidence indicates that the European Union represents more than a major export destination. It also serves as a catalyst for technological upgrading, sustainable production, design innovation and international brand development. Future competitiveness will depend on value-added manufacturing, environmental responsibility, digital capability and customer-oriented marketing rather than low-cost production alone. By aligning business strategies with these emerging trends, the Indian leather industry can substantially expand its presence in high-value European markets.

6. Discussion :

The findings demonstrate that the Indian leather industry is undergoing a structural transformation. Rapid changes in global trade, evolving consumer preferences, stricter environmental regulations and digital business models have reshaped international marketing practices. Within this environment, the European Union functions not only as India's largest export destination but also as an important driver of technological advancement and industrial modernisation.

The literature indicates that India possesses several competitive strengths, including skilled labour, abundant raw materials and diversified manufacturing capabilities. Nevertheless, export expansion remains below its full potential because a significant share of production continues to rely on traditional manufacturing systems, contract production and limited international brand recognition. Future competitiveness will require greater emphasis on design, product quality, certification, branding

and customer value creation.

European consumers increasingly favour sustainable, ethically produced and environmentally responsible leather products. This trend creates important opportunities for Indian exporters. Investment in green manufacturing, wastewater treatment, traceability systems, resource efficiency and ESG-based production can improve market acceptance while strengthening long-term competitiveness.

The analysis also suggests that cost-based competition is becoming less effective. Countries such as China, Vietnam and Bangladesh have achieved significant advantages through large-scale manufacturing and production efficiency. India's competitive advantage is therefore more likely to emerge from premium leather products, innovative design, luxury footwear, fashion accessories and specialised value-added manufacturing rather than low-cost production.

Digital transformation represents another important opportunity. E-commerce platforms, B2B marketplaces, virtual trade exhibitions and data-driven marketing enable exporters to connect directly with international buyers. These technologies improve market visibility, reduce transaction costs and create new opportunities for small and medium-sized enterprises.

From a policy perspective, India–EU cooperation should extend beyond tariff negotiations. Greater collaboration in technology transfer, research and development, quality infrastructure, skill development, green manufacturing and supply chain modernisation will strengthen the industry's global position. Coordinated efforts by government agencies, industry associations, research institutions and exporters are essential for achieving sustainable export growth.

Overall, the European Union should be viewed not only as a destination market but also as a strategic partner for industrial upgrading. Long-term success will depend on quality improvement, innovation, sustainability, digital capability and internationally recognised branding. By adopting these strategies, the Indian leather industry can strengthen its competitive position and achieve sustained growth in the global marketplace.

7. Conclusion :

The present study confirms that the Indian leather industry occupies an important position in global trade, while the European Union remains one of its most promising export destinations. The review of published literature, industry reports and trade evidence indicates that India possesses several competitive advantages, including a skilled workforce, diversified product portfolio, established manufacturing capability and extensive export experience. However, sustaining future export growth will require continuous adaptation to changing international market conditions rather than relying solely on traditional production strengths.

The findings further reveal that competitiveness in the European Union is no longer determined by low production costs alone. Product quality, innovation, traceability, environmental responsibility, social compliance and international branding have become critical determinants of export success. Growing demand for premium, sustainable and design-oriented leather products provides Indian manufacturers with an opportunity to move towards higher value-added production and stronger market positioning.

The study also highlights that closer India–EU trade cooperation, a prospective Free Trade Agreement, digital commerce, sustainable manufacturing and the restructuring of global supply chains could create significant opportunities for export expansion. To capitalise on these developments, the industry must strengthen technological capability, research and development, quality management and environmentally responsible production systems.

Overall, the future performance of the Indian leather industry will depend not only on export volume but also on product quality, innovation, sustainability, technological advancement and effective international marketing. Coordinated efforts by government agencies, industry associations, research institutions and exporters will be essential for enhancing India's long-term competitiveness in the European Union and the global leather market.

7.2 Policy Recommendations :

Based on the findings of the study, the following policy recommendations are proposed -

- **Promote Value-Added Products:** Encourage greater production of premium footwear, handbags, leather goods and fashion accessories instead of focusing primarily on finished leather exports.
- **Strengthen India–EU Trade Cooperation:** Accelerate negotiations on the proposed India–EU Free Trade Agreement to reduce trade barriers and improve market access.
- **Expand Sustainable Manufacturing:** Promote cleaner tanning technologies, wastewater recycling, CETPs, energy-efficient production systems and ESG-based manufacturing practices.
- **Enhance Quality Certification:** Provide financial and technical support to help firms comply with international standards such as REACH, ISO and Leather Working Group (LWG) certification.
- **Support Design and Innovation:** Strengthen collaboration among design institutes, fashion institutions and industry to develop products aligned with changing global consumer preferences.
- **Expand Digital Marketing:** Encourage exporters to utilise e-commerce platforms, B2B

marketplaces, virtual trade fairs and digital branding to improve global market reach.

- **Modernise MSMEs:** Facilitate access to advanced machinery, testing laboratories, design support and export advisory services for small and medium enterprises.
- **Develop Skilled Human Resources:** Organise continuous training programmes in leather processing, product design, quality management, export marketing and digital business practices.
- **Promote Research and Development:** Encourage collaborative research among universities, research institutions and industry for cleaner technologies, sustainable manufacturing and innovative leather products.
- **Strengthen Global Branding:** Develop long-term branding strategies to establish **"Made in India"** leather products as recognised premium brands in international markets.

7.3 Scope for Future Research :

Future studies may focus on the following areas :

- Economic impact of the India–EU Free Trade Agreement on the leather industry.
- Comparative competitiveness of the Indian and European leather industries.
- Impact of digital marketing and e-commerce on leather exports.
- Economic benefits of Circular Economy and Green Leather initiatives.
- Integration of Indian MSMEs into global value chains.
- Influence of ESG standards on export performance.
- Application of Artificial Intelligence and Industry 4.0 technologies in the Indian leather sector.

References :

- APLF. (2024). *APLF Leather Market Report 2024: Global Leather Trade and European Market Outlook.*
- Council for Leather Exports (CLE). (2026). *Annual Report 2025–26.* Chennai: CLE.
- Directorate General of Foreign Trade (DGFT). (2026). *Export–Import Statistics 2025–26.* Government of India.
- European Commission. (2024). *Market Access and Trade Policy for Leather and Leather Products.*
- Hira, A.,(2022). *Sustainable Leather Processing and Environmental Compliance in Developing Countries.*
- India Brand Equity Foundation (IBEF). (2026). *Leather Industry in India.* New Delhi: IBEF.
- International Trade Centre (ITC). (2026). *Trade Map: International Trade Statistics for*

Leather and Leather Products.

- Ministry of Commerce and Industry, Government of India. (2026). *Export–Import Data Bank.*
- Mukhopadhyay, K., (2020). *Global Competitiveness and Export Performance of the Indian Leather Industry.*
- Parliamentary Standing Committee on Commerce. (2025). *Report on the Development and Export Competitiveness of the Indian Leather Industry.* Parliament of India.
- Reshma, R., (2023). *Non-Tariff Barriers and Export Challenges in International Leather Trade.*
- Shahriar, S., (2021). *Comparative Competitiveness of Asian Leather Exporting Countries.*
- United Nations Comtrade Database. (2026). *International Trade Statistics.*
- World Trade Organization (WTO). (2025). *World Trade Statistical Review 2025.*
- World Bank. (2024). *Global Economic Prospects.*

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2026 Page No. : 121-123

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.22679720

शंकर एवं रामानुज के अनुसार 'अवक्तव्य' की अवधारणा

दिलीप कुमार, शोधार्थी
डॉ. रीता शर्मा, वरिष्ठ सहायक प्राध्यापिका,
दर्शनशास्त्र विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार)

भारतीय दर्शन में 'अवक्तव्य' के सम्प्रत्यय की अवधारणा अत्यन्त ही व्यापक जान पड़ती है। लगभग सभी सम्प्रदायों ने इस पर अपने विचार रखे हैं। भारतीय चिन्तन परम्परा में वेदान्त दर्शन का विशिष्ट स्थान है। वेदों के अन्तिम भाग को वेदान्त कहते हैं। इसे ही उपनिषद भी कहा जाता है। वेदान्तसार के रचयिता श्री सदानन्द लिखते हैं –

"वेदान्तो नाम उपनिषत्प्रमाणं तदुकारीणि शरीरकसूत्रादीनि।"[1]

शंकराचार्य अद्वैतवाद के प्रतिपादक है, वे कहते हैं – जो अवक्तव्य है, वह 'अखण्डचिदानन्दस्वरूप परम तत्व आत्मा या ब्रह्म हैं। 'आत्मा' या 'ब्रह्म' शरीर, इन्द्रिय, मन, अहंकार, बुद्धि से भिन्न है। वह शुद्ध चैतन्य है और समस्त ज्ञान तथा अनुभव का अधिष्ठान है, वह स्वतः सिद्ध तथा स्वप्रकाश है। उसका निराकरण असम्भव है क्योंकि जो निराकर्त्ता है वही उसका स्वरूप है।'[2] वे सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी और सबके स्वामी हैं।[3] यह सब कुछ ब्रह्म है – सर्वं खलु इदं ब्रह्म। सगुण ब्रह्म का स्वरूपलक्षण है – सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म[4] श्रुतियाँ ब्रह्म को नित्य सत्, शुद्ध चैतन्य और अखण्ड आनन्द बताती है। ब्रह्म त्रिकालाबाध सत् है, वह कूटस्थ नित्य और अपरिणामी है। सत् चित और आनन्द को शंकर तीन नहीं कहते हैं। बुद्धि इनको तीन अलग–अलग गुण मानते हैं; किन्तु तात्विक रूप में ये एक ही है। ये ब्रह्म का स्वरूप है। यदि उसका वर्णन करना हो तो निवेधामुख से ही सम्भव है। ब्रह्म के विषय में आदेश 'नेति नेति है'[5] यहाँ नेति नेति' से ब्रह्म के गुणों का, विशेषणों का, निर्वचनों का निषेध होता है, स्वयं ब्रह्म का नहीं।[6] शंकराचार्य के आत्मा या ब्रह्म का स्वरूप 'अवक्तव्य' है। परन्तु इनके द्वारा कथित महावाक्य – 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः'[7] अर्थात् ब्रह्म ही सत्य है, जगत् मिथ्या है, और जीव ब्रह्म ही है, उससे भिन्न नहीं। इसे जगत् के उस स्वरूप को समझना आसान हो जाता है जब वह 'वक्तव्य' रूप में हमें प्रतीत होती है। माया, अविद्या, अज्ञान, अध्यास, अध्यारोप, विवर्त, भ्रान्ति, भ्रम सद्सदनिर्वचनीयता आदि शब्दों का प्रयोग प्रायः पर्यायों के रूप में किया जाता है।[8]

इन शब्दों को ठीक वैसी ही बताते हैं जैसे अंधेरे में रज्जु (रस्सी), भ्रम के कारण सर्प प्रतीत होती है और रज्जु का ज्ञान होने पर सर्प का बाध हो जाना। शंकर के अनुसार माया या अविद्या, ब्रह्म की अभिन्न शक्ति है। यह ब्रह्म पर आश्रित है, इसे ब्रह्म से 'अनन्या' कहा जाता है। वस्तुतः माया और ब्रह्म में कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता, न भेद, न अभेद और न भेदाभेद, इस प्रातीतिक सम्बन्ध को 'तादात्म्य' नाम दिया गया है।[9] अतः

अद्वैतवाद की विचारधारा इस बात को इंगित करती है कि ब्रह्म का स्वरूप अवक्तव्य को स्थापित करता है। वह स्वयंप्रकाशमान है, दो नहीं है और वही ब्रह्म है दूसरा कोई नहीं।

रामानुजाचार्य विशिष्टाद्वैत के प्रस्तावक है। वैष्णव सम्प्रदाय के समर्थक तथा आलवार संतों की परम्परा के सुप्रसिद्ध आचार्य के रूप में जाने जाते हैं। इनकी प्रमुख रचनाओं में श्रीभाष्य, गीताभाष्य, वेदान्तसार, वेदान्तदीप आदि है। इस शोध–प्रबन्ध की प्रवाह तात्विक सिद्धान्तों की ओर अग्रसारित है। अतः यह कहना अतिशय नहीं होगा कि शंकराचार्य के अद्वैतवाद से भिन्न अपनी विचार को रखते हैं। तीन बातें यहाँ स्पष्ट जान पड़त है और ये है – प्रथम, समस्त ज्ञान सविकल्पक होता है, अतः कोई वस्तु निगुर्ण, निर्विशेष और निर्धर्मक नहीं हो सकती क्योंकि ऐसी किसी वस्तुत का ज्ञान नहीं हो सकता। रामानुज कहते हैं – शुद्ध निर्विकल्पक ज्ञान कोरो कल्पना है। 'द्वैत–रहित अद्वैत और अद्वैत–शून्य द्वैत दोनों ही कोरी कल्पना है क्योंकि भेद के बिना अभेद और अभेद के भेद सिद्ध नहीं होता। अतः दोनों सदा साथ रहते हैं और इसमें पार्थक्य सम्भव नहीं है।'[10] तत्व सदा द्वैतविशिष्ट–अद्वैत होता है। इसी का संक्षिप्त रूप विशिष्टाद्वैत है। द्वैत विशेषण है; अद्वैत विशेष्य है : और विशेषणयुक्त विशेष्य को विशिष्ट कहते हैं।[11] रामानुज स्पष्ट करते हुए – द्वैत और अद्वैत दोनों को सत्य और अपृथक् मानते हैं तथापि वे दोनों को समान स्तर के नहीं मानते हैं। अद्वैत मुख्य है और द्वैत गौण है। अद्वैत आत्मरूप है; द्रव्य है; अङ्गी है। द्वैत शरीरः है, गुण है, अङ्ग है। अतः द्वैव अद्वैत पर आश्रित रहता है।[12]

रामानुजाचार्य तत्त्व–त्रय को स्वीकार करते हैं। चित, अचित और ईश्वर। चित को चेतन कहते हैं जो भोक्ता जीव है। अचित जड़ भोग्य जगत् है। ईश्वर दोनों का अन्तर्यामी है। ये दोनों (चित–अचित), दोनों नित्य और परस्पर–स्वतंन्त्र द्रव्य है। किन्तु दोनों ईश्वर पर आश्रित है। चेतन और अचेतन विश्व परमपुरूष ईश्वर द्वारा नियाम्य (नियमबद्ध), धार्य (धारण करने योग्य) तथा शेष होने के कारण उनका शरीर है।[13] ''ईश्वर चिदचिदविशिष्ट है।''[14] यहाँ रामानुज ईश्वर में सजातीय और विजातीय भेद नहीं मानते बल्कि स्वगत भेद स्वीकार करते हैं क्योंकि चित् और अचित् दोनों ईश्वर से निर्मित है। अतः यह ईश्वर से पृथक् और बाह्य नहीं है। यहाँ ईश्वर को अवक्तव्य रूप में प्रस्तुत करते हैं। चित् और अचित् वक्तव्य रूप है जिसका साक्षात् अनुभव होता है।

वृहदारण्यक उपनिषद् में ब्रह्म को अन्तर्यामी अमृत आत्मा कहा गया है जो जड़ प्रकृति और चेतन जीवों में अन्तर्यामी रूप से विराजमान रहकर उनका नियमन करता है, जड़ प्रकृति और चेतन जीव इस आत्मा के शरीर है।''[15] जिस प्रकार रथचक्र में डंडे बँधे रहते हैं, उसी प्रकार जीव और जगत् परमात्मा में आबद्ध है। परमात्मा अग्निवत् है, जीव–जगत् स्फुलिङ्गवत् है। जीव और जगत् सत्य है। परमात्मा उनका भी सतय है – वह सत्यों का सत्य है।[16] यहाँ परमात्मा के स्वरूप को अवक्तव्य मानते हैं, चेतन जीव और जगत् की अनुभूति हमें प्राप्त होती है, वह वक्तव्य है। अतः दोनों ब्रह्म के स्वरूप को अनिर्वचनीय अथवा अवक्तव्य कहा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. वेदान्तसार, सदानन्द योगी, पृ0 सं0–4
2. य एव हि निराकर्त्ता तदेव तस्य स्वरूपम्। शा0 भा0 2, 3, 7
3. शर्मा चन्द्रधर, भा0 द0 आलोचना और अनुशीलन, प्रकाशन मो0 ला0 ब0, पृ0 सं0–251
4. तैत्तिरीय उपनिषद्, पृ0–2–1

5. अर्थात् आदेशों नेतिनेति।
6. शर्मा चन्द्रधर, भा0 द0 आलोचना और अनुशीलन, प्रकाशन–मो0 ला0 ब0 पृ0 सं0–251
7. शंकराचार्य, ब्रह्मज्ञालीमाला, श्लोक–20
8. शर्मा चन्द्रधर––––– , पृ0 सं0–239
9. – वही –
10. शर्मा चन्द्रधर भारतीय दर्शन आलोचना एवं अनुशीलन प्रका0 मो0 ला0 ब0, पृ0 सं0–300
11. – वही –
12. शर्मा चन्द्रधर, भा0 द0 : आलोचना और अनुशील प्रकाशन, मो0 ला0 ब0, पृ0 सं0–300–301
13. सर्वं परमपुरूषेण सर्वोत्मना स्वार्थे निधम्य धार्यं तच्छेषतैकस्वरूपम् इंति सर्व चेतनाचेतन तस्य शरीरम। श्रीभाष्य 2–1–1
14. चिदचिद्विशिष्ट ईश्वरः।
15. यस्य सर्वाणि भूतानि शरीरं यः सर्वाणि भूतानि अन्तरो यमयति एष ते आत्मा–अन्तर्यामी, अमृतः। बृहदारण्यक उपनिषद्, 3, 7, 15
16. तस्योपनिषद् सत्यस्य सत्यम्। बृहदारण्यक उपनिषद्–2, 1, 20

मो.नं.–7203438566

Email-drritasharma12345@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2026 Page No. : 124-128

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.22679720

प्राचीन भारत में श्रेणी संगठन : एक ऐतिहासिक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन

नवेद अली
स्वतंत्र शोधकर्ता, दिल्ली।

सारांश :

प्राचीन भारत के आर्थिक इतिहास में श्रेणी संगठन का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान था। ये संगठन केवल व्यापारियों एवं शिल्पकारों के व्यावसायिक संघ नहीं थे, बल्कि तत्कालीन समाज की आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक तथा न्यायिक संरचना के प्रमुख अंग भी थे। श्रेणियों ने उत्पादन, व्यापार, मूल्य–निर्धारण, गुणवत्ता नियंत्रण, ऋण व्यवस्था, पूँजी निवेश तथा श्रम संगठन जैसी आर्थिक गतिविधियों का प्रभावी संचालन किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने सार्वजनिक निर्माण, धर्मार्थ कार्यों, धार्मिक संस्थाओं को दान तथा जनकल्याण संबंधी गतिविधियों में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। प्रस्तुत शोध–पत्र में श्रेणी संगठन के उद्भव, विकास, संरचना एवं कार्यप्रणाली का ऐतिहासिक विश्लेषण किया गया है। साथ ही धर्मशास्त्रों, बौद्ध एवं जैन साहित्य, अर्थशास्त्र, स्मृति ग्रंथों, अभिलेखों तथा अन्य साहित्यिक एवं पुरातात्त्विक स्रोतों के आधार पर उनकी आर्थिक एवं सामाजिक भूमिका का अध्ययन किया गया है। शोध से स्पष्ट होता है कि श्रेणी संगठन प्राचीन भारतीय अर्थव्यवस्था की आधारभूत संस्थाएँ थीं, जिन्होंने उत्पादन एवं व्यापार को संगठित करने, आर्थिक स्थिरता बनाए रखने, व्यावसायिक नैतिकता को सुदृढ़ करने तथा सामुदायिक सहयोग को बढ़ावा देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस प्रकार श्रेणियाँ केवल आर्थिक संस्थाएँ नहीं थीं, बल्कि प्राचीन भारत के संस्थागत विकास, व्यापारिक प्रगति तथा सामाजिक–आर्थिक संगठन की प्रभावी आधारशिला थीं।

मुख्य शब्द : श्रेणी संगठन, प्राचीन भारत, आर्थिक इतिहास, व्यापार एवं शिल्प, सामाजिक–आर्थिक संरचना।

प्रस्तावना –

प्राचीन भारतीय इतिहास में आर्थिक गतिविधियों के विस्तार, शहरीकरण तथा व्यापारिक नेटवर्क के विकास के साथ उत्पादन और विनिमय की प्रक्रियाओं में उल्लेखनीय परिवर्तन दिखाई देता है। इस परिवर्तन ने व्यापारियों, शिल्पकारों एवं विभिन्न व्यवसायों से जुड़े समुदायों को संगठित रूप प्रदान किया, जिसके परिणामस्वरूप श्रेणी संगठन का विकास हुआ। प्राचीन भारतीय संस्कृति में सामुदायिक संगठन की परंपरा अत्यंत विकसित थी और आर्थिक क्षेत्र में इसका सबसे सशक्त रूप श्रेणियों, निगमों, पूगों तथा गणों के रूप में दिखाई देता है। ये संस्थाएँ केवल व्यापारिक एवं शिल्पकार संघ नहीं थीं, बल्कि उन्होंने उत्पादन, व्यापार, गुणवत्ता नियंत्रण,

मूल्य–निर्धारण, ऋण व्यवस्था तथा व्यावसायिक अनुशासन को व्यवस्थित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

इसके अतिरिक्त श्रेणी संगठनों ने धार्मिक संरक्षण, सार्वजनिक निर्माण, दान तथा अन्य लोक कल्याणकारी कार्यों के माध्यम से सामाजिक जीवन में भी सक्रिय योगदान दिया। धर्मशास्त्रों, बौद्ध एवं जैन साहित्य, अर्थशास्त्र, स्मृति ग्रंथों तथा अभिलेखीय साक्ष्यों से स्पष्ट होता है कि श्रेणियाँ प्राचीन भारत की आर्थिक एवं सामाजिक संरचना की महत्वपूर्ण संस्थाएँ थीं। प्रस्तुत शोध–पत्र का उद्देश्य श्रेणी संगठन के उद्भव, विकास, संरचना एवं कार्यप्रणाली का विश्लेषण करते हुए प्राचीन भारतीय अर्थव्यवस्था और समाज में उनकी भूमिका का ऐतिहासिक अध्ययन करना है।

श्रेणी की अवधारणा –

प्राचीन साहित्य में एक ही प्रकार के शिल्प अथवा व्यवसाय का अनुसरण करने वाले व्यक्तियों के संगठित समूह को श्रेणी कहा गया है। गौतम धर्म सूत्र, अर्थशास्त्र, महाभारत तथा अन्य स्मृति ग्रंथों में व्यापारियों एवं शिल्पियों के संघों के लिए इस शब्द का प्रयोग मिलता है। वीरमित्रोदय के अनुसार एक ही शिल्प द्वारा जीविका चलाने वाले व्यक्तियों का संगठन श्रेणी कहलाता था। मेधातिथि ने ब्राह्मण, वणिक तथा शिल्पकारों के संघों को भी श्रेणी की संज्ञा दी है। इससे स्पष्ट है कि श्रेणी शब्द सभी प्रकार के व्यावसायिक एवं व्यापारिक संगठनों की सामान्य संज्ञा था।

श्रेणी संगठन का उद्भव –

किरण कुमार थपलियाल ने अपनी पुस्तक प्राचीन भारत में श्रेणियाँ : प्राचीनता एवं ईस्वी सन् 300 तक श्रेणियों के विकास के विभिन्न चरण में इस प्रश्न पर विद्वानों के मतभेदों का उल्लेख किया है कि क्या प्रारंभिक वैदिक काल में श्रेणी प्रणाली अस्तित्व में थी। कुछ विद्वानों के अनुसार वैदिक साहित्य में प्रयुक्त श्रेणी, पूग, गण, व्रात आदि शब्द आर्थिक संगठनों के संकेतक हैं। इसके विपरीत अन्य विद्वानों का मत है कि प्रारंभिक वैदिक समाज मुख्यतः ग्रामीण और अर्ध–घुमंतू था, जहाँ अधिशेष उत्पादन की कमी के कारण इस प्रकार के संगठित व्यावसायिक संघों का विकास संभव नहीं था। रोमिला थापर ने 'प्राचीन भारतीय सामाजिक इतिहास : कुछ व्याख्याएँ' में श्रेणी संगठन के उदय के लिए तीन प्रमुख तत्वों को उत्तरदायी माना है– व्यवसायों का स्थानीयकरण, व्यवसायों का वंशानुगत स्वरूप, और संघ–नेता की व्यापक स्वीकृति। थापर के अनुसार प्रत्येक श्रेणी का अपना पेशेवर आचार–संहिता, कर्तव्य, दायित्व तथा धार्मिक अनुष्ठान होते थे, जो उसे एक संगठित संस्था का रूप प्रदान करते थे।

श्रेणी संगठनों की संरचना –

किरण कुमार थपलियाल के अनुसार श्रेणियों की संरचना मुख्यतः तीन भागों में विभाजित थी– महासभा, श्रेणी प्रमुख (जेठक/प्रमुख) और कार्यकारी अधिकारी। श्रेणी के सभी सदस्य महासभा का निर्माण करते थे। जातक कथाओं में विभिन्न संघों के 100, 500 और 1000 सदस्यों तक का उल्लेख मिलता है, जिससे इनके व्यापक स्वरूप का पता चलता है। बौद्ध साहित्य में श्रेणी प्रमुख को जेठक या पामुक्ख कहा गया है। उदाहरणार्थ 'वधाकी जेठक' बढ़इयों का प्रमुख, कर्मकार जेठक 'धातु शिल्पियों का प्रमुख, और सार्थवाह जेठक' व्यापारिक कारवाँ का प्रमुख। व्यापारी संघों का नेतृत्व प्रायः सेठि करते थे, जो व्यापारी होने के साथ–साथ साहूकार और बैंकर भी होते थे। श्रेणी प्रमुख को दोषी सदस्य को दंडित अथवा बहिष्कृत करने का अधिकार प्राप्त था।

याज्ञवल्क्य स्मृति में श्रेणी के कार्यकारी अधिकारियों का उल्लेख मिलता है। उनका कार्य संघ के दैनिक प्रशासन, लेखा–जोखा और अनुशासन की देखरेख करना था। उनसे लोभ से मुक्त तथा विद्वान होने की अपेक्षा की जाती थी।

धार्मिक ग्रंथों में श्रेणियों का उल्लेख –

जातक कथाओं में पारंपरिक रूप से अठारह शिल्पों का उल्लेख मिलता है, जिनमें बढ़ई (वधकी), कर्मकार, चर्मकार तथा चित्रकार जैसे प्रमुख शिल्पों का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। ये शिल्प तत्कालीन समाज में विभिन्न व्यवसायों की उन्नत स्थिति तथा श्रम–विभाजन की विकसित व्यवस्था को दर्शाते हैं। इसी प्रकार महावस्तु में कपिलवस्तु के विविध व्यवसायों एवं उद्योगों का उल्लेख मिलता है, जिनमें शंख उद्योग, स्वर्ण एवं आभूषण निर्माण, हाथी दाँत शिल्प, सुगंधित पदार्थों का निर्माण एवं व्यापार, रेशमी वस्त्रों का उत्पादन, तेल पेरने वाले तथा फल विक्रेताओं का विशेष उल्लेख है। इन विवरणों से स्पष्ट होता है कि उस काल में शिल्प एवं व्यापारिक गतिविधियाँ अत्यंत विकसित थीं तथा विभिन्न व्यवसाय संगठित रूप में संचालित होते थे, जो प्राचीन भारत की समृद्ध आर्थिक एवं शहरी संरचना के महत्वपूर्ण संकेतक हैं।

श्रेणी धर्म और कानूनी स्थिति –

धर्मग्रंथों में श्रेणियों की परंपरागत प्रथाओं, नियमों एवं आचार–संहिताओं को श्रेणीधर्म कहा गया है, जिन्हें राज्य द्वारा वैधानिक मान्यता प्राप्त थी। मनुस्मृति में निर्देश दिया गया है कि राजा को जातिधर्म, कुलधर्म, जनपदधर्म तथा श्रेणीधर्म का समुचित परीक्षण करने के पश्चात ही राजकीय नियमों का निर्माण करना चाहिए। इसी प्रकार अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने भी श्रेणीधर्म के सम्मान पर बल देते हुए स्पष्ट किया है कि राजा को श्रेणियों की परंपराओं एवं नियमों का आदर करना चाहिए। इन उल्लेखों से स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारत में श्रेणियों को पर्याप्त स्वायत्तता प्राप्त थी तथा सामान्य परिस्थितियों में राज्य उनके आंतरिक प्रशासन, निर्णयों और कार्यप्रणाली में अनावश्यक हस्तक्षेप नहीं करता था। इससे श्रेणी संगठनों की वैधानिक स्थिति एवं प्रशासनिक महत्व का भी पता चलता है।

अभिलेखीय साक्ष्य –

श्रेणी संगठनों के संबंध में अभिलेखीय साक्ष्य महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करते हैं। नहपान के शासनकाल के नासिक अभिलेख में गोवर्धन के बुनकरों के दो संघों का उल्लेख मिलता है, जिससे स्पष्ट होता है कि एक ही स्थान पर एक ही व्यवसाय से संबंधित अनेक श्रेणियाँ अस्तित्व में हो सकती थीं। इसी प्रकार मदुरै के निकट प्राप्त मंगलम तमिल–ब्राह्मी अभिलेख में व्यावसायिक संगठनों का उल्लेख मिलता है, जिसे दक्षिण भारत में प्रारंभिक व्यापारिक संघों का महत्वपूर्ण प्रमाण माना जाता है। इसके अतिरिक्त मन्दसौर अभिलेख से ज्ञात होता है कि तंतुवाय (बुनकर) श्रेणी ने सूर्य मंदिर का निर्माण कराया तथा बाद में उसकी मरम्मत भी कराई। यह तथ्य न केवल श्रेणियों की आर्थिक समृद्धि का प्रमाण है, बल्कि धार्मिक संरक्षण, सामाजिक उत्तरदायित्व एवं लोक कल्याणकारी कार्यों में उनकी सक्रिय भागीदारी को भी स्पष्ट करता है।

श्रेणियों द्वारा मुद्राओं का प्रचलन और न्यायिक कार्य –

नालंदा, वैशाली, कौशाम्बी तथा तक्षशिला से प्राप्त मुद्राएँ इस बात का संकेत देती हैं कि श्रेणी संगठन आर्थिक दृष्टि से अत्यंत सशक्त एवं संगठित थे। तक्षशिला से प्राप्त कुछ सिक्कों पर अंकित 'नेगम' शब्द को

विद्वान निगमों अथवा व्यापारिक संघों द्वारा जारी मुद्राओं से संबद्ध मानते हैं, जो उनकी आर्थिक स्वायत्तता और संगठनात्मक क्षमता का प्रमाण है। इसी प्रकार प्रयागराज के निकट भीटा से प्राप्त 'सहजाति निगमन' अंकित मुद्रा वहाँ एक संगठित व्यापारिक श्रेणी के अस्तित्व की पुष्टि करती है। आर्थिक गतिविधियों के साथ–साथ श्रेणियों को अपने सदस्यों के मध्य उत्पन्न विवादों के निपटारे का अधिकार भी प्राप्त था। वे संगठन में अनुशासन बनाए रखती थीं, श्रेणीधर्म का उल्लंघन करने वाले सदस्यों को दंडित करती थीं तथा आवश्यकता पड़ने पर दोषी सदस्य का बहिष्कार भी कर सकती थीं। इस प्रकार श्रेणी संगठन न केवल आर्थिक संस्थाओं के रूप में कार्य करते थे, बल्कि अपने सदस्यों के लिए एक प्रकार के व्यावसायिक न्यायालय के रूप में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते थे।

सामाजिक, धार्मिक एवं जन कल्याणकारी कार्य –

समय के साथ श्रेणी संगठन केवल व्यापारिक एवं आर्थिक संस्थाएँ नहीं रहे, बल्कि उन्होंने सामाजिक, धार्मिक तथा लोक कल्याणकारी जीवन में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। श्रेणियाँ मंदिरों, मठों एवं मूर्तियों के निर्माण में सहयोग प्रदान करती थीं, धार्मिक एवं सामाजिक उद्देश्यों के लिए दान देती थीं तथा वृक्षारोपण, जलाशयों के निर्माण और यात्रियों की सहायता जैसे जनहितकारी कार्यों में सक्रिय भागीदारी निभाती थीं। इसके अतिरिक्त अकाल एवं अन्य संकटों के समय वे राज्य को आर्थिक एवं सामाजिक सहयोग भी प्रदान करती थीं। जुन्नार अभिलेख से ज्ञात होता है कि एक व्यक्ति ने अपनी भूमि की आय को श्रेणी के पास स्थायी निवेश के रूप में जमा कराया, जिसका उपयोग वृक्षारोपण जैसे लोक कल्याणकारी कार्यों के लिए किया गया। यह उदाहरण स्पष्ट करता है कि श्रेणियाँ आर्थिक संस्थाओं के साथ–साथ सामाजिक उत्तरदायित्व और सार्वजनिक कल्याण की भी प्रमुख वाहक थीं। इसके अतिरिक्त, किरण कुमार थपलियाल ने श्रेणी संगठनों को प्राचीन भारत की प्रारंभिक बैंकिंग संस्थाओं के रूप में स्वीकार किया है। उनके अनुसार श्रेणियाँ केवल उत्पादन एवं व्यापार का संचालन ही नहीं करती थीं, बल्कि धन जमा करने, ऋण प्रदान करने, ब्याज पर पूँजी उपलब्ध कराने तथा व्यापारिक निवेशों के प्रबंधन जैसे महत्वपूर्ण वित्तीय कार्य भी संपादित करती थीं। इस प्रकार वे पूँजी संचय एवं वित्तीय लेन–देन के संगठित केंद्र के रूप में कार्य करती थीं।

श्रेणियाँ और राजतंत्र –

राज्य और श्रेणी संगठनों के मध्य घनिष्ठ एवं सहयोगात्मक संबंध विद्यमान थे। अर्थशास्त्र में कौटिल्य ने निर्देश दिया है कि राज्य को श्रेणियों का लेखा–जोखा रखना चाहिए, क्योंकि वे राजस्व का महत्वपूर्ण स्रोत थीं। इसके बदले राज्य उन्हें व्यापारिक सुरक्षा, सड़कों एवं संचार मार्गों का विकास, ऋण संबंधी सुविधाएँ तथा व्यापार के अनुकूल वातावरण उपलब्ध कराता था। दूसरी ओर, याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार निगमों एवं श्रेणियों को अपने आंतरिक नियम बनाने और उनका पालन कराने की पर्याप्त स्वायत्तता प्राप्त थी, बशर्ते वे धर्म तथा राज्य के मूल सिद्धांतों के विरुद्ध न हों। यद्यपि श्रेणियाँ प्रत्यक्ष रूप से राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने का प्रयास करती हुई दिखाई नहीं देतीं, तथापि वे आवश्यकता पड़ने पर राजाओं को आर्थिक सहायता प्रदान करती थीं तथा महत्वपूर्ण राजकीय समारोहों में उनके प्रमुखों की उपस्थिति सम्मान एवं प्रतिष्ठा का प्रतीक मानी जाती थी। इससे स्पष्ट होता है कि श्रेणी संगठन प्राचीन भारत में राज्य के आर्थिक सहयोगी होने के साथ–साथ प्रशासनिक एवं सामाजिक व्यवस्था के भी महत्वपूर्ण अंग थे। यू. एन. घोषाल ने "शास्त्रीय युग की आर्थिक परिस्थितियाँ" में लिखा

है कि श्रेणियों के पारस्परिक संगठन ने आर्थिक अनुशासन बनाए रखने, अवैध गतिविधियों को नियंत्रित करने तथा सामूहिक हितों की रक्षा करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। बृहस्पति द्वारा वर्णित कठोर दंड–व्यवस्था श्रेणियों की संगठनात्मक शक्ति को स्पष्ट करती है।

निष्कर्ष –

उपर्युक्त अध्ययन से स्पष्ट होता है कि श्रेणी संगठन प्राचीन भारत की आर्थिक संरचना की महत्वपूर्ण संस्थाएँ थीं। प्रारंभ में उनका स्वरूप व्यापारिक एवं शिल्पकार संघों तक सीमित था, किंतु समय के साथ वे आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक तथा प्रशासनिक जीवन का अभिन्न अंग बन गए। उन्होंने उत्पादन, व्यापार, पूँजी संचय, ऋण व्यवस्था, मूल्य–निर्धारण तथा व्यावसायिक अनुशासन को संगठित किया। साथ ही, सदस्यों के विवादों का समाधान किया तथा मंदिरों, मठों, जलाशयों और अन्य लोक कल्याणकारी कार्यों के माध्यम से समाज के विकास में योगदान दिया। राज्य के साथ उनके सहयोग पूर्ण संबंधों ने आर्थिक स्थिरता और व्यापारिक सुरक्षा को सुदृढ़ किया। इस प्रकार श्रेणी संगठन केवल आर्थिक संस्थाएँ नहीं थे, बल्कि सामाजिक समन्वय, संस्थागत विकास और सांस्कृतिक संरक्षण के प्रभावी माध्यम भी थे। इसलिए प्राचीन भारत की आर्थिक एवं सामाजिक संरचना को समझने के लिए उनका अध्ययन अत्यंत महत्वपूर्ण है।

संदर्भ सूची –

प्राथमिक स्रोत :

1. कौटिल्य. कौटिलीय अर्थशास्त्रम्। हिंदी अनुवाद : वाचस्पति गैरोला। वाराणसीः चौखम्बा विद्याभवन, 2022.
2. मनु. मनुस्मृति : संस्कृत मूल पाठ के साथ हिंदी अनुवाद। अनुवादक : पंडित रामेश्वर भट्ट। 5वाँ संस्करण। वाराणसी : चौखम्बा प्रकाशन, 2021.
3. याज्ञवल्क्य। याज्ञवल्क्य स्मृति। हिंदी अनुवाद एवं 'मिताक्षरा' व्याख्या : थानेशचन्द्र उप्रेती। दिल्ली : परिमल पब्लिकेशन्स, 2001.
4. जातक। जातक। हिंदी अनुवाद : भदन्त आनन्द कौसल्यायन। प्रयाग : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 1941.

द्वितीयक स्रोत :

1. थपलियाल, किरण कुमार। प्राचीन भारत में श्रेणियाँ : प्राचीनता एवं ईस्वी सन् 300 तक श्रेणियों के विकास के विभिन्न चरण. नई दिल्ली : मोतीलाल बनारसीदास, 1961.
2. थापर, रोमिला। प्राचीन भारतीय सामाजिक इतिहास : कुछ व्याख्याएँ. नई दिल्ली : ओरिएंट लॉन्गमैन, 1978
3. सिंह, उपिंदर। प्राचीन एवं प्रारंभिक मध्यकालीन भारत का इतिहास. दिल्ली : पियर्सन लॉन्गमैन, 2008.
4. घोषाल, यू. एन. शास्त्रीय युग की आर्थिक परिस्थितियाँ. कलकत्ता : यूनिवर्सिटी ऑफ कलकत्ता, 1929.

ईमेल– navaidali742@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2026 Page No. : 129-139

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.22679720

Need of E-content Developments in Education

Dr. Rajendra Jakhar
Asstt. Professor in Education
J.K. Memorial College of Education, Birhi Kalan, Ch. Dadri (Haryana)

ABSTRACT :

This paper explores the growing necessity and significance of e-content development in modern education. Driven by rapid advancements in information technology and internet accessibility, e-content serves as a vital tool to transform traditional teaching and learning paradigms. The study highlights the evolution of e-learning standards, the architecture of Learning Management Systems (LMS), instructional design methodologies, and various content-authoring tools (such as SCORM, AICC, PROMETEUS, and ARIADNE). It systematically outlines the six core phases of e-content development—analysis, design, development, testing, implementation, and evaluation—and reviews key development models. Furthermore, the paper addresses critical pedagogical perspectives (cognitive, emotional, behavioural, and contextual), modern delivery channels like streaming media and blogging, and the essential competencies required by instructors. Ultimately, e-content aims to eliminate educational disparities and cultivate an interactive, learner-centric digital future.

Keywords : E-content Development, E-learning Standards, LMS, Instructional Design, Content-Authoring Tools, Development Phases, Pedagogy, Multimedia Package, Digital Literacy, Instructor Competencies..

INTRODUCTION :

Information technology and the Internet are major drivers of research, innovation, growth and social change. The growth in Internet has brought changes in all walks of life

including the education. e-content includes all kinds of content created and delivered through various electronic media from 'old media' such as print and radio to the increasingly sophisticated electronic tools with combination of sounds, images and text. e-content requires huge amounts of creativity both at 'information' level as well as the 'technology' level.

EVOLUTION OF E-LEARNING STANDARDS :

Almost every technology has its own standards evolved by different organizations. The Dublin Core started in 1994 to develop a meta-data framework for web resources. The Dublin Core is a metadata element set intended to facilitate discovery of electronic resources used in museums, libraries, government agencies. In 1997, the EDUCOM consortium (now EDUCAUSE) of US institutions of higher education and their vendor partners established an effort to develop standards for on-line learning, specifications for metadata. Also in 1997, NIST (National Institute for Standards and Technology) and the IEEE study group began similar efforts.

LEARNING OBJECT DESIGN :

Learning Management Systems (LMSs) are web-based application platforms used to plan, implement and assess learning processes related to online and offline training, administration and performance management. LMS are defined as systems to manage learners, keeping track of their progress and performance across all types of learning activities. LMSs provide an instructor a way in which to create and deliver content, monitor learners' participation and assess learners' performance. In fact many institutions, the Learning Management System may have one or two content-authoring tools. The content-authoring tool is software used to create multimedia content for delivery on the World Wide Web.

INSTRUCTIONAL DESIGN :

Instructional design is a systematic, repetitive process of activities aimed at creating a solution for an instructional problem. The steps involved in instructional design are; setting

an instructional goal; goal analysis; learning domains; learning outcomes; prepare criterion referenced test questions and a clear instructional strategy. (Sharada Dasari, 2001). The learning domains are verbal information, intellectual skills, psychomotor skills and attitudes. The instructional strategies may be drill and practice, tutorials, simulations and educational games.

TYPES OF CONTENT-AUTHORING TOOLS :

The Content-authoring tools are different in nature are; SCORM, AICC, PROMETEUS, ARIADNE, ADL, AASL and LTSC.

1. **SCORM** (Sharable Courseware Object Reference Model), is a set of specifications that, when applied to course content produces small reusable e-Learning objects;
2. **AICC** (Aviation Industry Computer-Based Training Committee), is an international association of technology-based training professionals that develops teaching guidelines for the aviation industry.
3. **PROMETEUS** (Promoting Multimedia Access to Education and Training in European Society) It apply to the development, delivery and evaluation of e-content training courses via technology, established with a clear underlying ideal to promote access to knowledge, education and e-content training for all European citizens;
4. **ARIADNE** is a European Union project focusing on the development of tools for producing, managing and reusing computer based pedagogical elements in University of Lausanne, Switzerland;
5. **ADL** (Advanced Distributed Learning Initiative) is a program from the US Department of Defense and the White House Office of Science and Technology, to develop guidelines needed for efficient and effective e-content learning;
6. **AASL** (American Association of School Librarians) has formulated the Information Literacy Standards for Student Learning and it concentrates the student, teacher and administrator;
7. **LTSC** (Learning Technologies Standard Committee) has prepared technical standards and guidelines for the use of e-content components in Education and it is an internationally accredited Computer Society Standards Activity Board founded by the Institute of Electrical and Electronics Engineers (IEEE).

MODELS OF E-CONTENT DEVELOPMENT :

The e-content development models are available in five different ways and they are as follows;

1. An instructional design model by Kemp (1977) defined nine different components and adopted a continuous update with evaluation;
2. teaching of media in a systematic approach model by Vernon and Donald (1980) compared the different instruction design models;
3. A Systematic Design of Instruction model by Dick and Carey (1990) described all the phases of process starts with instructional goals and ends with summative evaluation;
4. Systems Reusable Information Object Strategy by CISCO (1999) consists of six content items viz., introduction; importance; objectives; pre-requisites; scenario; and outline with Learning Management System (LMS) and
5. Content based model by Cernea (2005) explained the learning objectives of a content and the content's accessibility and reusability between various Learning Content Management System (LCMS).

PHASES OF E-CONTENT DEVELOPMENT :

In e-content development aspects consists of six phases viz., analysis, design, development, testing, implementation and evaluation.

- **The Analysis Phase :** It is the most important as it identifies area's in our current situation. This phase accountability considered by the views of subject experts, target audiences, objectives and its goals. In this phase, we must know the audience and their skill, budget of the e-content, delivery methods and its constraints with due dates.
- **The Design Phase :** It involves the complete design of the learning solution. It helps to plan of an e-content preparation. In this phase, we must know the planning, use of relevant software; required skills; creative and innovative interactions of subject contents like texts, pictures, videos and suitable animations.
- **The Development Phase :** It concerns the actual production of the e-content design. It helps to create the content by mixing of texts, audio, video, animations, references,

blogs, links and MCQs (multiple choice questions) with some programming specifications like home, exit, next etc.

- **The Testing phase :** It helps to administer the e-content in the actual educational field. In this phase, we must test the spelling mistakes, content errors, clarity of pictures, relevant videos, appropriate audios, timing of animations and hyperlinks.
- **The Implementation Phase :** It helps to administer the e-content to the target audience. This phase explains how to install and how to use it and their difficulties experienced while using e-content. It checks the product accuracy and quality maintenance.
- **The Evaluation Phase :** It helps to satisfy the e-content and its effectiveness. This phase considers feedback from both learners and instructors. After the feed back reactions, the e-content is designed again as post-production for effective delivery of e-content.

PEDAGOGICAL ISSUES IN E-CONTENT DEVELOPMENT :

Pedagogy describes the collected practices, processes, strategies, procedures and method of teaching and learning. It also includes knowledge about the aims of instruction, assessment and student learning. The challenges of pedagogical issues in e-content are; (i) to make the knowledge visible to learners; (ii) to make the teachers' thinking visible to learners and (iii) to make learners thinking visible to themselves, their peers and the teacher. The pedagogy has evolved largely as the product of pragmatic constraints (e.g. time, class size, linear textbooks). Planned e-content packages have overcome many of these constraints including dictionaries, references and links.

A digital text and images designed for display on web pages which is suitable for particular audience is called as 'e-content'. It means, any content product available in a digital form and typically refers to music, information and images that are available for distribution on electronic media. (Anurag Saxena, 2011)

In e-Content development process needs several aspects. Content should follow appropriate instructional design methodology in order to assure meeting of learning objectives and expected outcomes. The effort spent in content preparation should be re-usable across various learning management systems. All the e-content materials focused on:

- **(a) Cognitive perspective :** it focuses on the cognitive processes involved in learning as well as how the brain works;
- **(b) Emotional perspective :** it focuses on the emotional aspects of learning, like motivation, engagement, fun etc.;
- **(c) Behavioural Perspective :** it focuses on the skills and behavioural outcomes of the learning process, role-playing, settings of job and
- **(d) Contextual Perspective :** it focuses on the environmental and social aspects which can stimulate learning.

Video Streamer :

E-learning and streaming media is becoming increasingly prominent on the internet. Indian Institutes of Technology in India and Massachusetts Institute of Technology in USA have opened their web servers for free lecture-on-demand on several courses. The Open Courseware Consortium is working to provide free lectures on demand to users worldwide. MHRD, Government of India has started a project called NPTEL (National Program for Technology Enhanced Learning) to enhance the quality of engineering education in India by developing curriculum based videos and web courses.

Blogging :

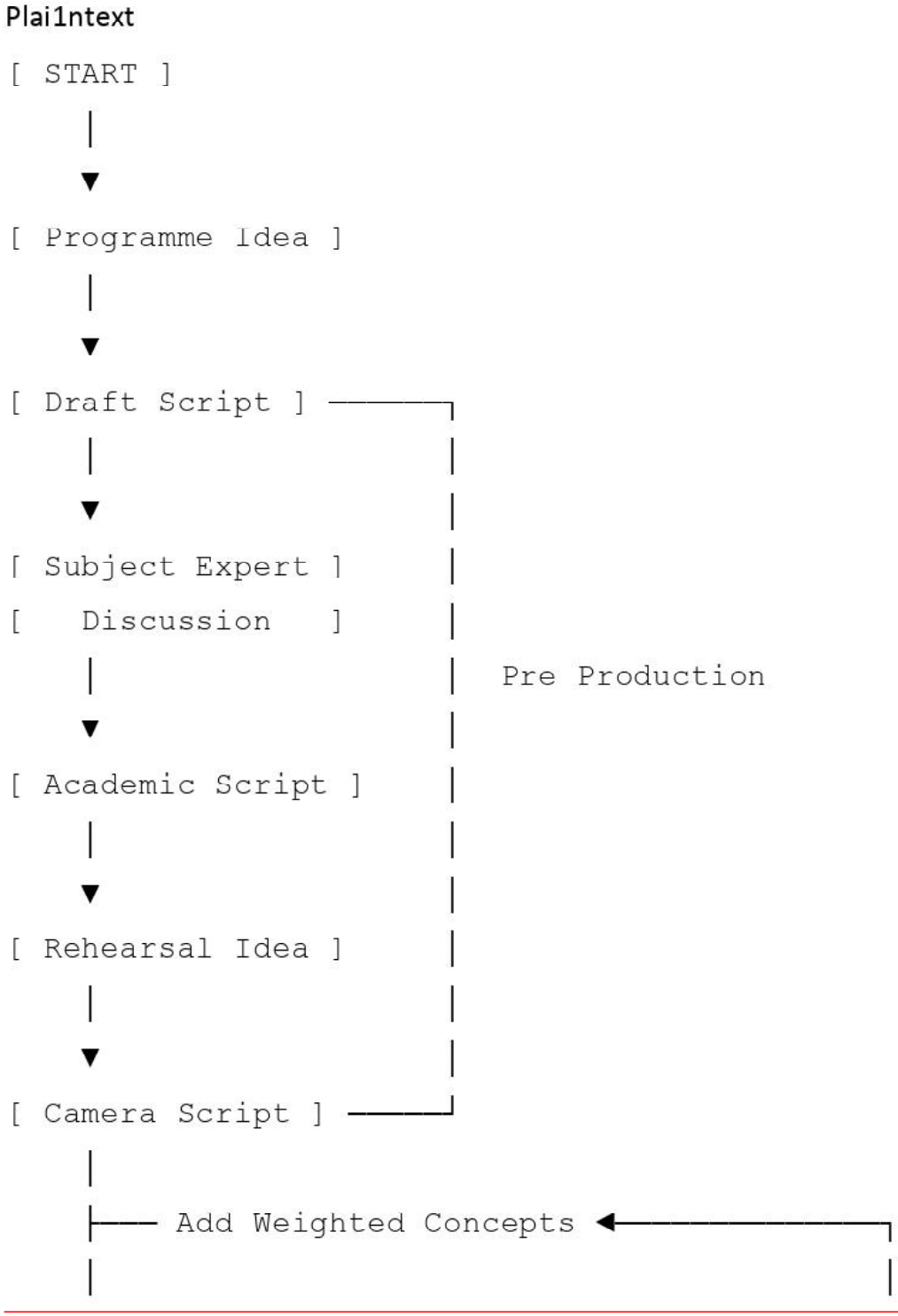
A web blog is a Website that consists of a series of entries arranged in chronological order, often updated on frequently with new information about particular topic. The information can be written by the site owner, gathered from other sources, or contributed by an individual. Blogs are in different types viz., (i) personal (e.g., twitter share); (ii) organizational (e.g., marketing corporate); (iii) variety (e.g., education genre); (iv) media (e.g., photo blog) and (v) device (e.g., mobile phone).

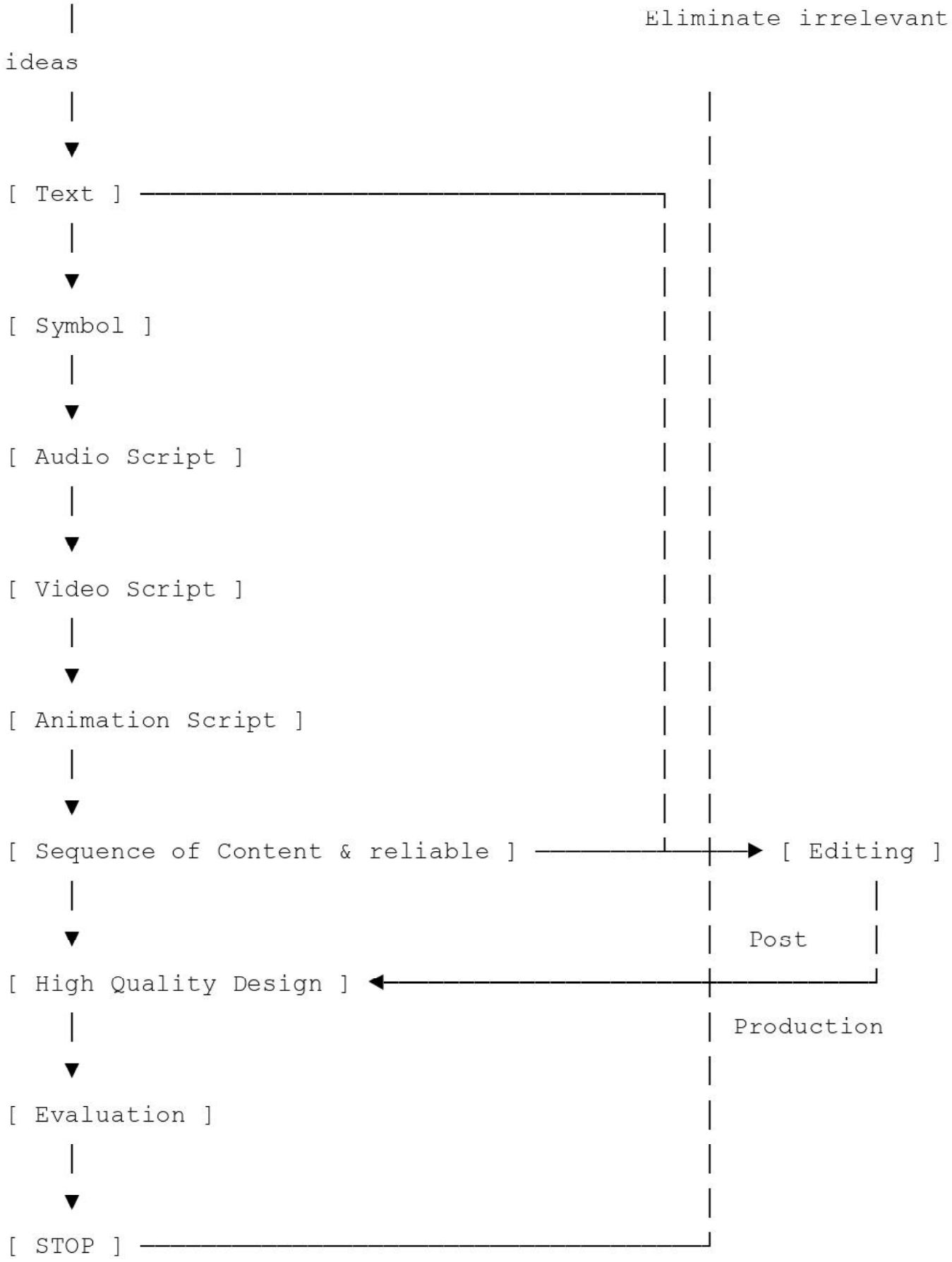
Instructor's Role in the Development of e-Content :

A competent instructor in e-content is, one who effectively and efficiently accomplishes a task in a given digital context, using appropriate knowledge, skills, attitudes and abilities that have adjusted with in a time and their needy competencies (Varvel, 2007). Also International Board of Standards for Training, Performance and Instruction organization developed the standard competencies for instructors in e-content development in the following domains: (a) professional foundations, (b) planning and preparation, (c)

instructional methods and strategies, (d) assessment and evaluation and (e) management. (Russ-Eft et. al., 2008). The following diagram illustrated the development of a multi media material.

Flowchart : Preparation of Multimedia Package (Nachimuthu. K. 2012)




Eliminate irrelevant ideas
[Text]
[Symbol]
[Audio Script]
[Video Script]
[Animation Script]
[Sequence of Content & reliable]
[Editing]
Post Production
[High Quality Design]
[Evaluation]
[STOP]

Characteristics of E-content Development :

According to Anurag Saxena (2011) explained the possible methods of educational e-contents conversions are viz., (i) learning by doing and learning by investigation; (ii) learning by using themes; (iii) learning by testing / evaluation; (iv) learning by simulation and (v) learning by role-playing.

As per the UGC (University Grants Commission, India) guidelines of e-content development needs the following categories viz., (i) home; (ii) objectives; (iii) subject mapping; (iv) summary; (v) text with pictures and animations; (vi) video and audio; (vii) assignments, quiz and tutorial; (viii) references, glossary and links; (ix) case studies; (x) FAQ's; (xi) download; (xii) blog and (xiii) contact. These categories are arranged sequentially by subject experts along with technical supporters and to develop the e-content materials.

E-learning is a process and E-content is a product. e-content is generally designed to guide students through lot of information in a specific task. An e-content package can be used as a teacher in the virtual classroom situations. The quality of learning depends not only on the form of how the process is carried out but also on what content is taught and how the content is presented. This approach of teaching has become an answer to the complicated problems and un-identified areas. In a class room, technology stimulates the learner and gets the learner involved in the learning.

Books are an extension of brain: video is an extension of eye; audio is the extension of an ear; audio conferencing is the extension of mind and vocal chord; computer is an extension of fusion on mind, hands and eyes; satellite technology is an extension of human reach and computer network is an extension of human co-operation. So what we would expect from e-contents that it should be able to stimulate the learner in such a way that we utilizes the maximum of its potential in learning (Vijayakumari, 2011).

E-content is valuable to the pupil and also helpful to teachers for all individual instruction systems; e-content is the latest method of instruction that has attracted more attention to gather with different concepts. The ultimate aim of the e-content is abolish the disparity among the learners through effective education, e-content is facilitating to the

teacher to effective manner. It is enhancing the learner knowledge level which leads to creative thinking and it gives the future ideas on the basis of given links and references.

E-learning comprises all forms of electronically supported learning and teaching. The Information and communication systems whether networked learning or not, serve as specific media to implement the learning process. It may be classified as Online and Offline. The online learning occurred through, e-forum, SMS / MMS, Search engines, Meta search engines, e-dictionaries, e-books and e-journals. Where as the off-line learning occurred through MS Office applications, power-point presentations, downloaded documents and CD ROMS.

CONCLUSION :

We need innovative work in e-content material as a form of digital literacy in educational settings particularly to investigate the implications of new forms of social networking, knowledge sharing and knowledge building. And finally, because of the pervasive nature of e-content as a digital technology, the commercial interest that is invested in it and the largely unregulated content of Internet based sources; we also need to begin to sketch out what a critical digital literacy might look like. There is, in short, plenty to be done if we are to prepare children and young people to play an active and critical part in the digital future.

REFERENCES :

1. Anurag Saxena. (2011). *Pedagogical Designs for Generation of Contents for the Community*, Community Development Theme, Indira Gandhi National Open University Publications, New Delhi. pp.1-3.
2. Cernea, M.Michael., (2006) *Re-examining "Displacement": A Redefinition of Concepts in Development and Conservation Policies*, Social Change, New Delhi, March 2006, Vol 36, No. 1, pp. 08-35.
3. CISCO (1999) *Systems Reusable Information Object Strategy* in the book Rory McGreal (2007) Online Education Using Learning Objects, The University of Michigan, Routledge, pp.13-15.

4. Dick, W. and Carey, L. (2000). *The systematic design of instruction* (5th ed.). New York: Addison-Wesley.
5. Dick. W and Carey, L (1990) *The Systematic Design of Instruction*, Third Edition, Glenview, IL: Scott, Foresman.
6. Friend, C. L. ve Cole, C. L. (1990). "Learner Control in CBI", *Journal of Educational Technology*, November, Sayfa: 47-49.
7. Jacoby, R. (2005). "Computer Based Training: Yes or No?", *Journal of Health Care Compliance*, Sayı:7, Sayfa:45-48.
8. Kemp, Jerold. (1977) *Instructional Design: A plan for unit and course development*. Belmont: Fearon-Pitman Pub, pp. 82-90.
9. Mayer E. Richard (2005). *The Cambridge Handbook of Multimedia Learning*. Cambridge University Press, pp. 45-67.
10. Nachimuthu, K (2012). *Pleasures and Pressures of e-contents in Teaching*, International Journal of New Innovations, IJNI, New Delhi, April 2012, Vol 1, No.2, pp.337-340.
11. Pickard Mary J. 2007. *The new Bloom's taxonomy: An overview for family and consumer sciences*, Journal of Family and Consumer Sciences Education, Vol. 25, No. 1, pp 45-55, Spring/Summer 2007.
12. Russ-Eft, Darlene. F., Bober, Marcie. J., de la Teja, Ileana., Foxon, Marguerite. and Koszalka, Tiffany, A.

Mobile No. 7375915563
Email: drrajendrajakhar007@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2026 Page No. : 140-148

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.22679720

शिक्षकों की शैक्षिक नवाचारों के प्रति अभिवृत्ति मापनी

कुसम लता टाक, शोधार्थी,
शिक्षा विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)
डॉ. श्रद्धा सिंह चौहान, शोध निर्देशिका, सहायक आचार्य,
श्री अग्रसेन स्नातकोत्तर शिक्षा महाविद्यालय सी.टी.ई. केशव विद्यापीठ, जामडोली, जयपुर (राज.)

प्रस्तावना :

प्रस्तुत अभिवृत्ति मापनी का निर्माण शोधार्थी द्वारा अपने शोध विषय ''उच्च माध्यमिक स्तर पर विभिन्न संकाय में कार्यरत शिक्षकों की व्यावसायिक प्रतिबद्धता एवं शैक्षिक नवाचारों के प्रति अभिवृत्ति का अध्ययन'' में उच्च माध्यमिक स्तर पर विभिन्न संकाय में कार्यरत शिक्षकों की शैक्षिक नवाचारों के प्रति अभिवृत्ति जानने के लिए किया गया है।

शैक्षिक नवाचारों के प्रति अभिवृत्ति मापनी (स्वयं निर्मित) उपकरण निर्माण की प्रक्रिया :

शैक्षिक नवाचारों के प्रति अभिवृत्ति मापनी का निर्माण करने के लिए शोधार्थी द्वारा सर्वप्रथम शोध निर्देशिका के साथ इस विषय पर चर्चा की गई। उनके द्वारा दिये गये सुझावों के आधार इसके आयामों का निर्धारण किया जो निम्न प्रकार हैं– शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में नवाचार, पाठ्यवस्तु नवाचार, विद्यालय प्रबंधन में नवाचार एवं शैक्षिक योजनाओं में नवाचार आदि।

सारणी संख्या : 1

शैक्षिक नवाचारों के प्रति अभिवृत्ति मापनी का आयामवार विवरण

क्र.स.	शैक्षिक नवाचार	कथन संख्या	कुल
1	शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में नवाचार	1–12	12
2	पाठ्यवस्तु में नवाचार	13–24	12
3	विद्यालय प्रबंधन में नवाचार	25–36	12
4	शैक्षिक योजनाओं में नवाचार	37–48	
		कुल कथन	48

(स्रोत :– शोधार्थी द्वारा स्वयं निर्मित की गई)

शैक्षिक नवाचारों के प्रति अभिवृत्ति मापनी के कथन सकारात्मक और नकारात्मक दोनों प्रकार के थे, जिनका विवरण नीचे तालिका के माध्यम से प्रदर्शित किया गया है –

सारणी संख्या : 2

शैक्षिक नवाचारों के प्रति अभिवृत्ति मापनी का प्रकृतिवार विवरण

विकल्प	कथन संख्या	कुल
सकारात्मक प्रश्न	1, 2, 3, 4, 7, 8, 9, 10, 11, 12, 14, 15, 17, 19, 21, 22, 23, 25, 26, 27, 28, 29, 31, 32, 33, 35, 36, 37, 39, 40, 42, 43, 45, 46, 47, 48	36
नकारात्मक प्रश्न	5, 6, 13, 16, 18, 20, 24, 30, 34, 38, 41, 44	12
	कुल कथन	48

अंकन की प्रक्रिया :

प्रस्तुत उपकरण में प्रत्येक कथन के समक्ष पांच विकल्प दिये गये है; पूर्णतः सहमत, सहमत, अनिश्चित, असहमत और पूर्णतः असहमत। इन विकल्पों के लिए अंकन प्रक्रिया को निम्न तालिका में स्पष्ट किया गया है–

सारणी संख्या : 3

शैक्षिक नवाचारों के प्रति अभिवृत्ति मापनी की अंकन प्रक्रिया

विकल्प	पूर्णतः सहमत	सहमत	अनिश्चित	असहमत	पूर्णतः असहमत
सकारात्मक प्रश्न	4	3	2	1	0
नकारात्मक प्रश्न	0	1	2	3	4

परीक्षण की विश्वसनीयता –

प्रस्तुत उपकरण को सबसे पहले 50 उच्च माध्यमिक स्तर के शिक्षकों पर प्रशासित किया गया। एक माह (30 दिन) के अंतराल के पश्चात् उसी समान समूह पर पुनः यही उपकरण पुनः प्रशासित किया गया। दोनों बार प्राप्त अंकों का सांख्यिकीय विश्लेषण पियर्सन सहसंबंध गुणांक द्वारा किया गया। विश्लेषण के परिणामस्वरूप प्रस्तुत उपकरण का विश्वसनीयता गुणांक 0.73 प्राप्त हुआ, जो स्वीकार्य स्तर पर उपकरण की पर्याप्त विश्वसनीयता को दर्शाता है।

परीक्षण की वैधता –

परीक्षण की वैधता ज्ञात करने के लिए विषय वस्तु वैधता का प्रयोग किया गया। इस वैधता पर निर्णय प्राप्त करने के लिए शिक्षक शिक्षा और स्कूली शिक्षा दोनों क्षेत्रों के विशेषज्ञों को मापनी को दिखाया गया था। इसके अतिरिक्त मापनी के कथनों एवं क्षेत्रों पर सभी विशेषज्ञ अपनी राय में एकमत थे, इसलिए परीक्षण में विषय–वस्तु निर्धारित होती है।

प्राप्तांकों की व्याख्या –

अभिवृत्ति मापनी में प्राप्त अंकों को निम्न आधार पर वर्गीकृत किया गया है –

क्र.स.	अंक विस्तार	अधिगम क्षमता मापनी के स्तर
1	156–192	अति उच्च
2	117–155	उच्च
3	78–116	औसत
4	39–77	निम्न
5	0–38	अति निम्न

शैक्षिक नवाचारों के प्रति अभिवृत्ति मापनी के परिणामों को अंक आधारित पाँच स्तरों में वर्गीकृत किया गया है। 156 से 192 अंकों वाले व्यक्ति "अति उच्च" श्रेणी में आते हैं, जो यह दर्शाता है कि उनकी शैक्षिक नवाचारों को अपनाने की अभिवृत्ति और सकारात्मक दृष्टिकोण अत्यंत मजबूत है तथा वे नई शिक्षण–शिक्षण विधियों, तकनीकों और परियोजना आधारित गतिविधियों को अपनाने में सक्षम और सक्रिय हैं। 117 से 155 अंकों वाले व्यक्ति "उच्च" स्तर पर माने जाते हैं, जिनमें नवाचारों को अपनाने की अच्छी अभिवृत्ति और सीखने की सक्रिय क्षमता पाई जाती है। 78 से 116 अंकों वाले व्यक्ति "औसत" श्रेणी में आते हैं, जिनकी नवाचारों के प्रति अभिवृत्ति सामान्य होती है और उन्हें कभी–कभी मार्गदर्शन या प्रोत्साहन की आवश्यकता पड़ सकती है। 39 से 77 अंकों वाले व्यक्ति "निम्न" स्तर पर माने जाते हैं, जिनमें नवाचारों को अपनाने की अभिवृत्ति और प्रेरणा कमजोर होती है और उन्हें सीखने या कार्य में सुधार की आवश्यकता होती है। अंत में, 0 से 38 अंकों वाले व्यक्ति "अति निम्न" श्रेणी में आते हैं, जिनकी शैक्षिक नवाचारों के प्रति अभिवृत्ति अत्यंत कम होती है और उनके लिए विशेष मार्गदर्शन, प्रशिक्षण और विकासात्मक गतिविधियाँ आवश्यक होती हैं। इस प्रकार यह वर्गीकरण शैक्षिक नवाचारों के प्रति व्यक्तियों की अभिवृत्ति और अधिगम क्षमता का स्पष्ट मूल्यांकन करने में सहायक होता है।

शैक्षिक नवाचारों के प्रति अभिवृत्ति मापनी

(शिक्षकों हेतु)

निर्देशः–

- सभी कथनों का उत्तर देना अनिवार्य है।
- प्रस्तुत मापनी के अन्तर्गत दिये गये सभी प्रश्नों को ध्यानपूर्वक पढ़ें और सही विकल्प पर (√) सही का निशान लगायें।
- आपके विचार केवल शोध कार्य हेतु हैं, इन्हें गोपनीय रखा जायेगा।

क्र.स.	कथन	प्रतिक्रिया				
		पूर्णतः सहमत	सहमत	अनिश्चित	असहमत	पूर्णतः असहमत
	(अ)					
1	नवाचार, कक्षा– कक्ष के वातावरण को अधिकाधिक ज्ञानवर्धक और सक्रिय रखने का अवसर प्रदान करता है।					
2	शिक्षा में नवाचार का प्रयोग अनेक शैक्षिक समस्याओं का हल प्राप्त करने में सहयोग करता है।					
3	शिक्षण विधियों में कम्प्यूटर के प्रयोग से ज्ञान में वृद्धि की जा सकती है।					
4	ई–अधिगम भारतीय शिक्षा व्यवस्था को वैश्विक बनाने का प्रयास है।					
5	ई–अधिगम के समय ऑडियो, वीडियो एवं पाठ्य सामग्री स्पष्ट नहीं हो पाती है।					
6	ई–अधिगम से विद्यार्थियों को प्रयोगात्मक एवं कौशल आधारित ज्ञान पूर्णतया प्राप्त नहीं होता है।					
7	''स्वयंप्रभा'' के माध्यम से सभी के लिए सर्वोत्तम शिक्षण सुविधा उपलब्ध करवाना सुलभ हो गया है।					
8	गुणवत्ता वाले शिक्षण संसाधनों को दूरदराज़ के क्षेत्रों तक पहुँचाने में ''स्वयंप्रभा'' की महत्वपूर्ण भूमिका है।					
9	''दीक्षा पोर्टल'' शिक्षकों को विभिन्न प्रकार के शिक्षण करवाने और छात्रों को सीखने के अवसर प्रदान करता है।					

10	''मिशन स्टार्ट'' शिक्षण गतिविधियों को सुगम बनाने में सहायक हैं।					
11	राजस्थान ''ई–ज्ञान पोर्टल'' शैक्षिक लक्ष्यों को प्राप्त करने का एक सार्थक साधन है।					
12	तकनीकी नवाचार आधारित ऑनलाइन प्लेटफॉर्म ''हवामहल प्रोजेक्ट'' का उपयोग करते हुए शैक्षिक और गैर शैक्षिक सामग्री					
	उपलब्ध करवाने से विद्यार्थियों का आर्थिक व्यय कम होता है।					
	(ब)					
13	ई–अधिगम में शिक्षक से सीधे अंतःक्रिया न होने के कारण विद्यार्थी ई–कंटेंट को गंभीरता से नहीं लेते हैं।					
14	''नो बैग डे'' कार्यक्रम में सहशैक्षिक गतिविधियों यथा– खेलकूद, वाद–विवाद प्रतियोगिता, भाषण, निबन्ध–लेखन इत्यादि गतिविधियों के आयोजन से विद्यार्थियों में सृजनात्मक कौशल का विकास होता है।					
15	''शिक्षा दर्शन'' कार्यक्रग विद्यार्थियों के शैक्षिक स्तर में सुधार लाने में सहायक है।					
16	''शिक्षा दर्शन'' कार्यक्रम केवल कोरोना काल में ही उपयुक्त था, वर्तमान में इसकी आवश्यकता नहीं है।					
17	''शिक्षा वाणी'' कार्यक्रम विद्यार्थियों को गुणवत्तापूर्ण शिक्षण सामग्री उपलब्ध करवाने में सहायक है।					
18	''शिक्षा वाणी'' कार्यक्रम से विद्यालयी शिक्षकों की भूमिका को कम आका जाता है।					

19	वर्चुअल स्कूल शिक्षा के पारम्परिक तरीको को छोड़कर नए वैज्ञानिक तरीको से बच्चो को पढ़ाने में सहायक है।					
20	वर्चुअल स्कूल के कारण भविष्य में शिक्षकों का स्थान कम आका जायेगा।					
21	वर्चुअल स्कूल विश्व–स्तरीय शिक्षा को बढ़ावा देने में सहायक है।					
22	''मिशन स्टार्ट'', से सरकारी स्कूलों में शैक्षणिक स्तर में सुधार होगा।					
23	''मिशन स्टार्ट'' के अंतर्गत ई–लेक्चर के माध्यम से विद्यार्थी अपने अधिगम को सुचारू रख सकते हैं।					
24	''मिशन स्टार्ट'' शिक्षा को नीरस एवं यांत्रिक प्रक्रिया में बदल देता है।					
	(स)					
25	कक्षा मुक्त शिक्षण विद्यार्थियों के पुस्तकीय ज्ञान को उनके बाहरी जीवन से जोड़ने गें राहायक है।					
26	कक्षा मुक्त शिक्षण विद्यार्थियों में अभिव्यक्ति, अन्वेषण, निर्णय लेने, स्व मूल्यांकन करने की क्षमता तथा सृजनात्मकता, रचनात्मकता, आत्मविश्वास आदि कौशलों का विकास करता है।					

27	''बालसभा'' विद्यार्थियों में जीवन कौशल के विकास हेतु आवश्यक है।					
28	''बालसभा'' विद्यार्थियों को अपने विचार रखने और विद्यालय प्रबंधन और विकास में सहभागिता करने हेतु एक मंच प्रदान करता है।					
29	''बालसभा'' से विद्यार्थियों में नेतृत्व क्षमता, निर्णय लेने की क्षगता एवं संप्रेषण क्षगता का विकास होता है।					
30	अभिभावक–शिक्षक मीटिंग में विद्यालय में विद्यार्थियों द्वारा किये गये अच्छे कार्यों की भी चर्चा अभिभावकों से नहीं की जाती है।					
31	विद्यालय प्रबंध द्वारा विद्यार्थियों के सर्वागींण विकास के लिए स्मार्ट कक्षाओं का संचालन किया जाता है।					
32	विद्यार्थियों की समिति का गठन कर उनका सामुदायिक कार्यों में सहयोग प्राप्त करना सराहनीय कार्य है।					
33	विद्यालय में प्रार्थना सभा के दौरान स्वच्छ बालक या स्वच्छ बालिका घोषित करने से विद्यालय में स्वच्छता को बढ़ावा मिलता है।					
34	विद्यालय में आयोजित गतिविधि आधारित शिक्षण, प्रोजेक्ट बेस्ड लर्निंग, शिक्षण					

	अभिनव तकनीक आदि शैक्षिक स्तर को बढ़ाने में सहायक नहीं है।					
35	कक्षा मुक्त शिक्षण एवं बालराभा विद्यालय प्रबंधन द्वारा उठाया गया एक नवाचारी कदम है।					
36	विद्यार्थियों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण, वैज्ञानिक अंर्तदृष्टि एवं डिजिटल समझ हेतु विभिन्न प्रयोगशालाओं का निर्माण किया जाता है।					
	(द)					
37	''राजीव गांधी कैरियर पोर्टल'' विद्यार्थियों को करियर संबंधित सलाह देने में सहायक है।					
38	''राजीव गांधी कैरियर पोर्टल'' विद्यार्थियों को सभी शैक्षणिक कोर्स के बारे में जानकारी प्रदान नहीं करता है।					
39	''ज्ञान संकल्प पोर्टल'' सरकारी स्कूल के बुनियादी ढांचे के विकास के में सहायक है।					
40	''ज्ञान संकल्प'' एक शिक्षा वित्तपोषण पोर्टल है, जो विद्यालयों के सामने आने वाले बड़े वित्तीय घाटे को दूर करता है।					
41	''मुख्यमंत्री विद्यादान कोष'' राजकीय विद्यालयों में आधारभूत संरचनाओं के					
	विकास एवं शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार में सहायक नहीं है।					

42	''पी.एम. ई–विद्या योजना'' डिजिटल लर्निंग को बढावा देती है, जो विद्यार्थियों के विकास हेतु आवश्यक है।					
43	''राजस्थान ई–ज्ञान पोर्टल'' के माध्यम से विद्यार्थियों को विभिन्न प्रकार की पुस्तकों को पढ़ने की सुविधा प्राप्त होती है, जो ज्ञान वृद्धि में सहायक है।					
44	''ई–ज्ञान पोर्टल'' के कारण शिक्षकों का महत्व नकारात्मक रूप से प्रभावित होता है।					
45	''ई–ज्ञान पोर्टल'' पर उपलब्ध शिक्षण सामग्री आपको शिक्षण कार्य में सहायता करती है।					
46	'डायल फ्यूचर' (भविष्य की राह) इनिशिएटिव 10वीं कक्षा उत्तीर्ण कर चुके विद्यार्थियों को आगामी कक्षाओं में विषय चयन का मार्गदर्शन प्रदान करने के लिए करिअर काउंसलिंग के लिए लाभ दायक है।					
47	''क्लारारूम ऑन व्हील्रा'' योजना राजरथान में ग्रामीण बच्चों के लिए घर–घर डिजिटल शिक्षा से लाभान्वित करने का एक अच्छा प्रयास है।					
48	''स्माईल'' कार्यक्रम केवल कोरोना काल में सोशल मीडिया के माध्यम से बच्चो को शिक्षा प्रदान करने हेतु प्रारंभ किया गया था।					

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2026 Page No. : 149-151

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.22679720

ज्ञानरंजन : कम लेखन में रची गई विराट साहित्यिक उपस्थिति

पंकज कुमार सिंह
शोधार्थी, विद्यासागर विश्वविद्यालय, मिदनापुर, प० बंगाल।

हिंदी कथा–साहित्य के साठोत्तरी दौर ने अनेक ऐसे रचनाकार दिए, जिन्होंने कहानी को नई संवेदना, नई भाषा और नए वैचारिक धरातल से समृद्ध किया। इस पीढ़ी के प्रमुख कथाकारों में ज्ञानरंजन का नाम अत्यंत सम्मान के साथ लिया जाता है। उन्होंने लेखन की अधिकता के स्थान पर उसकी गुणवत्ता को महत्व दिया और इसी कारण उनका साहित्यिक अवदान विशिष्ट माना जाता है। उनकी कुल पच्चीस कहानियाँ सपना नहीं में संकलित हैं, किंतु इन कहानियों का प्रभाव उनकी संख्या से कहीं अधिक व्यापक है। उनकी रचनाएँ मध्यवर्गीय जीवन, सामाजिक अंतर्विरोधों, पारिवारिक संबंधों और बदलते समय की जटिलताओं को अत्यंत सघन कलात्मकता के साथ अभिव्यक्त करती हैं। इस दृष्टि से ज्ञानरंजन यह सिद्ध करते हैं कि किसी लेखक का मूल्यांकन उसके लेखन की मात्रा से नहीं, बल्कि उसकी रचनात्मक शक्ति, वैचारिक गहराई और साहित्यिक प्रभाव से किया जाना चाहिए।

ज्ञानरंजन के सीमित लेखन को लेकर समय–समय पर व्यंग्य भी किए गए और उन्हें 'डेढ़ कहानियों का कहानीकार' तक कहा गया। किंतु साहित्य का इतिहास इस प्रकार की टिप्पणियों का समर्थन नहीं करता। हिंदी साहित्य में चन्द्रधर शर्मा 'गुलेरी' ने अत्यल्प लेखन के बावजूद अमिट प्रतिष्ठा प्राप्त की। मोहन राकेश और अज्ञेय जैसे रचनाकारों ने भी अपेक्षाकृत कम लिखकर साहित्य को नई दिशा प्रदान की। इसलिए ज्ञानरंजन का मूल्यांकन भी इसी कसौटी पर किया जाना चाहिए। उनकी कहानियाँ केवल घटनाओं का विवरण नहीं देतीं, बल्कि वे मनुष्य की भीतरी दुनिया, सामाजिक विडंबनाओं और समय की वैचारिक हलचलों को अत्यंत सूक्ष्मता से उद्घाटित करती हैं। उनकी कथा–दृष्टि में यथार्थ केवल बाहरी परिस्थितियों का चित्रण नहीं, बल्कि मनुष्य के भीतर चल रहे संघर्षों की भी अभिव्यक्ति है।

कर्मेन्दु शिशिर ने ज्ञानरंजन की साहित्यिक विशिष्टता को रेखांकित करते हुए लिखा है – "ज्ञानरंजन हिंदी कहानी में एक ऐसे कथाकार हैं जिनकी तुलना सिर्फ ज्ञानरंजन से ही हो सकती है।"[1] यह टिप्पणी उनके कथा–साहित्य की मौलिकता का सटीक मूल्यांकन करती है। वास्तव में ज्ञानरंजन की कहानियाँ किसी स्थापित कथा–रूढ़ि का अनुसरण नहीं करतीं, बल्कि अपनी स्वतंत्र भाषा, शिल्प और वैचारिक संवेदना के कारण अलग पहचान बनाती हैं। उनकी रचनाओं में कथ्य और शिल्प का संतुलन इस प्रकार स्थापित होता है कि पाठक कहानी समाप्त होने के बाद भी उसके विचार–संसार से लंबे समय तक जुड़ा रहता है।

ज्ञानरंजन का साहित्यिक व्यक्तित्व केवल कहानीकार तक सीमित नहीं है। वे हिंदी की प्रतिष्ठित

साहित्यिक पत्रिका पहल के संपादक के रूप में भी अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका निभाते रहे हैं। पहल ने हिंदी साहित्य में वैचारिक बहसों को नई ऊर्जा प्रदान की और अनेक नए रचनाकारों को पहचान दिलाई। इस पत्रिका ने साहित्य को सामाजिक सरोकारों, लोकतांत्रिक मूल्यों और जनपक्षधर चिंतन से जोड़ने का महत्वपूर्ण कार्य किया। ज्ञानरंजन का संपादकीय दृष्टिकोण सदैव रचनात्मक स्वतंत्रता, वैचारिक प्रतिबद्धता और साहित्यिक गुणवत्ता का पक्षधर रहा। इस कारण पहल केवल एक साहित्यिक पत्रिका नहीं, बल्कि हिंदी की प्रगतिशील साहित्यिक चेतना का महत्वपूर्ण मंच बन सकी।

ज्ञानरंजन की अंतिम कहानी अनुभव सन् 1972 में प्रकाशित हुई। इसके बाद उन्होंने कहानी लेखन से लगभग विराम ले लिया। यह निर्णय किसी रचनात्मक थकान का परिणाम नहीं था, बल्कि उनकी साहित्यिक ईमानदारी और आत्मानुशासन का प्रमाण था। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया था – "दरअसल, मध्यवर्गीय जीवन और उसके अनुभवों से निकली रचनाओं में कुछ समय बाद दुहराव आने लगता है। दुहराव मुझे पसंद नहीं। दुहराव से भरा लेखन करने से बेहतर है– नहीं लिखना।"[2] यह कथन स्पष्ट करता है कि उनके लिए साहित्य केवल लेखन नहीं, बल्कि रचनात्मक उत्तरदायित्व था। वे संख्या बढ़ाने के लिए नहीं, बल्कि साहित्य में नया और सार्थक योगदान देने के लिए लिखते थे।

यद्यपि उन्होंने कहानी लेखन कम किया, किंतु उनकी वैचारिक सक्रियता निरंतर बनी रही। इसका प्रमाण उनका चर्चित गद्य–संग्रह कबाड़खाना है। संस्मरण, व्याख्यान, संपादकीय टिप्पणियाँ, साक्षात्कार और वैचारिक लेखों से समृद्ध यह पुस्तक लेखक के व्यापक चिंतन का परिचय देती है। इसमें साहित्य, समाज, राजनीति और संस्कृति पर उनकी निर्भीक तथा स्पष्ट दृष्टि दिखाई देती है। यह संकलन सिद्ध करता है कि ज्ञानरंजन की सृजनात्मक ऊर्जा केवल कहानी तक सीमित नहीं थी, बल्कि उन्होंने गद्य की अन्य विधाओं में भी समान रूप से प्रभावशाली हस्तक्षेप किया। कबाड़खाना को पढ़ते हुए स्पष्ट अनुभव होता है कि लेखक अपने समय के सामाजिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों के प्रति कितना सजग है तथा वह साहित्य को समाज से पृथक मानने के बजाय उसके सक्रिय हस्तक्षेप का माध्यम समझता है।

ज्ञानरंजन के कथा–शिल्प को लेकर आलोचना–जगत में समय–समय पर विभिन्न मत सामने आए हैं। दूधनाथ सिंह ने अपने चर्चित लेख 'लौट आ जो धार' में उनके कथा–विकास पर विचार करते हुए कुछ आलोचनात्मक प्रश्न उठाए हैं। किंतु ज्ञानरंजन की कहानियों तथा उनके गद्य–साहित्य का समग्र अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि उनका लेखन किसी अमूर्त दार्शनिकता का नहीं, बल्कि जीवन के ठोस सामाजिक यथार्थ का साहित्य है। उनकी रचनाओं में विचार और संवेदना का ऐसा संतुलन दिखाई देता है, जो पाठक को केवल बौद्धिक स्तर पर ही नहीं, बल्कि भावनात्मक स्तर पर भी प्रभावित करता है। वे अपने पात्रों और परिस्थितियों के माध्यम से समाज की उन परतों को उद्घाटित करते हैं, जिन्हें सामान्यतः अनदेखा कर दिया जाता है।

ज्ञानरंजन की भाषा उनकी सबसे बड़ी रचनात्मक शक्तियों में से एक है। उनकी अभिव्यक्ति में अनावश्यक अलंकरण नहीं, बल्कि जीवनानुभवों की सहजता और यथार्थ की तीक्ष्णता है। उनकी भाषा बोलचाल की सादगी से जुड़ी होने के बावजूद अत्यंत अर्थगर्भित है। व्यंग्य, विडंबना, आत्मीयता और वैचारिक प्रखरता का जो संतुलन उनकी कहानियों में दिखाई देता है, वह उन्हें समकालीन कथाकारों से अलग पहचान प्रदान करता है। यही कारण है कि उनकी कहानियाँ केवल अपने समय का दस्तावेज नहीं हैं, बल्कि आज भी समान रूप से प्रासंगिक

प्रतीत होती हैं।

उनके गद्य–संग्रह उपस्थिति का अर्थ में ज्ञानरंजन का साहित्यिक और वैचारिक व्यक्तित्व अधिक व्यापक रूप में सामने आता है। इस संग्रह के व्याख्यान, संस्मरण, संवाद और टिप्पणियाँ यह प्रमाणित करती हैं कि वे केवल कहानीकार नहीं, बल्कि अपने समय के सजग नागरिक और प्रतिबद्ध सांस्कृतिक चिंतक भी हैं। फासीवाद, बाजारवाद, लोकतांत्रिक मूल्यों के क्षरण, सांस्कृतिक संकट तथा साहित्य की सामाजिक भूमिका जैसे प्रश्नों पर उनकी दृष्टि अत्यंत स्पष्ट और प्रासंगिक है। वे साहित्य को केवल सौंदर्यबोध की वस्तु नहीं मानते, बल्कि उसे सामाजिक परिवर्तन और वैचारिक प्रतिरोध का प्रभावी माध्यम समझते हैं। यही कारण है कि उनके विचार आज भी समकालीन संदर्भों में उतने ही अर्थपूर्ण प्रतीत होते हैं जितने अपने समय में थे।

ज्ञानरंजन की साहित्यिक दृष्टि का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष उनकी रचनात्मक ईमानदारी है। उन्होंने कभी लोकप्रियता अथवा अधिक लेखन की होड़ में स्वयं को शामिल नहीं किया। उन्होंने वही लिखा, जिसे वे साहित्यिक रूप से आवश्यक और सार्थक मानते थे। यही कारण है कि उनकी प्रत्येक कहानी पाठकों और आलोचकों के बीच गंभीर चर्चा का विषय बनी। उनके लिए साहित्य आत्म–अभिव्यक्ति का माध्यम भर नहीं, बल्कि समाज और समय के प्रति उत्तरदायित्व का निर्वाह भी था। उनकी यही दृष्टि उन्हें हिंदी कहानी की साठोत्तरी पीढ़ी के अन्य कथाकारों से विशिष्ट बनाती है।

समग्रतः ज्ञानरंजन हिंदी साहित्य के उन विरल रचनाकारों में हैं, जिन्होंने कम लिखकर भी स्थायी साहित्यिक उपलब्धि अर्जित की। उनकी कहानियाँ, उनका संपादकीय कर्म और उनका वैचारिक लेखन हिंदी साहित्य को नई दृष्टि, नई संवेदना और नई आलोचनात्मक चेतना प्रदान करते हैं। उन्होंने यह सिद्ध किया कि साहित्य का वास्तविक मूल्य उसकी मात्रा में नहीं, बल्कि उसकी रचनात्मक ऊर्जा और सामाजिक प्रासंगिकता में निहित होता है। आज जब साहित्य में तात्कालिकता और विपुल लेखन की प्रवृत्ति बढ़ती जा रही है, तब ज्ञानरंजन का रचनात्मक अनुशासन और गुणवत्ता के प्रति उनका आग्रह और भी अधिक महत्वपूर्ण प्रतीत होता है। इसलिए उनका साहित्य हिंदी कथा–परंपरा की अमूल्य धरोहर है और आने वाली पीढ़ियों के लिए प्रेरणा का स्रोत बना रहेगा।

संदर्भ सूची :

1. शिशिर, कर्मेन्दु. पहल और ज्ञानरंजन. नई किताब प्रकाशन, 2013, पृ. 95.
2. शंकर, ज्ञानरंजन. पहल, अंक 90, जबलपुर, मध्यप्रदेश, 2008.

मो. 9804688015
ई मेल – pks2022singh@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2026 Page No. : 152-165

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.22679720

Taxonomic Study of *Jatropha gossypifolia* L. (Euphorbiaceae) : A Poisonous Plant of Sagar District, Madhya Pradesh

Brijlal Ahirwar, Research Scholar,

Dr. Pratima Khare

Phytochemical and Toxicological Evaluation of Gloriosa superba L.

Collected from Sagar District, Madhya Pradesh, India

Abstract :

Jatropha gossypifolia L. (Euphorbiaceae), commonly known as bellyache bush, is a poisonous shrub with significant ethnomedicinal importance. Despite its pantropical distribution, comprehensive taxonomic documentation from central India remains inadequate. The present study was conducted in Sagar District, Madhya Pradesh, to elucidate the morphological, anatomical, and phytochemical characteristics of this species. Plant specimens were collected from eight localities during 2023–2024. Morphometric analysis, leaf epidermal anatomy, and phytochemical screening were performed using standard protocols. The species exhibited characteristic purple-reddish pubescent leaves with palmate venation, anomocytic stomata on the abaxial surface, and unisexual flowers in cymose inflorescences. Qualitative screening revealed alkaloids, flavonoids, tannins, saponins, steroids, terpenoids, phenols, and glycosides across plant parts, with leaves showing highest metabolite diversity. Quantitative estimation indicated total phenolic content of 42.35 ± 3.12 mg/g dry weight. The findings contribute to the floristic inventory of Madhya Pradesh and provide baseline data for pharmacological and toxicological investigations.

Keywords : *Jatropha gossypifolia*, Euphorbiaceae, taxonomy, phytochemistry, stomata, Sagar District, poisonous plants

1. Introduction :

The family Euphorbiaceae comprises approximately 300 genera and 7,500 species distributed predominantly across tropical regions (Webster, 1994). The genus *Jatropha* L.

includes approximately 170 species with significant economic, medicinal, and toxicological importance (Dehgan & Webster, 1979). *Jatropha gossypifolia* L., commonly called bellyache bush, is a perennial shrub native to Central and South America that has become naturalized throughout the tropical belt, including India (Félix-Silva et al., 2014). The species thrives in disturbed habitats, wastelands, and agricultural fields, often exhibiting invasive tendencies (Bebawi, 2022).

In India, *J. gossypifolia* has been reported from Maharashtra, Gujarat, Rajasthan, Uttar Pradesh, and Madhya Pradesh, where it is known by vernacular names such as *Ratanjot* (Hindi) and *Kala erand* (Marathi) (Sabu, 2006). Its characteristic purple-reddish foliage, palmately lobed leaves, and small red flowers with yellow centers distinguish it from congeners such as *Jatropha curcas* L. (Dehgan & Schutzman, 1983). However, intraspecific morphological variability poses challenges for accurate field identification.

The species occupies a paradoxical position in traditional medicine. Indigenous communities across Africa, Asia, and Latin America utilize leaves, roots, latex, and seeds for treating gastrointestinal disorders, skin infections, hypertension, and cancer (Félix-Silva et al., 2014; Fatokun et al., 2016). Pharmacological studies have demonstrated antimicrobial, anti-inflammatory, antioxidant, and antineoplastic activities (Sabandar et al., 2013). Nevertheless, therapeutic utility is constrained by pronounced toxicity. The latex and seeds contain diterpene esters, toxalbumins, and curcin-like proteins causing dermatitis, gastrointestinal hemorrhage, and cardiovascular depression (Adolf et al., 1984; Devappa et al., 2010).

Madhya Pradesh harbors diverse phytogeographic zones, yet comprehensive taxonomic treatments for many medicinally important species remain incomplete. Sagar District represents a transitional zone between the Gangetic plain and Deccan plateau, characterized by tropical dry deciduous forests and scrublands. Despite the ecological relevance of *J. gossypifolia*, systematic studies documenting its morphological variability, anatomical features, and phytochemical profiles from this region are absent. The present investigation was undertaken to document morphological characteristics, investigate leaf epidermal anatomy, conduct phytochemical screening, and assess toxicological implications in the context of local ethnobotanical practices.

2. Materials and Methods :

2.1 Study Area :

The study was conducted in Sagar District (23°50′–24°10′ N, 78°40′–79°15′ E), Madhya Pradesh, India, covering approximately 10,252 km² at an average elevation of 427 m. The climate is tropical savanna (Köppen Aw) with mean annual rainfall of 1,200–1,400 mm (Directorate of Census Operations, 2011). Field surveys were carried out across eight localities: Sagar City, Rahatgarh, Deori, Banda, Shahgarh, Kesli, Garhakota, and Rehli, selected to capture ecological amplitude across varying disturbance regimes.

2.2 Collection and Identification :

Specimens were collected during flowering and fruiting phases (August–November 2023 and July–October 2024) following standard herbarium techniques (Jain & Rao, 1977). Morphometric data were recorded using measuring tape, digital calipers, and hand lens. Specimens were pressed, dried, and deposited at the SAG Herbarium, Dr. Hari Singh Gour University, Sagar. Identification was confirmed using regional floras (Sabu, 2006; Botanical Survey of India, 2013) and authenticated at the Botanical Survey of India, Allahabad.

2.3 Morphological Analysis :

Twenty-five mature individuals per locality were selected for morphometric analysis. Parameters included plant height, stem diameter, leaf length and width, petiole length, number of leaf lobes, inflorescence length, flower diameter, fruit dimensions, and seed measurements. Color descriptions followed the Royal Horticultural Society (RHS) Colour Chart.

2.4 Anatomical Studies :

Leaf samples were fixed in FAA solution, dehydrated through ethanol series, and embedded in paraffin wax (Johansen, 1940). Transverse sections (10–12 µm) were stained with safranin-fast green. For epidermal studies, the peeling method was employed using Jeffrey's macerating fluid. Stomatal types were classified according to Metcalfe and Chalk (1950), and stomatal frequency was calculated at 400× magnification.

2.5 Phytochemical Analysis :

Shade-dried plant materials (leaves, stems, roots, seeds, latex) were pulverized and subjected to sequential Soxhlet extraction. Qualitative screening followed standard tests for alkaloids, flavonoids, tannins, saponins, steroids, terpenoids, phenols, glycosides, coumarins, and lignans (Harborne, 1998; Trease & Evans, 2002). Total phenolics were determined by Folin-Ciocalteu method (Singleton & Rossi, 1965), flavonoids by aluminum chloride method (Chang et al., 2002), tannins by vanillin-HCl method (Broadhurst & Jones, 1978), and alkaloids gravimetrically (Sreevidya & Mehrotra, 2003). All assays were performed in triplicate.

2.6 Data Analysis :

Descriptive statistics and one-way ANOVA followed by Tukey's post-hoc test were applied using SPSS version 26.0. Significance was set at $p < 0.05$.

3. Results :

3.1 Habit and Habitat :

Jatropha gossypifolia grew as a perennial shrub attaining heights of 1.5–3.0 m. The species preferred open, disturbed habitats including roadside thickets, railway embankments, fallow fields, and rocky outcrops. Population density varied significantly across localities, with highest density at Garhakota wastelands (12 individuals per 100 m^2) and lowest at Deori riverine vegetation (3 individuals per 100 m^2).

3.2 Morphological Characteristics :

Morphological features are summarized in **Table 1**. Plants exhibited erect to spreading habit with multiple stems arising from the base. Young stems were succulent, greenish-purple, and densely pubescent, becoming woody and grayish-brown with age.

Table 1 Morphological Characteristics of *Jatropha gossypifolia* L. from Sagar District

Character	Description	Mean ± SD (n = 25)
Habit	Erect to spreading perennial shrub	—
Plant height	Up to 3 m	2.14 ± 0.58 m
Stem diameter (at 10 cm)	Cylindrical, woody	2.83 ± 0.71 cm
Leaf arrangement	Alternate, spiral phyllotaxy	—
Leaf type	Simple, palmately lobed (3 5 lobes)	3.84 ± 0.75 lobes
Leaf length	Variable, acuminate apex	12.47 ⊥ 2.36 cm
Leaf width	Broadest at middle	10.23 ± 1.89 cm
Petiole length	Pubescent, grooved adaxially	6.82 ± 1.24 cm
Leaf margin	Serrate to crenate	—
Leaf base	Cordate to truncate	—
Leaf apex	Acuminate	—

Leaf color (adaxial)	Dark purple-red (RHS 59A)	—
Leaf color (abaxial)	Pale green-purple (RHS 183A)	—
Inflorescence type	Terminal and axillary cymes	8.45 ± 2.13 cm long
Flower color	Red with yellow center	—
Flower diameter	Actinomorphic, unisexual	8.32 + 1.15 mm
Sepals	5, connate at base, pubescent	4.18 ± 0.62 mm
Petals	5, free, obovate	5.24 ± 0.78 mm
Stamens (male)	8–10, diadelphous	—
Ovary (female)	Superior, trilocular	2.15 ± 0.34 mm
Fruit type	Trilocular capsule	2.87 ± 0.42 cm long
Fruit width	Ovoid-globose	2.14 ± 0.31 cm
Seed length	Ellipsoid-ovoid, mottled brown-black	1.52 ± 0.18 cm
Seed width	Carunculate at hilum	0.98 ± 0.12 cm

Leaves were simple, alternate, and palmately lobed with 3–5 primary lobes. The lamina measured 12.47 ± 2.36 cm in length and 10.23 ± 1.89 cm in width, with cordate to truncate base and acuminate apex. The adaxial surface was dark purple-red with dense stellate pubescence,

while the abaxial surface was paler with prominent reticulate venation. The inflorescence was a terminal or axillary cymose panicle bearing numerous unisexual flowers, with male flowers more numerous than females. The fruit was a trilocular, ovoid-globose capsule dehiscing loculicidally to release three ellipsoid, mottled brown-black seeds per locule. **Figure 1** illustrates the key morphological features.



Fig 1 Morphological Features of Jatropha gossypifolia L.

3.3 Distribution Pattern :

Jatropha gossypifolia was recorded from all eight surveyed localities, indicating widespread establishment across diverse ecological settings . The species was most abundant in wasteland and roadside habitats with high light intensity and low competition. Dense thickets were observed at Garhakota and Shahgarh intermixed with *Lantana camara*, *Calotropis gigantea*, and *Euphorbia hirta*. The distribution map reveals population concentration along major transportation corridors, suggesting anthropogenic-assisted dispersal.

3.4 Leaf Anatomy :

Transverse sections revealed dorsiventral structure with distinct epidermis, palisade mesophyll, and spongy mesophyll (**Figure 4A**). The upper epidermis consisted of rectangular parenchymatous cells with a thin cuticle. Unicellular and multicellular trichomes were present on

both surfaces, with higher density abaxially. Palisade tissue comprised 2–3 layers of elongated cells rich in chloroplasts. Spongy mesophyll was 4–5 layers thick with irregular cells and extensive intercellular spaces.

The lower epidermis harbored anomocytic stomata with kidney-shaped guard cells surrounded by morphologically undifferentiated epidermal cells . Stomata were exclusively abaxial (hypostomatic) with a frequency of 142 ± 18 per mm². The venation pattern was palmate-pinnate with 5–7 primary veins radiating from the leaf base and anastomosing through reticulate secondary veins .

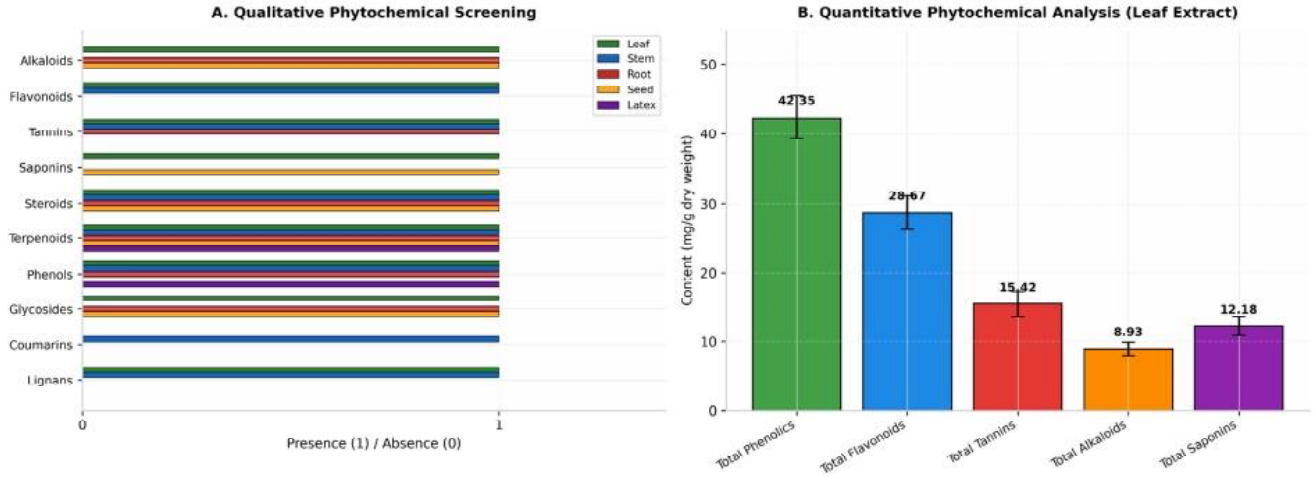


Figure 3 : Phytochemical Analysis

3.5 Phytochemical Screening :

Qualitative analysis revealed diverse secondary metabolites (**Table 2**;). Leaves exhibited highest phytochemical diversity, testing positive for alkaloids, flavonoids, tannins, saponins, steroids, terpenoids, phenols, glycosides, and lignans. Stem extracts contained flavonoids, tannins, steroids, terpenoids, phenols, and coumarins. Root extracts showed alkaloids, tannins, steroids, terpenoids, phenols, and glycosides. Seeds tested positive for alkaloids, saponins, steroids, terpenoids, and glycosides. Latex contained terpenoids and phenols only.

Table 2 Qualitative Phytochemical Screening of *Jatropha gossypifolia* L. Extracts

Phytochemical Class	Test Method	Leaf	Stem	Root	Seed	Latex
Alkaloids	Mayer's test	+	–	+	+	–
Flavonoids	Shinoda test	+	+	–	–	–

Tannins	Ferric chloride test	+	+	+	–	–
Saponins	Froth test	+	–	–	+	–
Steroids	Salkowski test	+	+	+	+	–
Terpenoids	Salkowski test	+	+	+	+	+
Phenols	Ferric chloride test	+	+	+	–	+
Glycosides	Keller-Kiliani test	+	–	+	+	–
Coumarins	Fluorescence test	–	+	–	–	–
Lignans	Phloroglucinol-HCl test	+	+	–	–	–

Note. (+) = Present; (–) = Absent.

Quantitative estimation in methanolic leaf extract revealed total phenolics of 42.35 ± 3.12 mg GAE/g DW, total flavonoids of 28.67 ± 2.45 mg QE/g DW, total tannins of 15.42 ± 1.87 mg TAE/g DW, total saponins of 12.18 ± 1.34 mg DE/g DW, and total alkaloids of 8.93 ± 0.95 mg CE/g DW (; **Table 3**).

Table 3 Quantitative Phytochemical Content in Methanolic Leaf Extract

Phytochemical Parameter	**Content (mg/g DW)**	**Standard Equivalent**
Total Phenolics	42.35 ± 3.12	Gallic acid
Total Flavonoids	28.67 ± 2.45	Quercetin

Total Tannins	15.42 ± 1.87	Tannic acid
Total Saponins	12.18 ± 1.34	Diosgenin
Total Alkaloids	8.93 ± 0.95	Caffeine

Note. Values are mean ± SD (n = 3). GAE = Gallic acid equivalent; QE = Quercetin equivalent; TAE = Tannic acid equivalent; DE = Diosgenin equivalent; CE = Caffeine equivalent; DW = Dry weight.

3.6 Phenological Observations :

New leaf flush occurred during March–April. Flowering was observed during July–November, with peak anthesis in August–September. Fruit development commenced in September, with mature capsules dehiscing during October–December. Seed dispersal coincided with the dry season (January–March). The species demonstrated protandry, with male flowers opening 2–3 days before female flowers within the same inflorescence.

3.7 Toxicological Considerations :

Field observations revealed several poisoning incidents in Sagar District. The latex was extremely caustic, causing immediate burning and blistering upon skin contact. Three pediatric poisoning cases were reported from Shahgarh and Garhakota where children consumed 2–3 seeds. Livestock owners reported occasional mortality in goats and sheep browsing on foliage during fodder scarcity. Toxicological manifestations are summarized in **Table 4**.

Table 4 Toxicological Manifestations of *Jatropha gossypifolia* L. Poisoning

Aspect	**Details**
Toxic Parts	Seeds (highest toxicity), latex, leaves, roots (moderate toxicity)
Primary Toxins	Phorbol esters, toxalbumins (curcin-like proteins), ricinine, diterpenes (jatropholone, jatrophone)
Route of Exposure	Oral ingestion (seeds), dermal contact (latex), ocular exposure (latex)

Human Symptoms	Acute abdominal pain, burning throat, nausea, vomiting, diarrhea, dehydration, hemorrhagic gastroenteritis, dizziness, bradycardia
Veterinary Symptoms	Anorexia, ruminal stasis, colic, dyspnea, muscular weakness, convulsions; lethal dose in sheep: 10 g/kg fresh leaves
Dermal Effects	Acute contact dermatitis, blistering, erythema, pruritus
First Aid Measures	Gastric lavage with activated charcoal (oral), copious water irrigation (dermal/ocular), fluid replacement
Clinical Management	Supportive therapy, antiemetics, antidiarrheals, corticosteroids (dermal), atropine (bradycardia)
Mortality Risk	High in children and small ruminants; moderate in adults with prompt treatment

Note. Compiled from field surveys and literature (Adolf et al., 1984; Félix-Silva et al., 2014; Devappa et al., 2010).

4. Discussion :

The present investigation provides the first comprehensive taxonomic account of *Jatropha gossypifolia* from Sagar District, integrating morphological, anatomical, and phytochemical perspectives. The morphological attributes align closely with protologue descriptions (Linnaeus, 1753; Dehgan & Webster, 1979; Sabu, 2006) while revealing subtle quantitative variations reflecting local edaphoclimatic adaptations.

Mean leaf dimensions (12.47 × 10.23 cm) fall within the range reported for Indian populations (10–16 cm × 8–13 cm) but are marginally smaller than Brazilian specimens (16–19 cm × 10–13 cm) described by Félix-Silva et al. (2014). This reduction may reflect semi-arid conditions and lower soil moisture in the Bundelkhand region. The purple-reddish leaf coloration results from anthocyanin accumulation, possibly serving photoprotective functions under high irradiance (Gould, 2004). Dense stellate pubescence likely functions as anti-herbivore defense while reducing transpirational water loss (Werker, 2000).

The anomocytic stomatal type and hypostomatic distribution are consistent with Euphorbiaceae characteristics (Metcalfe & Chalk, 1950). The stomatal frequency of 142 per mm²

is comparable to *Jatropha curcas* (128–156 per mm²) but lower than *Jatropha podagrica* (185–210 per mm²) (Raina et al., 2021). Exclusive abaxial stomatal localization represents an adaptive strategy to minimize direct solar exposure, optimizing water-use efficiency in water-limited environments.

Phytochemically, the presence of alkaloids, flavonoids, tannins, saponins, steroids, terpenoids, and phenols corroborates findings of Seth and Sarin (2010) and Nwokocha et al. (2011). The dominance of phenolics (42.35 mg GAE/g DW) and flavonoids (28.67 mg QE/g DW) suggests substantial antioxidant capacity underlying documented anti-inflammatory and hepatoprotective properties (Kharat et al., 2011). The presence of coumarins and lignans in stem extracts is noteworthy, as these compounds have been implicated in anticoagulant and antineoplastic activities (Das et al., 1999, 2003).

The toxicological profile mirrors well-documented global toxicity. Seeds constitute the most hazardous part due to phorbol esters, notably 12-deoxy-16-hydroxyphorbol, which acts as a potent protein kinase C activator (Adolf et al., 1984). Toxalbumins cause erythrocyte agglutination and hemolysis, while diterpenes jatropholone and jatrophone exhibit cytotoxic activity against cancer cell lines (Shari et al., 2023; Li et al., 2020). The lethal dose of 40 g/kg fresh leaves for sheep (Félix-Silva et al., 2014) aligns with local veterinary observations in Sagar District.

Ecologically, the invasive potential of *J. gossypifolia* warrants monitoring. Its ability to colonize disturbed habitats, produce abundant viable seeds, and tolerate wide edaphic conditions positions it as a potential biodiversity threat (Bebawi, 2022). Association with transportation corridors suggests human-mediated dispersal (Puth & Post, 2005). The traditional utilization by healers in Sagar District presents a complex risk-benefit scenario. While decoctions treat skin ailments and gastrointestinal disorders, the narrow therapeutic index necessitates rigorous standardization (Félix-Silva et al., 2014). Traditional use of dried rather than fresh material may partially mitigate acute toxicity, as drying degrades labile diterpenes (Mariz et al., 2013). However, chronic exposure may pose hepatorenal risks, as demonstrated in Wistar rats administered ethanolic root extracts (Félix-Silva et al., 2014).

Comparative analysis reveals *J. gossypifolia* possesses a more diverse phytochemical profile than *J. curcas*. While *J. curcas* seeds contain higher lipids (35–40%), *J. gossypifolia* seeds are richer in nitrogenous compounds and alkaloids, making them less suitable for biodiesel but potentially more valuable pharmaceutically (Majeed et al., 2025). The latex has demonstrated molluscicidal activity against freshwater snails, suggesting utility in schistosomiasis control (Sukumaran et al., 1994).

This study contributes to Euphorbiaceae diversity documentation in Madhya Pradesh. The Botanical Survey of India (2013) documented approximately 25 Euphorbiaceae species from the state. The present record from eight Sagar District localities extends the known distribution and fills a significant regional flora gap. Future revisions should incorporate molecular

phylogenetic data to resolve taxonomic relationships within *Jatropha*, particularly distinctions between *J. gossypifolia* varieties.

5. Conclusion :

The taxonomic investigation of *Jatropha gossypifolia* from Sagar District provides detailed morphological, anatomical, and phytochemical characterization of this medicinally important yet highly poisonous species. The study confirms diagnostic features including purple-reddish palmately lobed leaves, anomocytic abaxial stomata, and trilocular dehiscent capsules. Phytochemical analysis revealed rich secondary metabolite diversity, with leaves exhibiting highest phenolic and flavonoid concentrations. The widespread distribution and documented toxicity to humans and livestock necessitate community awareness programs and proper labeling of traditional preparations. The findings establish baseline data for future pharmacological investigations and contribute to central Indian floristic documentation. Further research should focus on bioactive compound isolation, chronic toxicological risk assessment, and sustainable management strategies for this invasive yet potentially valuable medicinal plant.

References :

1. Adolf, W., Sorg, B., Hergenhahn, M., & Hecker, E. (1984). Irritant phorbol derivatives from four *Jatropha* species. *Phytochemistry*, *23*(1), 129–132. https://doi.org/10.1016/S0031-9422(00)80282-4
2. Bebawi, F. F. (2022). *Jatropha gossypiifolia* (bellyache bush). *CABI Compendium*. https://doi.org/10.1079/cabicompendium.28394
3. Botanical Survey of India. (2013). *Supplement to the flora of Madhya Pradesh*. Botanical Survey of India, Ministry of Environment and Forests, Government of India.
4. Broadhurst, R. B., & Jones, W. T. (1978). Analysis of condensed tannins using acidified vanillin. *Journal of the Science of Food and Agriculture*, *29*(9), 788–794. https://doi.org/10.1002/jsfa.2740290908
5. Chang, C. C., Yang, M. H., Wen, H. M., & Chern, J. C. (2002). Estimation of total flavonoid content in propolis by two complementary colorimetric methods. *Journal of Food and Drug Analysis*, *10*(3), 178–182. https://doi.org/10.38212/2224-6614.2748
6. Das, B., Anjani, G., & Rao, Y. K. (1999). Gossypidien, a lignan from stems of *Jatropha gossypifolia*. *Phytochemistry*, *51*(1), 115–117. https://doi.org/10.1016/S0031-9422(98)00659-4
7. Das, B., Kashinatham, A., Venkataiah, B., Srinivas, K. V. N. S., Mahender, G., & Reddy, M. R. (2003). Cleomiscosin A, a coumarino-lignoid from *Jatropha gossypifolia*. *Biochemical Systematics and Ecology*, *31*(10), 1189–1191. https://doi.org/10.1016/S0305-1978(03)00054-4
8. Dehgan, B., & Schutzman, B. (1983). Taxonomic revision of the genus *Jatropha* L. (Euphorbiaceae) in the United States. *Gentes Herbarum*, *8*(3), 201–222.
9. Dehgan, B., & Webster, G. L. (1979). Morphology and infrageneric relationships of the genus *Jatropha* (Euphorbiaceae). *University of California Publications in Botany*, *74*, 1–73.
10. Devappa, R. K., Makkar, H. P. S., & Becker, K. (2010). *Jatropha* toxicity—A review. *Journal of Toxicology and Environmental Health, Part B*, *13*(6), 476–507. https://doi.org/10.1080/10937404.2010.486900

11. Directorate of Census Operations. (2011). *District census handbook: Sagar*. Office of the Registrar General and Census Commissioner, Ministry of Home Affairs, Government of India.
12. Fatokun, O., Akindele, A. J., & Oyetayo, V. O. (2016). Phytochemistry, ethnomedicine and pharmacology of *Jatropha gossypifolia* L.: A review. *Archives of Current Research International*, *5*(3), 1–21. https://doi.org/10.9734/ACRI/2016/28793
13. Félix-Silva, J., Silva-Junior, A. A., Zucolotto, S. M., & Fernandes-Pedrosa, M. F. (2014). *Jatropha gossypiifolia* L. (Euphorbiaceae): A review of traditional uses, phytochemistry, pharmacology, and toxicology of this medicinal plant. *Evidence-Based Complementary and Alternative Medicine*, *2014*, Article 369204. https://doi.org/10.1155/2014/369204
14. Gould, K. S. (2004). Nature's Swiss army knife: The diverse protective roles of anthocyanins in leaves. *Journal of Biomedicine and Biotechnology*, *2004*(5), 314–320. https://doi.org/10.1155/S1110724304406147
15. Harborne, A. J. (1998). *Phytochemical methods: A guide to modern techniques of plant analysis* (3rd ed.). Chapman & Hall.
16. Jain, S. K., & Rao, R. R. (1977). *A handbook of field and herbarium methods*. Today & Tomorrow's Printers and Publishers.
17. Johansen, D. A. (1940). *Plant microtechnique*. McGraw-Hill.
18. Kharat, A. R., Dolui, A. K., & Das, S. (2011). Free radical scavenging potential of *Jatropha gossypifolia*. *Asian Journal of Chemistry*, *23*(2), 799–801.
19. Li, K., Li, Y., Li, C. M., Ding, L., & Gao, Y. (2020). Anti-viral activity of jatrophone against RSV-induced respiratory infection via increase in interferon-γ generating dendritic cells. *Environmental Toxicology*, *35*(8), 888–894. https://doi.org/10.1002/tox.22925
20. Linnaeus, C. (1753). *Species plantarum* (Vol. 2). Laurentius Salvius.
21. Majeed, I., Ahmad, M., Zafar, M., Sultana, S., & Bahadur, S. (2025). Ethnotraditional uses and potential industrial and nutritional applications of secondary metabolites of genus *Jatropha* L. (Euphorbiaceae): A review. *Journal of Agriculture and Food Research*, *21*, 101861. https://doi.org/10.1016/j.jafr.2025.101861
22. Mariz, S. R. A., Santos, P. M. P., Santos, R. C. M., & Pereira, V. L. A. (2013). Medicinal plants used in the treatment of poisoning by venomous animals in the state of Piauí, Northeast Brazil. *Journal of Ethnopharmacology*, *149*(3), 671–676. https://doi.org/10.1016/j.jep.2013.07.010
23. Metcalfe, C. R., & Chalk, L. (1950). *Anatomy of the dicotyledons* (Vol. 1–2). Clarendon Press.
24. Nwokocha, N., Blessing, A., Agbagwa, I. O., & Okoli, B. E. (2011). Comparative phytochemical screening of *Jatropha* L. species in the Niger Delta. *Research Journal of Phytochemistry*, *5*(2), 107–114. https://doi.org/10.3923/rjphyto.2011.107.114
25. Puth, L. A., & Post, T. E. (2005). *Jatropha gossypifolia* L. (Euphorbiaceae): A potential invasive in Florida? *Castanea*, *70*(3), 215–217. https://doi.org/10.2179/0008-7475(2005)070[0215:JGLEAP]2.0.CO;2
26. Raina, A. P., Kumari, M., & Verma, A. K. (2021). Comparative morphological and anatomical studies in the genus *Jatropha* L. (Euphorbiaceae). *Plant Systematics and Evolution*, *307*(3), 1–15. https://doi.org/10.1007/s00606-021-01752-3

27. Sabandar, C. W., Ahmat, N., Jaafar, F. M., & Sahidin, I. (2013). Medicinal property, phytochemistry and pharmacology of several *Jatropha* species (Euphorbiaceae): A review. *Phytochemistry*, *85*, 7–29. https://doi.org/10.1016/j.phytochem.2012.10.009
28. Sabu, T. R. (2006). *Euphorbiaceae of India* (Vol. 1). Bishen Singh Mahendra Pal Singh.
29. Seth, R., & Sarin, R. (2010). Analysis of the phytochemical content and anti-microbial activity of *Jatropha gossypifolia* L. *Archives of Applied Science Research*, *2*(5), 285–291.
30. Shari, K., Al-Khayri, J. M., Sahana, D. A., Nagella, P., Joseph, B. V., & Naik, P. M. (2023). Jatrophone: A cytotoxic macrocyclic diterpene targeting PI3K/AKT/NF-κB pathway, inducing apoptosis and autophagy in resistant breast cancer cells. *BMC Complementary Medicine and Therapies*, *23*(1), Article 241. https://doi.org/10.1186/s12906-023-04113-6
31. Singleton, V. L., & Rossi, J. A. (1965). Colorimetry of total phenolics with phosphomolybdic-phosphotungstic acid reagents. *American Journal of Enology and Viticulture*, *16*(3), 144–158.
32. Sreevidya, N., & Mehrotra, S. (2003). Spectrophotometric method for estimation of alkaloids precipitated by Dragendorff's reagent in plant materials. *Journal of AOAC International*, *86*(6), 1124–1127. https://doi.org/10.1093/jaoac/86.6.1124
33. Sukumaran, D., Parashar, B. D., Gupta, A. K., Jaiswal, N., & Rao, K. M. (1994). Molluscicidal activity of *Jatropha gossypifolia* L. (Euphorbiaceae) against *Lymnaea luteola* and *Indoplanorbis exustus*. *Journal of Medical and Applied Malacology*, *6*, 49–54.
34. Trease, G. E., & Evans, W. C. (2002). *Pharmacognosy* (15th ed.). W.B. Saunders.
35. Vijayakumar, S., Morvin Yabesh, J. E., Prabhu, S., & Manikandan, R. (2016). Ethnobotanical survey of medicinal plants in the Pachamalai Hills of Tamil Nadu, India. *Journal of Applied Pharmaceutical Science*, *6*(10), 121–129. https://doi.org/10.7324/JAPS.2016.601019
36. Webster, G. L. (1994). Synopsis of the genera and suprageneric taxa of Euphorbiaceae. *Annals of the Missouri Botanical Garden*, *81*(1), 33–144. https://doi.org/10.2307/2399909
37. Werker, E. (2000). Trichome diversity and development. *Advances in Botanical Research*, *31*, 1–35. https://doi.org/10.1016/S0065-2296(00)31005-9

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2026 Page No. : 166-172

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.22679720

हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श : एक अध्ययन

श्रीमती रश्मि कुर्मी
सहायक प्राध्यापक, हिंदी,
शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय गढ़ाकोटा, जिला सागर, मध्य प्रदेश।

सारांश :

हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श पिछली कुछ दशकों में एक महत्वपूर्ण आलोचनात्मक दृष्टि के रूप में उभरा है। यह शोध-पत्र हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श के विकास, इसकी प्रमुख विषय-वस्तुओं और सैद्धांतिक आधारों का विश्लेषण करता है। आदिवासी लेखन ने न केवल पारंपरिक हिंदी साहित्य की विषय-सीमाओं का विस्तार किया है, बल्कि पहचान, प्रामाणिकता, पर्यावरण और सामाजिक न्याय जैसे मुद्दों को भी केंद्र में रखा है। यह अध्ययन झारखंड के आदिवासी लेखकों की कहानियों और कविताओं के संदर्भ में इस विमर्श की बहुआयामी प्रकृति को रेखांकित करता है। शोध-पत्र यह तर्क प्रस्तुत करता है कि आदिवासी विमर्श केवल साहित्यिक आंदोलन नहीं है, बल्कि यह सामाजिक-राजनीतिक चेतना की अभिव्यक्ति है, जो उपेक्षित समुदायों के संघर्ष, उनकी संस्कृति, और प्रकृति के साथ उनके गहरे संबंधों को प्रतिबिंबित करता है।

1. परिचय :

हिंदी साहित्य में विमर्श-परक आलोचना ने 1980-90 के दशक में दलित विमर्श के उदय के बाद नए आयाम प्राप्त किए। इसी कड़ी में आदिवासी विमर्श ने भी अपनी पहचान बनाई, हालांकि इसकी शुरुआत इससे पहले ही हो चुकी थी ।आदिवासी विमर्श वह सैद्धांतिक ढाँचा है, जो साहित्य में आदिवासी समाज, उनकी संस्कृति, उनके संघर्ष, और उनके प्रति सामाजिक-राजनीतिक दृष्टिकोण का अध्ययन करता है ।

यह विमर्श इस बात पर बल देता है कि आदिवासी अनुभव और दृष्टिकोण (जिसे *अनुभूति* कहा गया है) गैर-आदिवासी लेखकों की सहानुभूति (*सहानुभूति*) से मौलिक रूप से भिन्न हैं ।यह शोध-पत्र हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श के विभिन्न पहलुओं—इसके उद्भव, प्रमुख विषयों, प्रतिनिधि लेखकों, और आलोचनात्मक दृष्टियों—का विश्लेषण करता है।

2. विमर्श की अवधारणा और आदिवासी विमर्श :

'विमर्श' शब्द संस्कृत की 'वि' + 'मृष्' धातु से बना है, जिसका अर्थ है गहन चिंतन, विचार-विमर्श, या समीक्षात्मक विश्लेषण। साहित्यिक संदर्भ में विमर्श किसी विशेष विषय, समुदाय, या विचारधारा से संबंधित सैद्धांतिक चर्चा और आलोचनात्मक मूल्यांकन की प्रक्रिया है।

आदिवासी विमर्श का प्रारंभ सन् 1980 के आसपास माना जाता है, जब दलित साहित्य के उदय के बाद हाशिए के समुदायों की आवाज़ साहित्यिक मंच पर तीव्रता से उभरी ।किंतु वर्तमान शोध इस मान्यता को चुनौती देता है, क्योंकि एलिस एक्का जैसी लेखिका सन् 1960 के दशक में ही आदिवासी कहानियाँ लिख रही थीं।

3. आदिवासी विमर्श की मुख्य विषय-वस्तुएँ

3.1. पहचान और प्रामाणिकता (Identity and Authenticity)

आदिवासी विमर्श का केंद्रीय प्रश्न यह है कि आदिवासी लेखन की 'प्रामाणिकता' क्या है और उसे कैसे परिभाषित किया जाए। इस विमर्श में 'अनुभूति' (स्व-अनुभव) और 'सहानुभूति' (सहानुभूति/समवेदना) का द्वंद्व महत्वपूर्ण है ।आदिवासी लेखकों का दावा है कि केवल वे ही अपने समाज की वास्तविकता को यथार्थ रूप में चित्रित कर सकते हैं, जबकि गैर-आदिवासी लेखकों की दृष्टि में सहानुभूति होते हुए भी वह बाहरी दृष्टि बनी रहती है।

हालाँकि, शोधकर्ता अरमिन किओकेटी का तर्क है कि आदिवासी लेखक भी मुख्यधारा की शिक्षा और सांस्कृतिक प्रभावों से अछूते नहीं हैं, और उनका लेखन *मौलिक रूप से भिन्न* नहीं है, बल्कि मुख्यधारा से गहराई से जुड़ा हुआ है ।

3.2. पर्यावरण और पारिस्थितिकी :

आदिवासी लेखन में पर्यावरणीय चेतना एक प्रमुख विषय है। झारखंड के आदिवासी लेखक पीटर पॉल एक्का, रोज केरकेट्टा, और सिकरा दास तिर्की की कहानियाँ खनन, बाँध-निर्माण, और औद्योगीकरण के कारण होने वाले पर्यावरणीय विनाश और विस्थापन को रेखांकित करती हैं। ये कहानियाँ सामाजिक अन्याय को पर्यावरणीय मुद्दों से जोड़ती हैं और यह दर्शाती हैं कि आदिवासियों का प्रकृति के साथ संबंध केवल जीविका का साधन नहीं, बल्कि उनकी सांस्कृतिक पहचान का अभिन्न अंग है।

3.3. शोषण और प्रतिरोध :

आदिवासी विमर्श का एक अन्य महत्वपूर्ण विषय सामाजिक-आर्थिक शोषण और प्रतिरोध है। इन कहानियों में बेईमान जमींदार, साहूकार, ठेकेदार, और सरकारी नीतियों द्वारा आदिवासियों के दोहन का चित्रण मिलता है। साथ ही, नक्सलवाद और सशस्त्र प्रतिरोध जैसे विषय भी इन कहानियों में स्थान पाते हैं, जो आदिवासी समाज के भीतर भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों को दर्शाते हैं।

3.4. लिंग और नारी-विमर्श :

आदिवासी विमर्श में स्त्री-चेतना का विशेष स्थान है। जैकिंटा केरकेट्टा और निर्मला पुतुल जैसी आदिवासी कवयित्रियाँ अपनी कविताओं में स्त्री-पहचान, पितृसत्ता, और अंतर्विभागीय पहचान

(*intersectional identity*) के मुद्दे उठाती हैं। उनका लेखन आदिवासी स्त्री के संघर्ष को केवल समुदाय के बाहर नहीं, बल्कि उसके भीतर भी रेखांकित करता है।

4. प्रमुख आदिवासी लेखक एवं उनका योगदान :

हिंदी साहित्य के आदिवासी विमर्श को समृद्ध करने वाले प्रमुख लेखकों में पीटर पॉल एक्का (1953–2018) का स्थान अग्रणी है। उनकी कहानियाँ झारखंड के खनन-प्रभावित क्षेत्रों में हो रहे पर्यावरण विनाश, विस्थापन और आदिवासी अस्मिता के संकट को मार्मिकता से चित्रित करती हैं। रोज केरकेट्टा (1940–2025) आदिवासी साहित्य की पथ-प्रदर्शिका रही हैं; उनकी रचनाएँ सामाजिक-पारिस्थितिकीय समस्याओं को केंद्रित करती हैं तथा उत्पीड़ित समाज की पीड़ा को अभिव्यंजित करती हैं।

समकालीन कवयित्री जैकिंटा केरकेट्टा ने अपनी कविताओं में स्त्री-पहचान, पितृसत्तात्मक मानसिकता और आदिवासी समाज में स्त्री की दयनीय स्थिति को गहन चिंतन का विषय बनाया है। निर्मला पुतुल (जन्म 1972) संताली-भाषी कवयित्री हैं जो हिंदी में लिखती हैं; उनकी कविताएँ आदिवासी समाज की विडंबनाओं, विसंगतियों और संघर्षों को मार्मिक शैली में प्रस्तुत करती हैं।

हालिया खोजी गईं एलिस एक्का 1960 के दशक की लेखिका हैं, जिनकी कहानियाँ इस तथ्य को सिद्ध करती हैं कि आदिवासी हिंदी साहित्य का आरंभ 1980 के दशक से बहुत पूर्व हो चुका था। इन सभी लेखकों ने अपनी मौलिक संवेदना, अनुभूति और यथार्थवादी दृष्टि से हिंदी साहित्य को नई दिशा प्रदान की है।

4.1. पीटर पॉल एक्का (Peter Paul Ekka, 1953–2018)

पीटर पॉल एक्का हिंदी साहित्य के आदिवासी विमर्श के एक प्रमुख स्तंभ हैं। उन्हें आदिवासी कहानीकार के रूप में विशेष ख्याति प्राप्त है। उनकी कहानियों में झारखंड के आदिवासी समाज की वास्तविक समस्याओं को बड़ी संवेदनशीलता के साथ चित्रित किया गया है। पर्यावरण विनाश, वन-उन्मूलन, खनन गतिविधियों के कारण होने वाला विस्थापन, और औद्योगीकरण की भेंट चढ़ती आदिवासी अस्मिता—ये उनकी रचनाओं के प्रमुख विषय हैं। वे इस बात पर बल देते हैं कि आदिवासियों का प्रकृति से संबंध केवल आजीविका का साधन नहीं, बल्कि उनकी सांस्कृतिक पहचान का अभिन्न अंग है। उनकी कहानियाँ सामाजिक अन्याय, शोषण और प्रतिरोध के स्वर को भी मुखरित करती हैं, जिससे पाठक आदिवासी जीवन की विडंबनाओं से साक्षात्कार करता है।

4.2. रोज केरकेट्टा (Rose Kerketta, 1940–2025)

रोज केरकेट्टा आदिवासी साहित्य की वह अग्रणी हस्ती हैं, जिन्होंने अपनी कहानियों के माध्यम से झारखंड के खनन-प्रभावित क्षेत्रों की सामाजिक-पारिस्थितिकीय समस्याओं को केंद्र में रखा। उनका लेखन इस बात का प्रमाण है कि आदिवासी समाज पर्यावरणीय संकट और आर्थिक शोषण की दोहरी मार झेल रहा है। उनकी रचनाओं में बड़ी कंपनियों, सरकारी नीतियों और स्थानीय साहूकारों द्वारा आदिवासियों के दोहन को बड़ी मार्मिकता से उकेरा गया है। वे औद्योगीकरण के नाम पर हो रहे सांस्कृतिक विघटन और सामाजिक विस्थापन को रेखांकित करती हैं। उनकी भाषा सरल, मार्मिक और

संवेदनशील है, जो पाठकों के हृदय को छू लेती है। सन् 2025 में उनके निधन ने आदिवासी साहित्य में एक अपूरणीय क्षति पहुँचाई है।

4.3. जैकिंटा केरकेट्टा (Jacinta Kerketta)

जैकिंटा केरकेट्टा समकालीन आदिवासी कविता की प्रमुख हस्ती हैं। उनकी कविताएँ आदिवासी समाज की स्त्री-पहचान, उसके अस्तित्वगत संकट, और पितृसत्तात्मक मानसिकता के विरुद्ध संघर्ष को अभिव्यक्त करती हैं। वे आदिवासी स्त्री के जीवन में व्याप्त दोहरे उत्पीड़न—एक ओर बाहरी समाज से, तो दूसरी ओर अपने ही समाज की पितृसत्तात्मक परंपराओं से—को उजागर करती हैं। उनकी कविता में स्त्री-विमर्श, अंतर्विभागीय पहचान (intersectional identity), और सामाजिक न्याय के प्रश्न गहराई से उठाए गए हैं। उनकी भाषा में आदिवासी अनुभूति की तीक्ष्णता और मौलिकता विद्यमान है। वे आदिवासी नारी को केवल पीड़ित के रूप में नहीं, बल्कि प्रतिरोध की चेतना से संपन्न स्वतंत्र इकाई के रूप में प्रस्तुत करती हैं।

4.4. निर्मला पुतुल (Nirmala Putul, जन्म 1972)

निर्मला पुतुल संताली भाषी आदिवासी कवयित्री हैं, जो हिंदी में अपनी रचनाएँ प्रस्तुत करती हैं। उनकी कविताएँ आदिवासी समाज की विडंबनाओं, विसंगतियों और जीवन-संघर्षों को अत्यंत मार्मिकता और सीधी-सरल भाषा में अभिव्यक्त करती हैं। वे आदिवासी जीवन की मूल संवेदना, उसके सुख-दुख, आशा-निराशा और उसके अस्तित्व के संकट को शब्दों में पिरोती हैं। उनकी कविता में आदिवासी समाज की जड़ परंपराओं और आधुनिकता के दबाव के बीच उत्पन्न द्वंद्व स्पष्ट दिखाई देता है। वे शोषण, भेदभाव और उपेक्षा के विरुद्ध आवाज़ उठाती हैं। हिंदी भाषा में उनका लेखन यह सिद्ध करता है कि आदिवासी संवेदना मुख्यधारा की भाषा में भी पूरी मौलिकता और तीव्रता के साथ अभिव्यक्त हो सकती है।

4.5. एलिस एक्का (Alice Ekka)

एलिस एक्का आदिवासी हिंदी साहित्य की वह लेखिका हैं, जिन्हें हाल ही में खोजा गया है और उनकी रचनाएँ साहित्य जगत के लिए एक महत्वपूर्ण उपलब्धि हैं। वे सन् 1960 के दशक में सक्रिय थीं, जब आदिवासी लेखन को मुख्यधारा में किसी ने पहचाना नहीं था। उनकी कहानियाँ इस तथ्य को सिद्ध करती हैं कि आदिवासी हिंदी साहित्य का प्रारंभ 1980 या 1990 के दशक में नहीं, बल्कि इससे बहुत पूर्व हो चुका था। उनकी रचनाओं में आदिवासी समाज की मौलिक अनुभूति, उसकी पीड़ा और संघर्ष सहज रूप में अभिव्यक्त हुए हैं। उनका पुनरुद्धार आदिवासी साहित्य के इतिहास को पुनर्लेखित करने की आवश्यकता को रेखांकित करता है और यह दर्शाता है कि आदिवासी विमर्श की जड़ें कहीं अधिक गहरी और पुरानी हैं।

5. प्रमुख सैद्धांतिक प्रश्न :

5.1. 'अनुभूति' बनाम 'सहानुभूति' का द्वंद्व :

आदिवासी साहित्यिक आलोचना का यह केंद्रीय प्रश्न है कि आदिवासी लेखन की प्रामाणिकता का आधार क्या है। आदिवासी लेखक अपने 'स्व-अनुभव' अर्थात 'अनुभूति' को सर्वाधिक प्रामाणिक

मानते हैं, क्योंकि वे स्वयं उस समाज के अंश हैं, जिसका वे चित्रण करते हैं। उनके अनुसार, गैर-आदिवासी लेखक की 'सहानुभूति' बाहरी दृष्टि मात्र है, जिसमें आदिवासी जीवन की जटिलताओं को पूर्णतः समझने की क्षमता नहीं होती। यह द्वंद्व इस प्रश्न को जन्म देता है—क्या केवल आदिवासी ही आदिवासी साहित्य लिख सकते हैं? हालाँकि शोधकर्ता अरमिन किओकेट्टी का तर्क है कि आदिवासी लेखक भी मुख्यधारा की शिक्षा से प्रभावित होते हैं, अतः यह विभाजन पूर्णतः स्पष्ट नहीं है।

5.2. 'पारिस्थितिकीय आदिवासी' का स्वरूप :

आदिवासी लेखन में आदिवासी समाज को प्रकृति-संरक्षक और पर्यावरण-रक्षक के रूप में चित्रित किया गया है। यह चित्रण फ्रांसीसी दार्शनिक रूसो द्वारा प्रतिपादित 'उदात्त असभ्य' (noble savage) की अवधारणा से मेल खाता है, जिसमें आदिवासी को सभ्यता के दोषों से मुक्त, शुद्ध और प्रकृति-प्रेमी माना जाता है। इस दृष्टि के अनुसार, आदिवासियों का प्रकृति से संबंध केवल आजीविका का साधन नहीं, बल्कि उनकी आध्यात्मिक और सांस्कृतिक पहचान है। हालाँकि, कुछ आलोचक इस दृष्टि को रोमांटिक, आदर्शवादी और रूढ़िवादी मानते हैं। उनके अनुसार, यह चित्रण आदिवासी समाज की वास्तविक जटिलताओं और उसके भीतर व्याप्त सामाजिक विषमताओं को अनदेखा करता है।

5.3. साहित्यिक पुनर्जागरण और प्रभाव :

आधुनिक आदिवासी लेखन मुख्यधारा की साहित्यिक परंपराओं से गहराई से प्रभावित है। इसमें छायावाद की भावुकता, प्रकृति-चेतना और संवेदनशीलता तथा अंग्रेजी स्वच्छंदतावाद (Romanticism) के व्यक्तिवाद और प्रकृति-प्रेम के तत्व स्पष्ट दिखाई देते हैं। यह तथ्य इस बात का प्रमाण है कि आदिवासी लेखन किसी पृथक एवं अलग-थलग परंपरा में नहीं, बल्कि मुख्यधारा के साहित्यिक आंदोलनों के साथ संवादात्मक प्रक्रिया में विकसित हुआ है। आदिवासी लेखकों ने इन प्रभावों को आत्मसात करते हुए उन्हें अपनी मौलिक अनुभूति, अंचल-भाषा और सांस्कृतिक संदर्भों के साथ समन्वित किया है। यह संवादात्मक प्रक्रिया हिंदी साहित्य को अधिक समावेशी और बहुआयामी बनाती है।

6. आदिवासी विमर्श की चुनौतियाँ :

1. प्रामाणिकता की समस्या : क्या केवल आदिवासी लेखक ही आदिवासी साहित्य लिख सकते हैं?
2. रूढ़िवादिता (Stereotyping) : क्या आदिवासी लेखन आदिवासी समाज को एकरूप और रोमांटिक रूप में प्रस्तुत नहीं करता?
3. भाषा और संपर्क : हिंदी में लिखते समय आदिवासी भाषाओं की मौलिकता कहाँ खो जाती है?
4. राजनीतिक उपयोग : क्या इस विमर्श का राजनीतिक दलों द्वारा दुरुपयोग नहीं हो रहा है?

7. निष्कर्ष :

हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श मात्र एक साहित्यिक आंदोलन नहीं है, अपितु यह उन लाखों आदिवासी जनों की सामाजिक-राजनीतिक चेतना, उनके अस्तित्वगत संघर्ष और उनकी सांस्कृतिक अस्मिता की मुखर अभिव्यक्ति है। इस विमर्श ने हिंदी साहित्य की पारंपरिक विषय-सीमाओं को तोड़ते

हुए नए विषयों, संवेदनाओं और दृष्टिकोणों को स्थान दिया है। पर्यावरणीय चिंता, वन-उन्मूलन, खनन-विरोध, विस्थापन की त्रासदी, पहचान का संकट, सामाजिक-आर्थिक शोषण और उसके विरुद्ध प्रतिरोध—जैसे मुद्दे आज हिंदी साहित्य के अभिन्न अंग बन गए हैं।

आदिवासी लेखन ने हिंदी साहित्य को अधिक समावेशी, लोकतांत्रिक और जीवंत बनाया है। इसने उस वर्ग को आवाज़ दी है, जो सदियों से इतिहास, समाज और साहित्य की परिधि पर रहा। पीटर पॉल एक्का, रोज केरकेट्टा, जैकिंटा केरकेट्टा, निर्मला पुतुल और एलिस एक्का जैसे लेखकों ने यह सिद्ध किया कि आदिवासी संवेदना मुख्यधारा की भाषा हिंदी में पूरी मौलिकता, तीव्रता और संवेदनशीलता के साथ अभिव्यक्त हो सकती है। उनके लेखन से यह भी स्पष्ट हुआ है कि आदिवासी साहित्य की जड़ें 1980 या 1990 के दशक में नहीं, बल्कि इससे बहुत पहले, 1960 के दशक में ही अंकुरित हो चुकी थीं।

वर्तमान समय में आदिवासी विमर्श निरंतर विकासशील है और इसके अनेक आयाम अभी अन्वेषण की प्रतीक्षा कर रहे हैं। 'अनुभूति' और 'सहानुभूति' का द्वंद्व, 'पारिस्थितिकीय आदिवासी' की रोमांटिक अवधारणा, तथा मुख्यधारा की साहित्यिक परंपराओं से संवाद—ये सैद्धांतिक प्रश्न अभी भी खुले हुए हैं। विशेष रूप से आदिवासी स्त्री-लेखन, जिसमें पितृसत्ता और उपनिवेशवाद के दोहरे उत्पीड़न को समझने की आवश्यकता है; अंचल-भाषाओं (संताली, मुंडारी, हो, खड़िया आदि) में उपलब्ध आदिवासी साहित्य का दस्तावेज़ीकरण; तथा आदिवासी और दलित विमर्शों के बीच अंतर-संवाद—ये वे क्षेत्र हैं जहाँ आगामी शोध की अत्यधिक अपेक्षा है।

आशा की जानी चाहिए कि आने वाले समय में आदिवासी विमर्श हिंदी साहित्य को और अधिक समृद्ध करेगा तथा साहित्य को समाज का दर्पण बनाने की परंपरा को सशक्त करेगा। आदिवासी लेखन ने यह सिद्ध कर दिया है कि साहित्य वहाँ भी पनपता है, जहाँ संघर्ष है, पीड़ा है, और अस्तित्व की लड़ाई है। यह विमर्श भारतीय साहित्य की विविधतापूर्ण संस्कृति की अमूल्य धरोहर है।

संदर्भ सूची (Selected Bibliography)

1. Chiocchetti, Armin. "Alice Ekka and the Question of Authenticity in Hindi Adivasi Literature." *Orientalia Suecana*, vol. 70, 2021, pp. 114–128.
2. Chiocchetti, Armin. "Eco-Local and Eco-Global: Some Literary Interventions in Adivasi Hindi Short Stories." *South Asia: Journal of South Asian Studies*, vol. 49, no. 1, 2026, pp. 250–267.
3. Chiocchetti, Armin. *Digging into Anubhūti: Explorations in Hindi Adivasi Short Story Writing*. Uppsala University, 2025.

4. Consolaro, Alessandra. "Gender and Identity in the Hindi Writing of the Adivasi Poets Jacinta Kerketta and Nirmala Putul." *CINECA IRIS*, Università di Torino, 2025.
5. Dayāśaṅkara. *Ādivāsī Savāla aura Sāhitya*. Anujñā Buksa, 2019.
6. Cavhāṇa, Mohana, editor. *Ādivāsī Sāhitya Vimarśa*. Anujñā Buksa, 2019.
7. Meena, Pintu Kumar. *Hindi Alochana aur Aadivasi Sahitya Vimarsh*. PhD Thesis, University of Hyderabad, 2019.
8. Miṇā, Mandākinī. *Asmitāmūlaka Vimarśa aura Hindī Sāhitya*. Śrī Natarāja Prakāśana, 2022.
9. Pandey, A. K. *Adivasi Vimarsh Evam Purvottar Vishayak Hindi Katha Sahitya*. PhD Thesis, North-Eastern Hill University, 2022.
10. गंगा सहाय मीणा (संपादक), आदिवासी साहित्य विमर्श
11. डॉ. वीमल ग्यानोबाराव सूर्यवंशी, आदिवासी साहित्य
12. प्रो. दयाशंकर, आदिवासी सवाल और साहित्य
13. डॉ. गौतम भाईदास कुँवर, हिन्दी साहित्य में आदिवासी हस्तक्षेप
14. खन्नाप्रसाद अमीन (संपादक), आदिवासी कहानी साहित्य और विमर्श
15. अमन प्रकाशन, हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श (बंसल द्वारा)
16. गंगा सहाय मीणा, *आदिवासी और हिंदी उपन्यास : अस्मिता और अस्तित्व का संघर्ष*
17. सविता चौधरी, *हिंदी साहित्य में आदिवासी एवं स्त्री विमर्श*
18. डॉ. स्नेह लता नेगी (संपादक), *आदिवासी साहित्य का स्त्री पाठ*

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2026 Page No. : 173-178

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.22679720

नव उदारवाद का दलित जीवन पर प्रभाव : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

स्नेहा
शोधार्थी, गोविंद बल्लभ पंत सामाजिक विज्ञान संस्थान , प्रयागराज।

सार :

1991 में भारत में लागू नई आर्थिक नीति ने देश की अर्थव्यवस्था और समाज दोनों में व्यापक परिवर्तन किए। उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण पर आधारित इन नीतियों ने आर्थिक विकास को गति देने के साथ–साथ सामाजिक संरचना को भी प्रभावित किया। इन परिवर्तनों का प्रभाव समाज के सभी वर्गों पर पड़ा, किंतु दलित समुदाय के संदर्भ में यह प्रभाव विशेष रूप से महत्वपूर्ण रहा क्योंकि यह समुदाय ऐतिहासिक रूप से सामाजिक बहिष्कार, आर्थिक वंचना और जातिगत भेदभाव का सामना करता रहा है। नव उदारवाद ने दलितों के लिए शिक्षा, रोजगार, उद्यमिता, शहरीकरण और सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में नए अवसर प्रदान किए, वहीं दूसरी ओर सरकारी नौकरियों में कमी, निजी क्षेत्र में आरक्षण के अभाव, असंगठित श्रम के विस्तार तथा आर्थिक असमानता जैसी नई चुनौतियाँ भी उत्पन्न कीं। यह शोध–पत्र समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से नव उदारवाद और दलित जीवन के बीच संबंधों का विश्लेषण करता है तथा यह समझने का प्रयास करता है कि बाजार आधारित आर्थिक विकास किस प्रकार सामाजिक न्याय और समानता के प्रश्नों को प्रभावित करता है।

भूमिका :

भारतीय समाज की संरचना लंबे समय तक जाति व्यवस्था से संचालित रही है। इस व्यवस्था ने समाज को विभिन्न श्रेणियों में विभाजित किया, जिनमें दलित समुदाय को सबसे निचले स्तर पर रखा गया। उन्हें शिक्षा, भूमि, सम्मानजनक रोजगार और सामाजिक संसाधनों तक पहुँच से वंचित रखा गया। सदियों तक चली इस सामाजिक व्यवस्था ने दलितों के जीवन को गहरे स्तर पर प्रभावित किया तथा आर्थिक और सामाजिक असमानताओं को स्थायी रूप प्रदान किया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारतीय संविधान ने समानता, स्वतंत्रता और सामाजिक न्याय के सिद्धांतों को अपनाया। अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षण, शिक्षा में विशेष अवसर तथा कल्याणकारी योजनाओं के माध्यम से दलित समुदाय के उत्थान का प्रयास किया गया। इन नीतियों के परिणामस्वरूप दलितों की शिक्षा, राजनीतिक भागीदारी तथा सरकारी सेवाओं में प्रतिनिधित्व में वृद्धि हुई। फिर भी सामाजिक भेदभाव और आर्थिक विषमता पूरी तरह समाप्त नहीं हो सकी।

नव उदारवाद की अवधारणा :

नव उदारवाद एक ऐसी आर्थिक विचारधारा है जो मुक्त बाजार, निजी स्वामित्व, प्रतिस्पर्धा तथा राज्य के सीमित हस्तक्षेप का समर्थन करती है। इसके अनुसार आर्थिक विकास का सबसे प्रभावी माध्यम बाजार व्यवस्था है, जहाँ वस्तुओं, सेवाओं और पूँजी का स्वतंत्र प्रवाह सुनिश्चित हो। नव उदारवाद केवल आर्थिक नीति नहीं है, बल्कि यह समाज और राज्य के संबंधों को भी प्रभावित करता है। इसमें सरकार की भूमिका कल्याणकारी राज्य से बदलकर नियामक की हो जाती है तथा शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार जैसे क्षेत्रों में निजी क्षेत्र की भागीदारी बढ़ जाती है।

नव उदारवाद और दलित समाज :

दलित समाज के लिए नव उदारवाद एक विरोधाभासी प्रक्रिया के रूप में सामने आया। एक ओर बाजार ने जातिगत पहचान से ऊपर उठकर योग्यता और उपभोक्ता क्षमता को महत्व देने का दावा किया, जिससे शिक्षित दलित युवाओं के लिए निजी क्षेत्र और उद्यमिता के नए अवसर उपलब्ध हुए। सूचना प्रौद्योगिकी, बैंकिंग, दूरसंचार और सेवा क्षेत्र में रोजगार के नए विकल्प सामने आए। दूसरी ओर सरकारी क्षेत्र में रोजगार के अवसरों में कमी आने लगी। चूँकि निजी क्षेत्र में आरक्षण लागू नहीं है, इसलिए दलितों का प्रतिनिधित्व सीमित रहा। आर्थिक उदारीकरण ने प्रतिस्पर्धा तो बढ़ाई, लेकिन शिक्षा और संसाधनों में पहले से मौजूद असमानताओं के कारण सभी दलित इन अवसरों का समान रूप से लाभ नहीं उठा सके। ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले अधिकांश दलित आज भी भूमिहीन मजदूर या असंगठित श्रमिक हैं। इन वर्गों तक आर्थिक विकास के लाभ अपेक्षाकृत कम पहुँचे। इसलिए नव उदारवाद के प्रभाव को केवल आर्थिक विकास के आँकड़ों से नहीं समझा जा सकता, बल्कि सामाजिक संरचना और शक्ति संबंधों के संदर्भ में भी उसका विश्लेषण आवश्यक है।

समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य :

समाजशास्त्र में किसी भी आर्थिक परिवर्तन का अध्ययन केवल आय या उत्पादन के आधार पर नहीं किया जाता, बल्कि यह देखा जाता है कि वह परिवर्तन सामाजिक संबंधों, शक्ति संरचना, पहचान और अवसरों को किस प्रकार प्रभावित करता है। डॉ. भीमराव आंबेडकर का मानना था कि आर्थिक समानता तब तक सार्थक नहीं हो सकती जब तक सामाजिक समानता स्थापित न हो। उनके अनुसार जाति व्यवस्था भारतीय समाज में अवसरों की समानता को बाधित करती है। पियरे बोरदियू ने सामाजिक पूँजी और सांस्कृतिक पूँजी की अवधारणा प्रस्तुत करते हुए बताया कि केवल आर्थिक संसाधन ही सफलता का आधार नहीं होते, बल्कि सामाजिक नेटवर्क, शिक्षा और सांस्कृतिक संसाधन भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इस दृष्टि से देखा जाए तो नव उदारवाद द्वारा उपलब्ध अवसरों का लाभ वही समूह अधिक उठा सकता है जिसके पास पर्याप्त सामाजिक और सांस्कृतिक पूँजी हो। सुखदेव थोराट का तर्क है कि बाजार स्वयं जातिगत भेदभाव को समाप्त नहीं करता। यदि शिक्षा, भूमि और पूँजी तक समान पहुँच नहीं होगी तो आर्थिक विकास का लाभ भी असमान रूप से वितरित होगा। इसी प्रकार आनंद तेलतुंबड़े का मत है कि नव उदारवादी नीतियों ने दलितों के लिए कुछ नए अवसर अवश्य पैदा किए हैं, लेकिन निजीकरण और सार्वजनिक क्षेत्र के संकुचन ने संवैधानिक सामाजिक न्याय की व्यवस्था को कमजोर भी किया है। इन समाजशास्त्रीय दृष्टिकोणों से स्पष्ट होता है कि नव उदारवाद का प्रभाव केवल आर्थिक नहीं बल्कि

सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक स्तर पर भी गहराई से महसूस किया गया है।

दलित जीवन पर नव उदारवाद के आर्थिक, शैक्षिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक प्रभाव :

1. **दलितों के आर्थिक जीवन पर नव उदारवाद का प्रभाव** – 1991 के आर्थिक सुधारों के बाद भारत की अर्थव्यवस्था में तीव्र परिवर्तन हुए। सेवा क्षेत्र, सूचना प्रौद्योगिकी, बैंकिंग, दूरसंचार, परिवहन तथा निजी उद्योगों का तेजी से विस्तार हुआ। इन परिवर्तनों ने रोजगार के नए अवसर उत्पन्न किए। शिक्षित दलित युवाओं के एक वर्ग ने इन अवसरों का लाभ उठाया और निजी क्षेत्र, सूचना प्रौद्योगिकी, बैंकिंग, शिक्षा तथा उद्यमिता के क्षेत्र में अपनी पहचान बनाई। इससे दलित मध्यवर्ग का विस्तार हुआ और अनेक परिवारों की आय एवं जीवन स्तर में सुधार हुआ।

हालाँकि यह परिवर्तन पूरे दलित समाज में समान रूप से नहीं दिखाई देता। ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले अधिकांश दलित परिवार आज भी भूमिहीन कृषि मजदूर या असंगठित क्षेत्र के श्रमिक हैं। नव उदारवादी नीतियों के कारण श्रम बाजार में संविदा श्रम, अस्थायी रोजगार तथा आउटसोर्सिंग जैसी व्यवस्थाएँ बढ़ीं। इन परिस्थितियों में श्रमिकों की नौकरी की सुरक्षा कम हुई और सामाजिक सुरक्षा सुविधाएँ भी सीमित हो गईं। इसका सबसे अधिक प्रभाव उन दलित परिवारों पर पड़ा जो पहले से ही आर्थिक रूप से कमजोर थे।

सरकारी उपक्रमों के निजीकरण के कारण सरकारी नौकरियों की संख्या में कमी आई। चूँकि सरकारी क्षेत्र में आरक्षण लागू है, इसलिए दलितों को इन नौकरियों से अपेक्षाकृत अधिक अवसर प्राप्त होते थे। लेकिन निजी क्षेत्र में आरक्षण की व्यवस्था न होने से दलितों के लिए रोजगार के अवसर सीमित हो गए। यह नव उदारवाद की सबसे गंभीर चुनौतियों में से एक मानी जाती है।

2. **शिक्षा पर प्रभाव** – नव उदारवाद के बाद शिक्षा के क्षेत्र में उल्लेखनीय परिवर्तन हुए। निजी विश्वविद्यालयों, तकनीकी संस्थानों तथा व्यावसायिक शिक्षा का विस्तार हुआ। इंटरनेट, डिजिटल शिक्षा और ऑनलाइन शिक्षण ने ज्ञान तक पहुँच के नए अवसर उपलब्ध कराए। इससे उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले दलित विद्यार्थियों की संख्या में वृद्धि हुई तथा प्रतियोगी परीक्षाओं और तकनीकी क्षेत्रों में उनकी भागीदारी बढ़ी। किन्तु शिक्षा का बढ़ता निजीकरण सामाजिक असमानता को भी बढ़ाने वाला सिद्ध हुआ। निजी विद्यालयों और विश्वविद्यालयों की ऊँची फीस के कारण गरीब दलित परिवारों के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त करना कठिन हो गया। ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी विद्यालयों की गुणवत्ता, शिक्षकों की उपलब्धता और डिजिटल संसाधनों की कमी जैसी समस्याएँ बनी हुई हैं। इस प्रकार शिक्षा में अवसरों का विस्तार तो हुआ, लेकिन इन अवसरों का लाभ मुख्यतः उन दलित परिवारों को मिला जिनकी आर्थिक स्थिति अपेक्षाकृत बेहतर थी।

3. **सामाजिक गतिशीलता पर प्रभाव** – समाजशास्त्र में सामाजिक गतिशीलता का अर्थ व्यक्ति या समूह की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति में परिवर्तन से है। नव उदारवाद ने ग्रामीण से शहरी पलायन को बढ़ावा दिया।

रोजगार की तलाश में बड़ी संख्या में दलित युवा शहरों की ओर गए। शहरी क्षेत्रों में जातिगत पहचान अपेक्षाकृत कम दिखाई देती है तथा व्यक्ति की योग्यता और आर्थिक स्थिति को अधिक महत्व दिया जाता है। इस परिवर्तन के कारण अनेक दलित परिवारों की आय, शिक्षा, आवास तथा जीवन शैली में सुधार हुआ। आधुनिक उपभोक्ता संस्कृति, बैंकिंग सेवाओं, डिजिटल भुगतान तथा सूचना प्रौद्योगिकी तक पहुँच ने उनके जीवन

में नए परिवर्तन लाए। फिर भी सामाजिक गतिशीलता सभी दलितों के लिए समान नहीं रही। जिन परिवारों के पास शिक्षा, सामाजिक नेटवर्क और आर्थिक संसाधन थे, वे अधिक आगे बढ़ सके। दूसरी ओर गरीब, भूमिहीन और कम शिक्षित दलित परिवार सामाजिक गतिशीलता की प्रक्रिया में पीछे रह गए।

4. **सामाजिक संबंधों पर प्रभाव** – नव उदारवाद और शहरीकरण के कारण जातिगत संबंधों में कुछ परिवर्तन अवश्य आए हैं। कार्यस्थलों, विश्वविद्यालयों और महानगरों में विभिन्न जातियों के लोगों के बीच संपर्क बढ़ा है। इससे सामाजिक दूरी कुछ हद तक कम हुई है। इसके बावजूद जातिगत भेदभाव पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ। विवाह, आवास, सामाजिक मेल–जोल और ग्रामीण सत्ता संरचना में आज भी जाति महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। कई अध्ययनों से पता चलता है कि निजी क्षेत्र में भर्ती, पदोन्नति और वेतन निर्धारण में भी अप्रत्यक्ष रूप से जातिगत पूर्वाग्रह दिखाई देते हैं। इस प्रकार नव उदारवाद ने सामाजिक संबंधों को बदला अवश्य है, लेकिन जाति व्यवस्था की संरचनात्मक असमानताओं को पूरी तरह समाप्त नहीं किया।

5. **सांस्कृतिक जीवन पर प्रभाव** – वैश्वीकरण ने संचार माध्यमों, सोशल मीडिया और डिजिटल प्लेटफॉर्म का विस्तार किया। इसके परिणामस्वरूप दलित साहित्य, इतिहास, कला और सांस्कृतिक पहचान को राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर नई पहचान मिली। आज अनेक दलित लेखक, पत्रकार, कलाकार और सामाजिक कार्यकर्ता डिजिटल माध्यमों के द्वारा अपनी बात व्यापक समाज तक पहुँचा रहे हैं। डॉ. भीमराव आंबेडकर, संत रविदास, कबीर तथा अन्य दलित नायकों की जयंती और विचारों का प्रचार पहले की तुलना में अधिक व्यापक स्तर पर होने लगा है। दूसरी ओर उपभोक्तावाद का प्रभाव भी बढ़ा है। सामाजिक प्रतिष्ठा को महँगी वस्तुओं, ब्रांडेड कपड़ों और आधुनिक जीवन शैली से जोड़ने की प्रवृत्ति बढ़ी है। इससे आर्थिक रूप से कमजोर परिवारों पर अतिरिक्त वित्तीय दबाव उत्पन्न हुआ है।

6. **राजनीतिक जागरूकता और प्रतिनिधित्व** – नव उदारवाद के दौर में शिक्षा, मीडिया और संचार तकनीक के विस्तार ने दलित समाज में राजनीतिक जागरूकता को भी बढ़ाया। दलित युवाओं ने अपने अधिकारों, संवैधानिक प्रावधानों तथा सामाजिक न्याय के प्रश्नों पर अधिक सक्रियता दिखाई। सोशल मीडिया के माध्यम से दलित आंदोलनों को नया मंच मिला है। अब सामाजिक भेदभाव, हिंसा और अन्याय की घटनाएँ पहले की तुलना में अधिक तेजी से सार्वजनिक होती हैं। इससे लोकतांत्रिक विमर्श में दलित मुद्दों की उपस्थिति बढ़ी है। फिर भी आर्थिक नीतियों में सामाजिक न्याय को पर्याप्त प्राथमिकता न मिलने के कारण कई विद्वानों का मानना है कि केवल राजनीतिक प्रतिनिधित्व पर्याप्त नहीं है, इसके साथ आर्थिक अवसरों की समान उपलब्धता भी आवश्यक है।

समाजशास्त्रीय विश्लेषण :

नव उदारवाद के प्रभाव को समझने के लिए केवल आर्थिक संकेतकों का अध्ययन पर्याप्त नहीं है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से यह देखना आवश्यक है कि आर्थिक परिवर्तन सामाजिक संबंधों, शक्ति संरचना, अवसरों की समानता तथा सामाजिक न्याय को किस प्रकार प्रभावित करते हैं। भारत जैसे जाति–आधारित समाज में बाजार और जाति का संबंध अत्यंत जटिल है। यह मान लेना कि केवल आर्थिक विकास से सामाजिक असमानता समाप्त हो जाएगी, वास्तविकता से मेल नहीं खाता। डॉ. भीमराव आंबेडकर का मानना था कि सामाजिक लोकतंत्र

के बिना आर्थिक लोकतंत्र संभव नहीं है। उनके अनुसार यदि समाज में जातिगत ऊँच–नीच बनी रहेगी, तो आर्थिक विकास का लाभ भी समान रूप से वितरित नहीं होगा। नव उदारवाद ने आर्थिक अवसरों का विस्तार किया, लेकिन सामाजिक संरचना में निहित असमानताओं को पूरी तरह समाप्त नहीं किया। सुखदेव थोराट और कैथरीन न्यूमैन ने अपने अध्ययन में दिखाया कि आधुनिक श्रम बाजार में भी जातिगत भेदभाव समाप्त नहीं हुआ है। निजी क्षेत्र में भर्ती और पदोन्नति के दौरान कई बार दलित उम्मीदवारों के साथ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष भेदभाव देखा जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि बाजार हमेशा सामाजिक समानता की गारंटी नहीं देता। आनंद तेलतुंबड़े का तर्क है कि नव उदारवाद ने दलितों के एक छोटे शिक्षित वर्ग को आगे बढ़ने का अवसर दिया, लेकिन अधिकांश दलित अभी भी असंगठित श्रम, भूमिहीनता और कम आय जैसी समस्याओं से जूझ रहे हैं। इसलिए आर्थिक विकास के लाभ समाज के भीतर असमान रूप से वितरित हुए हैं।

निष्कर्ष :

नव उदारवाद ने भारतीय समाज में व्यापक परिवर्तन किए हैं और दलित समुदाय भी इन परिवर्तनों से अछूता नहीं रहा। आर्थिक सुधारों के बाद शिक्षा, सूचना प्रौद्योगिकी, शहरीकरण, उद्यमिता और सेवा क्षेत्र में दलितों के लिए नए अवसर उपलब्ध हुए। इन अवसरों का लाभ उठाकर एक नया शिक्षित दलित मध्यवर्ग उभरा, जिसने सामाजिक और आर्थिक गतिशीलता का अनुभव किया। इसके साथ ही यह भी स्पष्ट है कि नव उदारवाद के लाभ पूरे दलित समाज में समान रूप से नहीं पहुँचे। सरकारी नौकरियों में कमी, निजी क्षेत्र में आरक्षण का अभाव, शिक्षा का निजीकरण, असंगठित श्रम का विस्तार तथा बढ़ती आर्थिक असमानता जैसी चुनौतियों ने बड़ी संख्या में दलित परिवारों को प्रभावित किया। समाजशास्त्रीय दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि नव उदारवाद ने जातिगत असमानताओं को समाप्त नहीं किया, बल्कि कई मामलों में उन्हें नए रूप में प्रस्तुत किया है। इसलिए केवल आर्थिक विकास पर्याप्त नहीं है। सामाजिक न्याय, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, समान अवसर, संवैधानिक मूल्यों और समावेशी नीतियों के माध्यम से ही दलित समुदाय का वास्तविक सशक्तिकरण संभव है। अंततः, भारत के विकास की सफलता इस बात पर निर्भर करेगी कि आर्थिक प्रगति के साथ सामाजिक समानता और न्याय को कितनी प्रभावी ढंग से सुनिश्चित किया जाता है। जब विकास का लाभ समाज के सबसे वंचित वर्गों तक समान रूप से पहुँचेगा, तभी नव उदारवाद को वास्तव में समावेशी और न्यायपूर्ण कहा जा सकेगा।

संदर्भ सूची :

- Ambedkar, B. R. (1936). Annihilation of Caste. Critical Quest.
- Deshpande, A. (2011). The Grammar of Caste: Economic Discrimination in Contemporary India. Oxford University Press.
- Harvey, D. (2005). A Brief History of Neoliberalism. Oxford University Press.
- Jodhka, S. S. (2012). Caste. Oxford University Press.
- Kapur, D., Prasad, C. B., Pritchett, L., & Babu, D. S. (2010). Rethinking Inequality: Dalits in Uttar Pradesh in the Market Reform Era. Economic and Political Weekly, 45(35), 39–48.

- Narayan, B. (2011). The Making of the Dalit Public in North India: Uttar Pradesh, 1950–Present. Oxford University Press.
- Pai, S. (2002). Dalit Assertion and the Unfinished Democratic Revolution. Sage Publications.
- Thorat, S., & Newman, K. S. (2010). Blocked by Caste: Economic Discrimination in Modern India. Oxford University Press.
- Teltumbde, A. (2010). The Persistence of Caste: The Khairlanji Murders and India's Hidden Apartheid. Navayana.
- Government of India. (1991). Economic Reforms and the New Economic Policy. Ministry of Finance.

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2026 Page No. : 179-184

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.22679720

महादेवी वर्मा के संस्मरणात्मक रेखाचित्रों में नारी संवेदना : नारीवादी विमर्श के संदर्भ में

विपुल कुमार
शोधार्थी, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना।
डॉ. श्रीकांत सिंह, शोध निदेशक
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष
हिन्दी–विभाग, स्नातकोत्तर केंद्र, कॉलेज ऑफ कॉमर्स, आर्ट्स एंड सायंस, पटना–20

शोध-सारांश :

महादेवी वर्मा हिंदी साहित्य के आधुनिक काल की ऐसी विशिष्ट साहित्यकार हैं, जिनके रचनात्मक व्यक्तित्व में संवेदना, करुणा, मानवीयता और सामाजिक चेतना का अद्‌भुत समन्वय दिखाई देता है। उनकी साहित्यिक उपलब्धि केवल काव्य तक सीमित नहीं है, बल्कि उनके गद्य–साहित्य में भी सामाजिक जीवन के उपेक्षित एवं हाशिए पर स्थित वर्गों की पीड़ा और संघर्ष को अभिव्यक्ति मिली है। विशेष रूप से अतीत के चलचित्र और स्मृति की रेखाएँ में प्रस्तुत संस्मरणात्मक रेखाचित्रों में स्त्री–जीवन के विविध रूप अत्यंत मार्मिकता के साथ उभरते हैं। बिंदा, बिट्टो, बिबिया, बालिका–माँ, सबिया, अभागी स्त्री तथा 'भक्तिन' जैसे स्त्री–पात्रों के माध्यम से लेखिका ने स्त्री की सामाजिक, आर्थिक, पारिवारिक एवं मानसिक स्थितियों को अभिव्यक्त किया है।

प्रस्तुत शोध आलेख का उद्देश्य महादेवी वर्मा के संस्मरणात्मक रेखाचित्रों में निहित नारी–संवेदना का नारीवादी दृष्टिकोण से विश्लेषण करना है। अध्ययन में यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि महादेवी की नारी–संवेदना केवल स्त्री की पीड़ा के प्रति सहानुभूति तक सीमित नहीं है, बल्कि उसके भीतर स्त्री–अस्मिता, आत्मसम्मान, स्वतंत्र चेतना और पितृसत्तात्मक व्यवस्था के प्रति प्रतिरोध की भावना भी विद्यमान है। महादेवी अपने स्त्री–पात्रों को दया की वस्तु के रूप में प्रस्तुत नहीं करतीं, बल्कि उनके श्रम, संघर्ष, जीवन–शक्ति और आत्मसम्मान को साहित्यिक गरिमा प्रदान करती हैं। श्रृंखला की कड़ियाँ में व्यक्त उनका वैचारिक नारी–विमर्श उनके संस्मरणात्मक रेखाचित्रों में जीवन के ठोस अनुभवों के रूप में अभिव्यक्त होता है। इस दृष्टि से महादेवी वर्मा का गद्य हिंदी के नारीवादी विमर्श की महत्त्वपूर्ण आधारभूमि सिद्ध होता है।

बीज शब्द :

महादेवी वर्मा, संस्मरणात्मक रेखाचित्र, नारी संवेदना, नारीवादी विमर्श, स्त्री–अस्मिता, पितृसत्ता, स्त्री–स्वातंत्र्य, आत्मसम्मान, स्त्री–चेतना।

प्रस्तावना :

हिंदी साहित्य के आधुनिक काल में महादेवी वर्मा का साहित्यिक व्यक्तित्व बहुआयामी है। वे कवयित्री, गद्यकार, संस्मरणकार, रेखाचित्रकार, शिक्षाविद् तथा समाजचिंतक के रूप में हिंदी साहित्य में विशिष्ट स्थान रखती हैं। छायावादी काव्यधारा के प्रमुख स्तंभों में सम्मिलित होने के साथ–साथ उन्होंने हिंदी गद्य को भी संवेदना और सामाजिक चेतना की नई दृष्टि प्रदान की। उनके गद्य–साहित्य में मनुष्य के प्रति गहरी करुणा तथा समाज के वंचित वर्गों के प्रति सहानुभूति दिखाई देती है।

महादेवी वर्मा की रचनात्मक दृष्टि का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष स्त्री–जीवन के प्रति उनकी सजगता है। वे स्त्री को केवल पारिवारिक संबंधों के आधार पर नहीं देखतीं, बल्कि उसे स्वतंत्र मानवीय अस्तित्व के रूप में स्वीकार करती हैं। उनकी स्त्रियाँ पत्नी, माँ, बेटी अथवा सेविका होने के साथ–साथ अपने सुख–दुख, इच्छाओं, आकांक्षाओं और संघर्षों से युक्त स्वतंत्र व्यक्तित्व भी हैं।

महादेवी के संस्मरणात्मक रेखाचित्रों में स्मृति केवल बीते हुए जीवन को याद करने का माध्यम नहीं है। वह सामाजिक यथार्थ को पुनः देखने और उसकी विसंगतियों को पहचानने का माध्यम बनती है। अतीत के चलचित्र और स्मृति की रेखाएँ में लेखिका ने अपने जीवन में संपर्क में आए अनेक व्यक्तियों के जीवन–चित्र प्रस्तुत किए हैं। इन रेखाचित्रों में स्त्री–पात्र विशेष रूप से ध्यान आकर्षित करते हैं।

अतीत के चलचित्र का प्रथम प्रकाशन 1941 तथा स्मृति की रेखाएँ का प्रथम प्रकाशन 1943 में माना जाता है। इन कृतियों के माध्यम से महादेवी ने तत्कालीन समाज में स्त्री की वास्तविक स्थिति को संवेदनात्मक धरातल पर प्रस्तुत किया है। दूसरी ओर शृंखला की कड़ियाँ में उन्होंने स्त्री की सामाजिक स्थिति और स्वतंत्र अस्तित्व से संबंधित प्रश्नों को वैचारिक रूप से उठाया है। इस कृति का प्रथम प्रकाशन 1942 में हुआ। अतः इन तीनों कृतियों को साथ रखकर देखने पर महादेवी की नारी–दृष्टि का समग्र स्वरूप स्पष्ट होता है।

महादेवी वर्मा की नारी-दृष्टि :

महादेवी वर्मा की नारी–दृष्टि का मूल आधार स्त्री की स्वतंत्र मानवीय सत्ता है। वे स्त्री को पुरुष के अधीन या उसके अस्तित्व की पूरक इकाई के रूप में स्वीकार नहीं करतीं। उनके लिए स्त्री का अपना व्यक्तित्व, अपनी चेतना और अपनी संवेदनात्मक दुनिया है।

श्रृंखला की कड़ियाँ में महादेवी ने भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति का विश्लेषण करते हुए उसकी पराधीनता की ओर संकेत किया है। स्त्री के जीवन को परंपरा, रूढ़ि, परिवार और सामाजिक मान्यताओं द्वारा नियंत्रित किए जाने की समस्या उनकी चिंता का विषय है। वे स्त्री के लिए ऐसी स्वतंत्रता की अपेक्षा करती हैं जिसमें वह अपने व्यक्तित्व को पहचान सके।

रेखाचित्रों में यही विचार सैद्धांतिक रूप में न रहकर जीवन के अनुभवों में बदल जाता है। बिंदा, बिट्टो, बिबिया, बालिका–माँ और भक्तिन जैसे पात्रों के माध्यम से महादेवी स्त्री–जीवन की वास्तविक स्थितियों को सामने लाती हैं।

पितृसत्तात्मक व्यवस्था और स्त्री :

नारीवादी विमर्श में पितृसत्ता ऐसी सामाजिक व्यवस्था है जिसमें सत्ता, निर्णय और सामाजिक नियंत्रण मुख्यतः पुरुष–केंद्रित होते हैं। महादेवी के संस्मरणात्मक रेखाचित्रों में पितृसत्ता के अनेक प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप

दिखाई देते हैं।

स्त्री की इच्छाओं की उपेक्षा, विवाह संबंधी निर्णयों में उसकी स्वतंत्रता का अभाव, आर्थिक निर्भरता, बाल–विवाह तथा परिवार में असमान व्यवहार इसके प्रमुख रूप हैं। 'बालिका–माँ' का प्रसंग इस दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण है। बालिका की आयु ऐसी होती है जब उसके व्यक्तित्व का विकास होना चाहिए, लेकिन सामाजिक रूढ़ियाँ उसे समय से पहले वैवाहिक और मातृत्व की जिम्मेदारियों में बाँध देती हैं।

इसी प्रकार बिंदा का जीवन बालिका की असुरक्षा और पारिवारिक उपेक्षा की समस्या को सामने लाता है। यहाँ महादेवी केवल व्यक्तिगत दुख का चित्रण नहीं करतीं, बल्कि उस सामाजिक मानसिकता को भी उजागर करती हैं जिसके कारण बालिका की इच्छाओं और भावनाओं को महत्व नहीं दिया जाता।

आर्थिक पराधीनता और स्त्री–अस्मिता :

स्त्री की स्वतंत्रता के प्रश्न में आर्थिक स्थिति का विशेष महत्त्व है। आर्थिक रूप से निर्भर स्त्री सामाजिक और पारिवारिक निर्णयों में भी सीमित भूमिका निभाती है। महादेवी के रेखाचित्रों में श्रमशील एवं आर्थिक रूप से वंचित स्त्रियों के जीवन के माध्यम से इस वास्तविकता को स्पष्ट किया गया है।

इन स्त्रियों का श्रम परिवार और समाज के लिए अनिवार्य है, किंतु उनके श्रम को हमेशा उचित सम्मान नहीं मिलता। महादेवी स्त्री के श्रम को उसकी पहचान और आत्मसम्मान से जोड़ती हैं। स्त्री के लिए श्रम केवल जीविका का साधन नहीं, बल्कि आत्मनिर्भरता और अस्तित्व की रक्षा का माध्यम भी है।

'भक्तिन' इसका प्रभावशाली उदाहरण है। भक्तिन सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से वंचित पृष्ठभूमि से आती है, किंतु वह अपनी परिस्थितियों से हार नहीं मानती। उसका श्रम, संघर्ष और आत्मविश्वास उसके व्यक्तित्व की विशिष्ट पहचान बन जाते हैं।

'भक्तिन' : संघर्षशील स्त्री का रूप :

महादेवी वर्मा के संस्मरणात्मक रेखाचित्रों में 'भक्तिन' का चरित्र स्त्री की संघर्षशीलता और आत्मसम्मान का अत्यंत प्रभावशाली उदाहरण है। भक्तिन सामाजिक दृष्टि से निम्न स्थिति में होने के बावजूद मानसिक रूप से कमजोर नहीं है।

वह श्रम को अपनी शक्ति बनाती है। उसका व्यक्तित्व यह प्रमाणित करता है कि सामाजिक स्थिति और मानवीय गरिमा एक ही चीज नहीं हैं। व्यक्ति सामाजिक रूप से वंचित हो सकता है, किंतु उसके भीतर आत्मसम्मान और स्वतंत्र चेतना विद्यमान रह सकती है।

नारीवादी दृष्टि से भक्तिन इसलिए महत्त्वपूर्ण है क्योंकि वह 'अबला नारी' की रूढ़ छवि को चुनौती देती है। वह परिस्थितियों से संघर्ष करती है और अपनी पहचान बनाए रखती है। महादेवी उसके माध्यम से स्त्री की अंतर्निहित जीवन–शक्ति को सामने लाती हैं।

बिंदा, बिट्टो, बिबिया और बालिका–माँ : स्त्री–जीवन के विविध रूप :

महादेवी के रेखाचित्रों में स्त्री का कोई एक निश्चित रूप नहीं है। प्रत्येक पात्र स्त्री–जीवन की किसी विशेष परिस्थिति और अनुभव को अभिव्यक्त करता है।

बिंदा के जीवन में बालिका की असुरक्षा, उपेक्षा और सामाजिक दबाव दिखाई देता है। वह उस बालिका का प्रतिनिधित्व करती है जिसकी भावनाओं और व्यक्तित्व को सामाजिक व्यवस्था पर्याप्त महत्व नहीं देती।

बिट्टो और बिबिया जैसे पात्र भी अभाव और सामाजिक परिस्थितियों से प्रभावित स्त्री जीवन के रूपों को सामने लाते हैं। महादेवी की विशेषता यह है कि वे इन स्त्रियों को केवल पीड़िता के रूप में चित्रित नहीं करतीं। उनके व्यक्तित्व में संवेदना, चेतना और जीवन–संघर्ष की क्षमता को भी पहचानती हैं।

'बालिका–माँ' का प्रसंग स्त्री के शरीर और जीवन पर सामाजिक नियंत्रण का प्रश्न उठाता है। बाल–विवाह के कारण बालिका का बचपन समाप्त हो जाता है और मातृत्व जैसी गंभीर जिम्मेदारी उस पर समय से पहले डाल दी जाती है। यह स्थिति स्त्री की स्वतंत्रता और व्यक्तित्व–विकास के प्रश्न को गंभीर बना देती है।

करुणा से प्रतिरोध तक :

महादेवी की नारी–संवेदना का सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष उनकी करुणा है, किंतु यह करुणा निष्क्रिय भावुकता नहीं है। उनकी करुणा सामाजिक अन्याय को पहचानने वाली दृष्टि है।

जब पाठक उनके स्त्री–पात्रों के जीवन से परिचित होता है, तो वह केवल उनके दुख को नहीं देखता, बल्कि उन सामाजिक परिस्थितियों को भी पहचानता है जिनके कारण उनका जीवन कठिन बना है। इस प्रकार करुणा सामाजिक प्रश्न में बदल जाती है।

महादेवी की स्त्रियाँ प्रायः प्रत्यक्ष विद्रोह नहीं करतीं, किंतु उनका संघर्ष और आत्मसम्मान सामाजिक रूढ़ियों को चुनौती देता है। उनकी जीवन–स्थितियाँ स्वयं पितृसत्तात्मक व्यवस्था पर प्रश्नचिह्न बन जाती हैं।

स्त्री–अस्मिता और आत्मसम्मान :

महादेवी के स्त्री–पात्रों की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषताओं में से एक आत्मसम्मान है। परिस्थितियाँ उन्हें सीमित कर सकती हैं, लेकिन उनकी मानवीय गरिमा को समाप्त नहीं कर पातीं।

महादेवी स्त्री को देवी बनाकर उसकी वास्तविक समस्याओं को छिपाने के पक्ष में नहीं हैं और न ही उसे अबला बनाकर उसकी शक्ति को समाप्त करती हैं। उनकी स्त्री मूलतः एक मनुष्य है– संवेदनशील, संघर्षशील और आत्मसम्मान से युक्त।

यह दृष्टिकोण महादेवी की नारीवादी चेतना को विशिष्ट बनाता है। स्त्री के प्रति उनकी संवेदना में सम्मान का भाव प्रमुख है। वे उसकी पीड़ा को समझने के साथ–साथ उसके व्यक्तित्व की शक्ति को भी पहचानती हैं।

संस्मरणात्मकता और हाशिए की स्त्री :

महादेवी के रेखाचित्रों में संस्मरणात्मकता का विशेष महत्त्व है। स्मृति के माध्यम से वे उन व्यक्तियों को पुनः जीवित करती हैं जिन्हें इतिहास और समाज प्रायः भुला देता है।

विशेष रूप से स्त्री पात्रों के संदर्भ में यह प्रक्रिया महत्त्वपूर्ण है। जिन स्त्रियों का जीवन किसी बड़े ऐतिहासिक दस्तावेज का हिस्सा नहीं बना, वे साहित्य में महादेवी की स्मृति के माध्यम से स्थान प्राप्त करती हैं।

इस अर्थ में महादेवी की स्मृति स्वयं एक प्रकार का साहित्यिक प्रतिरोध बन जाती है। वे हाशिए की स्त्री को साहित्य के केंद्र में लाती हैं और उसके जीवन को महत्त्वपूर्ण मानवीय अनुभव के रूप में स्थापित करती हैं।

भारतीय संदर्भ में महादेवी का नारीवाद :

महादेवी वर्मा का नारीवाद भारतीय सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों से निर्मित है। वे स्त्री–मुक्ति

को केवल पुरुष–विरोध या पारिवारिक संबंधों से मुक्ति के रूप में नहीं देखतीं। उनके लिए स्त्री–मुक्ति का अर्थ सम्मानपूर्ण, स्वतंत्र और समान मानवीय अस्तित्व की स्थापना है।

उनकी दृष्टि में स्त्री की समस्याएँ परिवार, अर्थव्यवस्था, सामाजिक रूढ़ियों और सांस्कृतिक मान्यताओं से जुड़ी हैं। इसलिए स्त्री की स्थिति में परिवर्तन के लिए केवल व्यक्तिगत प्रयास पर्याप्त नहीं है, सामाजिक सोच में परिवर्तन भी आवश्यक है।

यही कारण है कि महादेवी की नारी–संवेदना आज भी प्रासंगिक है। उन्होंने जिस स्त्री–अस्मिता और आत्मसम्मान की बात की, वह वर्तमान नारीवादी विमर्श के मूल प्रश्नों से गहराई से जुड़ी हुई है।

समकालीन प्रासंगिकता :

आज स्त्री–विमर्श शिक्षा, रोजगार, आर्थिक स्वतंत्रता, समान अवसर, घरेलू श्रम, व्यक्तिगत निर्णय, सामाजिक सुरक्षा और लैंगिक समानता जैसे प्रश्नों से जुड़ा हुआ है। महादेवी के रेखाचित्र इन प्रश्नों की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को समझने में सहायता करते हैं।

उनकी रचनाएँ यह स्पष्ट करती हैं कि स्त्री की समस्याएँ केवल व्यक्तिगत नहीं हैं। उनके पीछे सामाजिक संरचना, पारिवारिक व्यवस्था, आर्थिक स्थिति और सांस्कृतिक सोच की भूमिका होती है।

वर्तमान समय में भी स्त्री की गरिमा, स्वतंत्रता और समानता के प्रश्न महत्त्वपूर्ण हैं। इसलिए महादेवी वर्मा का साहित्य केवल अपने समय का साहित्य नहीं है, बल्कि वह आज के समाज को भी आत्मावलोकन के लिए प्रेरित करता है।

निष्कर्ष :

महादेवी वर्मा के संस्मरणात्मक रेखाचित्र हिंदी साहित्य में स्त्री–जीवन के सामाजिक, आर्थिक और भावनात्मक यथार्थ का महत्त्वपूर्ण दस्तावेज हैं। अतीत के चलचित्र और स्मृति की रेखाएँ में स्त्री की पीड़ा, उपेक्षा, सामाजिक बंधन, आर्थिक विवशता और संघर्ष का मार्मिक चित्रण हुआ है।

महादेवी की विशिष्टता यह है कि वे स्त्री को केवल पीड़ित और दया की पात्र के रूप में प्रस्तुत नहीं करतीं। उनके स्त्री–पात्रों में आत्मसम्मान, श्रमशीलता, संघर्ष और जीवन के प्रति आस्था दिखाई देती है। बिंदा, बिट्टो, बिबिया, बालिका–माँ और भक्तिन जैसे पात्र स्त्री जीवन के विविध आयामों को अभिव्यक्त करते हैं।

उनकी नारी–संवेदना में करुणा और प्रतिरोध का गहरा संबंध है। उनकी करुणा सामाजिक अन्याय को पहचानने की दृष्टि देती है और उनका स्त्री–चित्रण पितृसत्तात्मक व्यवस्था पर प्रश्न खड़ा करता है। श्रृंखला की कड़ियाँ में व्यक्त वैचारिक नारी–चेतना उनके रेखाचित्रों में जीवन के अनुभवों के रूप में अभिव्यक्त होती है।

अतः कहा जा सकता है कि महादेवी वर्मा के संस्मरणात्मक रेखाचित्रों में नारी–संवेदना केवल भावुक सहानुभूति नहीं, बल्कि सामाजिक चेतना, आत्मसम्मान और स्त्री–अस्मिता का सशक्त रूप है। उनकी स्त्री दया की वस्तु नहीं, बल्कि अपने संघर्ष और जीवनानुभवों के माध्यम से स्वतंत्र मानवीय अस्तित्व की स्थापना करने वाली व्यक्तित्व–संपन्न इकाई है। इसी कारण महादेवी वर्मा का रेखाचित्र–साहित्य हिंदी के नारीवादी विमर्श की महत्त्वपूर्ण आधारभूमि है तथा वर्तमान समय में भी उसकी प्रासंगिकता बनी हुई है।

संदर्भ सूची :

1. चतुर्वेदी, रा. (2010). हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास. लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।

2. सिंह, ना. (1955). छायावाद. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. शर्मा, रा. (वर्ष अनुपलब्ध). महादेवी वर्मा. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. वर्मा, म. (1941). अतीत के चलचित्र. भारती भंडार, प्रयाग।
5. वर्मा, म. (1942). श्रृंखला की कड़ियाँ. राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली।
6. वर्मा, म. (1943). स्मृति की रेखाएँ. भारती भंडार, प्रयाग।
7. वर्मा, म. (1964). पथ के साथी. भारती भंडार, प्रयाग।
8. वर्मा, म. (1962). साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध. लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
9. वर्मा, म. (2006). यामा. लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज।
10. वर्मा, म. (2008). मेरा परिवार. लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज।

मो 6287060526
ईमेल kumarvipul4327@gmail.com

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2026 Page No. : 185-189

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.22679720

1857 के स्वाधीनता आंदोलन में हिंदी पत्रकारिता का योगदान

अनुराग शुक्ल, शोधार्थी
प्रो. जगदेव कुमार शर्मा, शोध निदेशक,
आधुनिक विषय पीठ, मानविकी विभाग,
श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय।

शोध सारांश :

1857 के स्वाधीनता आंदोलन में हिंदी (और निकटवर्ती भारतीय भाषाई) पत्रकारिता ने जनचेतना, विद्रोही भावनाओं के प्रसार और औपनिवेशिक सत्ता के विरुद्ध वैचारिकी तैयार करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसने न केवल विद्रोह को स्वर दिया, बल्कि आगे की राष्ट्रवादी पत्रकारिता और सुसंगठित स्वतंत्रता संग्राम के लिए वैचारिक धारा भी निर्मित की। शोध की पृष्ठभूमि 1857 का विद्रोह भारतीय स्वाधीनता संघर्ष की पहली संगठित तथा व्यापक घटना माना जाता है, जिसमें सैन्य असंतोष के साथ–साथ सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक असंतोष भी जुड़े थे। इस पृष्ठभूमि में समाचारपत्र और पत्रिकाएँ एक ऐसे मंच के रूप में उभरीं, जिनके माध्यम से विद्रोह के समाचार, घोषणाएँ और विचार व्यापक जनता तक पहुँचे। प्रमुख पत्र–पत्रिकाएँ और उनकी भूमिका विद्रोह के समय उर्दू–हिंदी क्षेत्र में 'पैयाम–ए–आजादी', 'समाचार सुधा वर्षण' जैसे पत्रों ने अंग्रेजी शासन के विरुद्ध संदेशों, फरमानों और अपीलों को प्रकाशित कर क्रांतिकारियों की आवाज को बल दिया। बहादुर शाह जफर के नाम से निकले फरमानों और विद्रोही घोषणाओं के प्रकाशन के कारण कई पत्र मुकदमों और दमन का शिकार बने, जिससे उनकी राष्ट्रीय प्रतिबद्धता उजागर होती है। जनचेतना और राष्ट्रीय भावना हिंदी पत्रकारिता ने 1857 के प्रसंग में जनता को ऐतिहासिक अन्याय, आर्थिक शोषण और धार्मिक सांस्कृतिक हस्तक्षेप के विरुद्ध सचेत किया। पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों, संपादकीयों और समाचारों ने सैनिक विद्रोह को लोक–विद्रोह में रूपांतरित करने में सहायक भूमिका निभाई, जिससे राष्ट्रीय एकता और स्वतंत्रता की आकांक्षा सुदृढ़ हुई।

औपनिवेशिक दमन और प्रेस कानून स्वतंत्रतापरक सामग्री और विद्रोही अपीलों के प्रकाशन के उत्तर में ब्रिटिश सरकार ने प्रेस पर कड़ी निगरानी, लाइसेंस व्यवस्था और गैगिंग एक्ट जैसे दमनकारी उपाय लागू किए। इन कानूनी प्रतिबंधों, मुकदमों और संपादकों पर हुए अत्याचारों ने हिंदी पत्रकारिता को संघर्षशील चरित्र प्रदान किया और उसे स्वतंत्रता आंदोलन का सक्रिय अंग बना दिया। निष्कर्षात्मक संकेत अध्ययन से स्पष्ट होता है कि 1857 के स्वाधीनता आंदोलन में हिंदी पत्रकारिता मात्र सूचना का माध्यम न रहकर राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन

की विचारधारा, संगठन और जनसंचार की धुरी के रूप में कार्यरत रही। इसने आगे की भारतीय राष्ट्रवादी पत्रकारिता के लिए वैचारिक, भाषिक और संगठनात्मक आधार तैयार किया, जिसका प्रभाव 1857 से 1947 तक के पूरे स्वतंत्रता संघर्ष में निरंतर रूप से देखा जा सकता है।

भूमिका :

हिंदी पत्रकारिता की प्रथम किरण बंगाल में प्रस्फुटित हुई। हिंदी का प्रथम पत्र 30 मई 1826 को कोलकाता से मिला। इस काल में पत्रकारिता की दृष्टि भारतीयों का हित दासता मुक्ति में, आपसी फूट, कलह, अविद्या और अविवेक के नाश में था। सामाजिक–धार्मिक विसंगतियों को दूर करने और विडंबनाओं के उन्मूलन में था। इस चरण की पत्रकारिता का काल संयोग से अनेक समाज सुधारकों का काल भी था। प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के समय भारतेंदु की आयु सात वर्ष की थी लेकिन समकालीन अन्य पत्रकार और संपादक अपने–अपने ढंग से जातीय उत्थान, भारतीय अस्मिता की पहचान तथा अतीत का गौरव गान कर रहे थे। 1857 के स्वाधीनता आंदोलन के समय देश की पत्रकारिता का इतिहास को मात्र 31 वर्ष ही हुए थे परन्तु इस समय सभी भाषाओं के पत्रों ने आंदोलन में अपनी कलम से ज्वाला उत्पन्न की थी। जिसे भारतीयों के मन में क्रांति की भावना जागृति हुई। कुछ समाचार पत्रों के कारण देश में जहाँ क्रांति फैली वहाँ अंग्रेजों को इन पत्रों के संपादकों एवं पत्रकारों की कलम की धार से बहुत कठिनाई हुई।

सन् 1757 के प्लासी युद्ध से लेकर सन् 1857 के बीच अंग्रेजी साम्राज्य शाही तथा शोषण के विरुद्ध अनेक विद्रोह हुए लेकिन व्यापक हित और जन जागरण के अभाव में हुए सफल नहीं हुए। वैसे 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम में भी सफलता नहीं मिली थी लेकिन यह संग्राम आगे स्वाधीनता आंदोलन का अग्रदूत साबित हुई। इस असफल हुए संग्राम ने सिखा दिया कि जनजागरण व्यापक हित तथा अखिल भारतीय स्तर पर संगठित हुए बिना आजादी का स्वप्न देखना व्यर्थ है। जनजागरण पत्रकारिता का उद्देश्य है।

व्यापक हित के उद्देश्य से ही 1826 में 'उदंत मार्तण्ड' का प्रकाशन हुआ। इसके प्रथम संपादकीय में पंडित युगल किशोर शुक्ल ने लिखा था कि हिंदुस्तानियों के हित के हेतु इस पत्र का प्रकाशन हुआ है। उस समय में भारतवासियों के लिए पराधीनता से मुक्ति ही उनका हित था। यह कहने से संकोच नहीं कि दासता से मुक्ति की ओर ले जाने के महान उद्देश्य से हिंदी पत्रकारिता का आरंभ हुआ था। यह संयोग था कि कलकत्ता अंग्रेजी की आरंभिक राजधानी थी और हिंदी पत्रकारिता का आरंभ भी यहीं से हुआ। जिस समय हिंदी पत्रकारिता का पहला पत्र निकला उस समय तक भारत में अंग्रेजी शासन की जड़े काफी मजबूत हो चुकी थी। अंग्रेजों का दमन चक्र जारी था। देशी रियासतों को अंग्रेजी शासन व्यवस्था का अंग बनाने तथा देशी नरेशों के स्वाभिमान को धूल धूसरित करने में अंग्रेजों को मजा आ रहा था। देश का वैभव एवं धन दौलतों को इंग्लैंड पहुंचाया जा रहा था। अकाल, सूखा तथा अन्य प्राकृतिक आपदाओं की मार झेलती हुई भारतीय जनता अंग्रेजी कर नीति के संपोषण हेतु दुधारू गाय बनती जा रही थी। आधुनिकता और नवजीवन बोध के नाम पर भारतीय संस्कृति को अपदस्थ कर अंग्रेजियत की प्रतिष्ठा के प्रयास किये जा रहे थे। ऐसी स्थिति में जनता के भीतर सुलगता हुआ असंतोष और विरोध का लावा फूटना स्वाभाविक था। सन् 1857 का महा विस्फोट उसी का परिणाम था। ऐसे समय में हिंदी पत्रकारिता की आयु मात्र 31 वर्ष की थी और वह दासता से मुक्ति की ओर ले जाने के महान संकल्प से जुड़ी हुई थी।

समाचार पत्रों की प्रभावात्मकता की कोई तुलना नहीं है उसकी क्षमता का आकलन करते हुए शायर अकबर ने लिखा था –

खींचो न कमानों को न तलवार निकालो।

जब तोप मुकाबिल है तो अखबार निकालो।।

साम्राज्यवादी तोप के प्रतिरोध में हिंदी पत्रकारिता ने हिंदी भाषी क्षेत्रों में अपनी शक्ति का अद्वैत प्रदर्शन किया। साम्राज्यवाद के प्रति घृणा और उससे मुक्ति उसका लक्ष्य था क्योंकि अंग्रेजी शासन का प्रतिदिन बढ़ता अनाचार अमानवीयता और नृशंसता के विरोध को संपादकों और पत्रकारों ने अपनी कर्तन समझा और बिना किसी भ्रम व प्रलोभन के अपने समय की तत्कालीन चुनौतियों के समक्ष डटकर खड़े रहे। वे अपनी कलम के माध्यम से स्वाधीनता के संघर्ष को तलवार की भांति तेज धार देते रहे और अपने–अपने ढंग से आहुतियाँ देते रहें। किसी को फांसी मिली तो किसी को काला पानी में यातना झेलनी पड़ी। इन सबने व्यापक जन जागृति की ज्वाला फैलाने का कार्य किया। उन समाचार पत्रों के लेख व सम्पादकीय ने लोगों के मन में दासता से मुक्ति का आहवान किया। इस तरह जनजागरण में पत्रकारिता का योगदान नकारा नहीं जा सकता। हिंदी ही नहीं बल्कि भारतीय भाषाओं के सभी पत्रकारों ने एक ऐसा वातावरण निर्मित किया था जो आमजन को अवलोकित कर सका। हिंदी पत्रकारिता का आदि चरण उदंत मार्तंड के प्रकाशन वर्ष 1826 से लेकर स्वतंत्रता संग्राम यानी 1857 तक माना जाता है। इस काल में प्रकाशित बनारस अखबार, मार्तंड, जगदीप भास्कर, सुधाकर बुद्धीप्रकाश, समाचार सुधा दर्पण जैसे पत्रों ने जनजागरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। ये वे पत्र थे जिन्होंने आगे के राष्ट्रीय आंदोलनों के लिए वैचारिक पृष्ठभूमि तैयार की थी। भारतीयों के मन में स्व–सजगता की भावना पैदा की थी। हिंदी पत्रकारिता के आरंभिक चरण में संपादकों के प्रकाशन हेतु अंग्रेजों की रीति–नीति ध्यान रखना होता था। यदि ऐसा न होता तो वे अंग्रेजी शासन के कोपभाजन भी बनते थे। इसी कारण विभिन्न पक्षों का प्रकाशन कभी अवरुद्ध तो कभी स्थगित करना पड़ता था। कभी–कभी धन अभाव के कारण बंद भी करना पड़ता था लेकिन भारतीय पत्रकारिता के आदि चरण के संपादकों पत्रकारों की निष्ठा और संपादकीय कार्य के प्रति उत्साह में कोई कमी नहीं आई।

1854 में हिंदी का प्रथम दैनिक समाचार 'सुधा दर्पण' कोलकाता से निकला। जनता को जगाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले इस पत्र के संपादक श्यामसुंदर सेन की कलम से यह कार्य संभव हुआ। अपने पत्र के माध्यम से अंग्रेजी सरकार की नीतियों के समाचार हो या उसके प्रति जन आक्रोश हो वे उसे लगातार छापते रहे। 1857 के प्रथम स्वाधीनता संग्राम में जन भागीदारी का उल्लेख करते हुए उन्होंने लिखा 'साम्राज्य में जब संकट पड़ा तब गवर्नर ने अनेक वायदे किए लेकिन विद्रोही सेना का उन पर विश्वास नहीं था। वे युद्ध को समाप्त करने के पक्ष में नहीं थे। सच्ची बात तो यह है कि युद्ध में दबाव रहा और अनेक क्षेत्रों की जनता सेवा में मिल रही है।' सेन के समाचार पत्रों ने जनता में उत्साह की तीव्रता बढ़ा रखी थी। लेकिन अंग्रेजी सरकार ने दमन नीति के चलते श्याम सुंदर सेन को मुकदमे में फसाया लेकिन वह बरी हो गए और पुनः साहस और निर्भीकता के साथ भारतीयों को समाचार के माध्यम से जगाने का प्रयास करते रहे। इस काल की पत्रकारिता की दृष्टि से भारतीयों को जगाने में सहयोग देते रहना उनके हित का प्रयास करना था।

उत्तर प्रदेश से प्रकाशित पत्रों में 'बनारस अखबार' पहला हिंदी साप्ताहिक पत्र था। यह जनवरी 1845

में काशी से प्रकाशित हुआ था। यह हिंदी भाषी प्रान्तों का प्रथम हिंदी पत्र था। इसे राजा शिवप्रसाद सितारे हिंद ने प्रकाशित कराया था। इसके संपादक श्री गोविंद रघुनाथ धते जी थे। राजा शिवप्रसाद के उर्दू की हितैशी होने के कारण यह हिंदी पत्र होने पर भी बनारस अखबार की भाषा हिंदी ना होकर उर्दू थी। बनारस अखबार के बाद काशी से ही 1830 में श्री तारा मोहन मिश्र द्वारा साप्ताहिक पत्र 'सुधाकर' का प्रकाशन हुआ। यह साप्ताहिक पत्र बांग्ला और हिंदी दोनों भाषाओं में प्रकाशित होता था। तीन वर्ष बाद यह केवल हिंदी में प्रकाशित होने लगा।

आगरा से 'बुद्धि प्रकाश' का प्रकाशन पत्रकारिता की दृष्टि से ही नहीं अपितु भाषा एवं शैली के विकास के विचार से भी विशेष महत्व रखता है। इसका प्रकाशन वर्ष 1852 है। इसके संपादक मुंशी सदा सुखलाल जी थे। आगरा से 'सर्वहितकारक' नाम का साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन 1855 में हुआ। यह सामाजिक सुधार, जागरण और जनता के कल्याण के उद्देश्य से प्रकाशित होता था। इसमें हिंदी और उर्दू दोनों भाषा रहती थी पर हिंदी इसकी मुख्य भाषा थी। शिक्षा के प्रचार प्रसार के फलस्वरूप हिंदी पत्रकारिता का विकास भारतीय स्वतंत्रता संग्राम 1857 तक उतनी तेजी से नहीं हुआ जितनी अपेक्षा की गई थी। इस समय 13 जून 1857 को प्रेस संबंधी एक कानून जिसे गैंगिंग एक्ट कहते हैं को लागू किया गया। 1857 की क्रांति की विफलता के परिणामस्वरूप भारतीयों कि मनः स्थिति अवसादमय में हो गई थी। इसका प्रभाव समाज की राजनीतिक एवं सामाजिक स्थिति के साथ ही साथ हिंदी पत्रकारिता के विकास पर भी पड़ा। दमनकारी प्रेस संबंधी कानून की अवधि समाप्त होने एवं राजनीतिक भूकंप के शांत होने पर प्रदेश की हिंदी पत्रकारिता में नई जागृति उत्पन्न हुई। 1857 में नाना साहब के विश्वासपात्र सलाहकार में अजीमउल्ला खान द्वारा दिल्ली से पयाम–ए–आजादी (स्वतंत्रता का संदेश) एक महत्वपूर्ण क्रांतिकारी समाचार पत्र का प्रकाशन किया गया। यह समाचार पत्र उर्दू, हिंदी और मराठी तीनों भाषाओं में प्रकाशित होता था। जिसका संपादन मिर्जा बेदार बख़त (बहादुर शाह के पौत्र) के द्वारा किया जाता था। इसने ब्रिटिश सरकार के विरोध में एकता और प्रतिरोध में बढ़ावा देने का कार्य करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

जिसके परिणामस्वरूप अंग्रेजी शासन द्वारा इस पर प्रतिबंध लगा दिया गया। पयाम–ए–आजादी समाचार पत्र का एक मात्र उद्देश्य था क्रांतिकारी संगठनों तक अपने संदेश को पहुंचाना। इस पत्र का प्रकाशन फरवरी, 1857 में झांसी से मराठी संस्करण के रूप में शुरू हुआ था। नाना साहब की सलाह से दिल्ली लीथो प्रेस से देवनागरी और उर्दू दोनों लिपियों में प्रकाशन किया गया। अजीमुल्ला खां को ज्ञात था कि किसी क्रांति के संयोजन में समाचार पत्र की क्या भूमिका और उसका कितना महत्त्व होता है? इस कारण उन्होंने प्रेस की व्यवस्था की। यह पत्र क्रांतिकारियों के संदेश एवं विचारों को प्रमुखता से प्रकाशित किया करता था। सम्राट बहादुर शाह जफर की घोषणाएं भी प्रमुखता से इसमें छपती रहती थी। पत्र में प्रकाशित सम्राट के संदेशों में हिंदू मुस्लिम एकता का आह्वान किया गया था। उन्होंने अपने संदेश में स्वतंत्रता के महत्त्व पर बल देते हुए कहा था कि यह मानव को ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ देन हैं उसे हमें प्राप्त करना चाहिए न कि दासता की बेड़ियों में जकड़े रहने देना चाहिए।

इस प्रकार मुरादाबाद, रुहेलखंड, बरेली की भारतीय फौजों को इस संग्राम में सम्मिलित होने का संदेश इस पत्र के माध्यम से जनता एवं सैनिकों तक पहुंचा। लेखक जी बी मालशन ने अपनी पुस्तक 'दी रेड पैम्फलेट' में पयाम–ए'आजादी के संपादकीय लेख पर टिप्पणी में लिखते हैं कि अंग्रेजों की फूट डालो नीति उस समय से लागू थी। 1857 में दिल्ली पर अधिकार प्राप्त करने के पश्चात् अंग्रेजों द्वारा सर्वप्रथम इस पत्र के प्रकाशन को

बंद किया गया और संपादक मिर्जा बेदार बख्श को फांसी दी गई। सर विलियम हॉवार्ड ने अपनी डायरी में लिखा है कि किस प्रकार क्रूरता के साथ इस पत्र के संपादक के शरीर पर सुअर की चर्बी मल कर फांसी दी गई तथा अंग्रेजी शासन ने इस पत्र के पाठकों को भी फांसी पर चढ़ा दिया। विश्व इतिहास में भारत एक ऐसा देश है जहाँ पत्र के पाठकों को फांसी की सजा मिली परन्तु पत्रकारिता के इतिहास में हिंदुस्तान को ही गौरव प्राप्त है जिसके ओजस्वी एवं प्रभावशाली पत्र ने अंग्रेजी शासन की नींद उड़ा दी और संपादक के साथदृसाथ पाठकों के लिए फिर बलिदान देना पड़ा।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. सूचना एवं जनसंचार वार्षिकी – हिंदी और उर्दू पत्रकारिता, पृष्ठ 83
2. त्रिपाठी व्यास मणि – स्वाधीनता आंदोलन और हिंदी पत्रकारिता, उत्तर प्रदेश, अगस्त 2007, पृष्ठ 132
3. गौंड ऋषि किशोर – सन सत्तावन का क्रांतिकारी अखबार, उर्मिला, 2007, पृष्ठ 9
4. डॉ जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी – हिंदी पत्रकारिता का इतिहास।
5. डॉ आर के गुप्ता – हिंदी पत्रकारिता का इतिहास एवं विकास।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2026 Page No. : 190-197

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.22679720

विवाह संस्था के बदलते स्वरूप और नई पीढ़ी के सामाजिक दृष्टिकोण का समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ० टुम्पा कुमारी

सहायक प्राध्यापक, विश्वविद्यालय स्नातकोत्तर समाजशास्त्र विभाग,
भूपेन्द्र नारायण मंडल विश्वविद्यालय, लालूनगर, मधेपुरा–852113 (बिहार)

सारांश :

भारतीय समाज में विवाह परिवार, जाति, रिश्तेदारी, संपत्ति, लैंगिक भूमिकाओं और सामाजिक प्रतिष्ठा को जोड़ने वाली प्रमुख संस्था है। पिछले दो दशकों में विवाह की आयु, जीवनसाथी–चयन, विवाह–पूर्व परिचय, शिक्षा, डिजिटल माध्यम और वैवाहिक अपेक्षाओं में स्पष्ट परिवर्तन दर्ज हुए हैं। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण के अनुसार 20–24 वर्ष की महिलाओं में 18 वर्ष से पहले विवाह का अनुपात 2005–06 के 47.4% से घटकर 2015–16 में 26.8%, 2019–21 में 23.3% और 2023–24 में 20.1% रह गया। 25–29 वर्ष के पुरुषों में 21 वर्ष से पहले विवाह का अनुपात इसी अवधि में 32.3% से 15.9% तक आया। उच्च शिक्षा, जीवनसाथी चुनने में युवाओं की भागीदारी, सगाई के दौरान संवाद, ऑनलाइन वैवाहिक मंच और वैवाहिक संबंध में समानता की अपेक्षा भी बढ़ी है। जाति, परिवार की स्वीकृति और सामाजिक प्रतिष्ठा चयन की प्रक्रिया में आज भी सक्रिय हैं। वर्तमान भारतीय विवाह परिवार और व्यक्ति के बीच बातचीत–आधारित व्यवस्था का रूप ले रहा है, जिसमें नई पीढ़ी सहमति, अनुकूलता, शिक्षा, रोजगार, भावनात्मक निकटता और व्यक्तिगत सम्मान को अधिक स्थान देती है।

प्रमुख शब्द : विवाह संस्था, नई पीढ़ी, जीवनसाथी चयन, परिवार, जाति, डिजिटल विवाह बाजार, लैंगिक संबंध, सामाजिक परिवर्तन।

1. प्रस्तावना :

विवाह के साथ परिवारों के बीच संबंध बनते हैं, रिश्तेदारी का विस्तार होता है, जातीय सीमाओं को सामाजिक आधार मिलता है, आर्थिक संसाधनों का आदान–प्रदान होता है और स्त्री–पुरुष से जुड़ी भूमिकाओं को सामाजिक मान्यता मिलती है। देसाई और एंड्रिस्ट ने भारत मानव विकास सर्वेक्षण की 27365 विवाहित महिलाओं के आधार पर विवाह की आयु को लैंगिक सामाजिक अपेक्षाओं से जोड़ा। शिक्षा और सामाजिक परिवेश विवाह के समय से गहराई से जुड़े मिले। विवाह की उम्र इस दृष्टि से केवल व्यक्तिगत निर्णय का प्रश्न नहीं रहतीय उसमें परिवार की अपेक्षा, शिक्षा की अवधि और युवती के जीवन–क्रम की सामाजिक कल्पना भी शामिल होती है। (1)

राष्ट्रीय स्तर की समय–रेखा इस परिवर्तन को अधिक स्पष्ट बनाती है। 2005–06 में 20–24 वर्ष की 47.4%

महिलाएँ 18 वर्ष से पहले विवाहित थीं। 2015–16 में यह अनुपात 26.8%, 2019–21 में 23.3% और 2023–24 में 20.1% रहा। ग्रामीण महिलाओं में यही अनुपात 56.2% से घटकर 23.3% हुआ। पुरुषों में 21 वर्ष से पहले विवाह का अनुपात 32.3% से 20.3%, फिर 17.7% और 2023–24 में 15.9% तक आया। मैर्टेन्स के ग्रामीण भारत संबंधी आँकड़ों में विवाह की सामाजिक रूप से अपेक्षित उम्र बच्चों की शिक्षा से जुड़ी पारिवारिक आकांक्षाओं और निवेश के साथ जुड़ी हुई मिली। इस प्रकार शिक्षा और विवाह का समय एक–दूसरे को प्रभावित करने वाले सामाजिक निर्णय बनते हैं। (20, 25)

2. सामग्री और समाजशास्त्रीय विश्लेषण का आधार :

विश्लेषण का आधार भारत से संबंधित 23 प्रकाशित अकादमिक शोध तथा 2 बड़े सर्वेक्षण और आधिकारिक स्रोत हैं। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण की 2005–06 से 2023–24 तक की समय–रेखा, भारत मानव विकास सर्वेक्षण पर आधारित विश्लेषण, शहरी युवाओं के साक्षात्कार, ऑनलाइन वैवाहिक बाजार से संबंधित सामग्री तथा जाति और विवाह के सामाजिक दृष्टिकोण से जुड़ी राष्ट्रीय जानकारी को साथ रखा गया है। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण– 6 वर्ष 2023–24 में आयोजित हुआ और इसके तथ्य–पत्र 29 मई 2026 को जारी किए गए। आधिकारिक विवरण के अनुसार इसमें लगभग 679000 परिवार, 700000 से अधिक महिलाएँ और 715 जिले शामिल थे। (25)

3. तय विवाह से संयुक्त जीवनसाथी-चयन की ओर :

भारतीय विवाह में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन निर्णय की संरचना में दिखाई देता है। परिवार सक्रिय है और युवा की भागीदारी बढ़ी है। ऑलेंडॉर्फ और पांडियन ने 1970 से 2012 के बीच विवाह व्यवहार में दीर्घकालीन परिवर्तन का विश्लेषण किया। युवा महिलाओं की अपने पति के चयन में भागीदारी बढ़ी और विवाह से पहले भावी पति से मिलने की संभावना भी बढ़ी। हाल के विवाहों में परिवार की भागीदारी बनी हुई थी, इसलिए संयुक्त चयन एक प्रमुख उभरती व्यवस्था बनी जिसमें परिवार संभावित संबंध खोज सकता है, युवा व्यक्ति बातचीत करता है, पसंद तथा अनुकूलता पर विचार करता है और निर्णय में दोनों पक्ष भाग लेते हैं। (2)

2011–12 के भारत मानव विकास सर्वेक्षण पर आधारित सरकार और रिजी के विश्लेषण में युवा विवाह–पीढ़ियों के बीच स्व–व्यवस्थित विवाह की संभावना बढ़ी। माता–पिता तथा ससुराल पक्ष की उच्च शिक्षा और अपेक्षाकृत खुले सामाजिक परिवेश का संबंध भी ऐसे विवाहों से मिला। तमिल ब्राह्मण वत्तिमा समुदाय पर फुलर और नरसिम्हन के कार्य में तय और जाति–अंतर्गत विवाह के भीतर साथीपन, शिक्षा, पेशा और युवाओं की पसंद को अधिक स्थान मिलता दिखाई दिया। विवाह संस्था के भीतर बातचीत और अनुकूलता के लिए यह नई सामाजिक जगह बन रही है। (3, 4)

वडोदरा में 22–29 वर्ष के 15 पुरुष और 15 महिला अविवाहित पेशेवरों के साक्षात्कारों में नेटिंग को प्रेम और पारिवारिक जिम्मेदारी का मिला–जुला ढाँचा मिला। युवा प्रतिभागियों की अपेक्षाओं में निजी पसंद, भावनात्मक निकटता और समानता शामिल थी तथा परिवार के संबंध और जिम्मेदारियाँ भी उनके निर्णय का हिस्सा थीं। परिचय, बातचीत, परिवार की सहमति और व्यक्ति की पसंद एक ही वैवाहिक प्रक्रिया में शामिल होने लगी हैं। (6)

4. प्रेम, सगाई और वैवाहिक निर्णय की नई सामाजिक जगह :

शहरी मध्यवर्ग में सगाई विवाह की घोषणा के साथ विवाह–पूर्व स्वीकृत परिचय–काल का काम भी करने लगी है। दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र में जुलाई 2018 से मार्च 2019 तक 48 साक्षात्कारों पर आधारित मेगन रीड के कार्य में हाल में विवाहित या सगाईशुदा लोग, अविवाहित युवा और माता–पिता शामिल थे। जोड़ों वाले हिस्से में 16 जोड़े थे, 11 तय विवाह से जुड़े थे और 5 प्रेम या मिश्रित चयन से। सगाई के बाद संदेश, मुलाकात, भविष्य की योजनाओं और रोजमर्रा की अपेक्षाओं पर बातचीत ने विवाह से पहले साथी को समझने का समय दिया। स्व–चयन वाले जोड़ों के लिए रोका माता–पिता की स्वीकृति और संबंध की सामाजिक वैधता हासिल करने का माध्यम भी बना। (17)

कोलकाता के मध्यवर्गीय परिवारों पर डोनर के विश्लेषण में प्रेम विवाह आधुनिक शहरी आत्म–छवि से जुड़ा था और परिवार तथा समुदाय की स्वीकृति भी उसी प्रक्रिया का हिस्सा बनी रही। दक्षिण भारतीय परिध ाान नगर में डी नेव ने प्रेम विवाह को आर्थिक आकांक्षा, रिश्तेदारी सहायता और जातीय संबंधों से जोड़ा। प्रेम, रोजगार, आवास, पारिवारिक देखभाल और रिश्तेदारी के संसाधन एक–दूसरे से जुड़े रहते हैं। इस कारण नई पीढ़ी का निजी चयन भी व्यापक पारिवारिक जीवन के साथ तालमेल बनाकर वैवाहिक रूप ग्रहण करता है। (14, 15)

5. डिजिटल वैवाहिक बाजार और नई पीढ़ी की पसंद :

ऑनलाइन वैवाहिक मंचों ने जीवनसाथी खोजने की गति, दायरा और दृश्यता बदल दी है। टिट्जमान ने भारतीय ऑनलाइन वैवाहिक बाजार में तकनीक को व्यक्ति की सक्रिय खोज और पारिवारिक विवाह–व्यवस्था के मेल के रूप में दर्ज किया। इंटरनेट पर प्रोफाइल युवा स्वयं संचालित कर सकता है और परिवार भी उसी मंच का उपयोग कर सकता है। शिक्षा, पेशा, भाषा, क्षेत्र, धर्म और जाति जैसी श्रेणियाँ डिजिटल खोज का हिस्सा बन गई हैं। तकनीक ने पारंपरिक वैवाहिक खोज को अधिक विस्तृत और तेज नेटवर्क में बदल दिया है।(7)

अग्रवाल के साइबर–मैचमेकिंग विश्लेषण में शहरी भारतीयों और प्रवासी भारतीय परिवारों के लिए ऑनलाइन विवाह–खोज रिश्तेदारी के काम का नया माध्यम बनी। भौगोलिक दूरी के बावजूद परिवार जाति और समुदाय के नेटवर्क को इंटरनेट के माध्यम से बड़े क्षेत्र में चला सके। रामकृष्णन ने भारतीय वैवाहिक विज्ञापनों की भाषा में रंग, वैवाहिक स्थिति, परिवार और वांछित गुणों के बाजारीकरण का विश्लेषण किया। डिजिटल प्रोफाइल व्यक्तिगत चयन के साथ सामाजिक प्रतिष्ठा और विवाह–योग्यता का सार्वजनिक प्रस्तुतीकरण भी बनती है। (8, 9)

डिजिटल पहुँच में हाल की वृद्धि बहुत तेज है। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण–5 में महिलाओं का इंटरनेट उपयोग 33.3% था, जो 2023-24 के राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण–6 में 64.3% हो गया। पुरुषों में यह अनुपात 51.2% से 80.5% हुआ। 2022 में भारत के 20 शहरों की लगभग 2000 अविवाहित और संबंध में रह रही महिलाओं पर पेसांडो, सरकार और कॉर्नरिच का सर्वेक्षण हुआ, अंतिम विश्लेषण में 1798 महिलाएँ थीं। इनमें 91.0% रोज इंटरनेट का उपयोग करती थीं और 50.0% अपने उपकरण से रोज इंटरनेट चलाती थीं। अपने उपकरण से नियमित डिजिटल पहुँच साथी–चयन, प्रेम विवाह, विवाह के महत्त्व और साथी के गुणों से जुड़े अधिक आधुनिक साझेदारी–विचारों से जुड़ी मिली। (23, 25)

6. जाति की सीमा और जीवनसाथी की पसंद :

जीवनसाथी के विकल्प बढ़ने के साथ जाति विवाह–निर्णय की एक स्पष्ट सामाजिक सीमा बनी हुई है। आहूजा और ऑस्टरमैन ने कई वैवाहिक वेबसाइटों पर 1070 महिलाओं को शामिल करके क्षेत्रीय प्रयोग किया। अनुसूचित जाति की 70.7% प्रतिभागियों और ऊँची जाति की 53.9% प्रतिभागियों ने जाति–सीमा पार संबंध में रुचि व्यक्त की। ऊँची जाति के समूह में उच्च सामाजिक–आर्थिक स्थिति के साथ जाति–सीमा पार करने की रुचि कम हुई, जबकि अनुसूचित जाति समूह में सामाजिक–आर्थिक स्थिति के साथ संबंध दूसरी दिशा में था। इससे ऑनलाइन विवाह बाजार में जाति और सामाजिक–आर्थिक स्थिति दोनों की भूमिका सामने आती है। (10)

राष्ट्रीय सामाजिक दृष्टिकोण में जाति की पकड़ और स्पष्ट दिखाई देती है। प्यू रिसर्च सेंटर के 2021 के भारत सर्वेक्षण में 79% वयस्कों ने पुरुषों और 80% ने महिलाओं को दूसरी जाति में विवाह करने से रोकना कम–से–कम कुछ हद तक महत्त्वपूर्ण माना। 62% ने पुरुषों और 64% ने महिलाओं के लिए इसे बहुत महत्त्वपूर्ण कहा। गोलि, सिंह और सेखर के राष्ट्रीय स्तर के मिश्रित विवाह विश्लेषण और धर के अंतरजातीय विवाह संबंधी कार्य में भी विवाह को जातीय सीमा, रिश्तेदारी और सामुदायिक स्वीकृति से गहराई से जुड़ा पाया गया। नई पीढ़ी की व्यक्तिगत पसंद इस सामाजिक संरचना के भीतर अपना रास्ता बनाती है। (11, 12, 24)

7. शिक्षा, रोजगार और जीवनसाथी की नई परिभाषा :

उच्च शिक्षा ने विवाह की उम्र के साथ योग्य जीवनसाथी की सामाजिक परिभाषा भी बदली है। 2011–12 के भारत मानव विकास सर्वेक्षण की 35561 वर्तमान विवाहित महिलाओं पर कृति विक्रम के विश्लेषण में कॉलेज शिक्षा देर से विवाह, पति–चयन में अधिक स्वायत्तता, कार्य और वित्तीय सशक्तीकरण तथा अधिक समान वैवाहिक संबंधों से जुड़ी थी। डिग्री शैक्षिक प्रमाणपत्र के साथ विवाह–निर्णय में सामाजिक पूँजी का काम करती है। विवाह का समय, साथी का पेशा, आय, निवास का शहर और विवाहोत्तर रोजगार जैसी बातें इसी शिक्षा से जुड़ी जीवन–योजना का हिस्सा बनती हैं। (5)

लिन, देसाई और चेन ने 2011–12 के भारत मानव विकास सर्वेक्षण की 28311 महिलाओं के आधार पर शैक्षिक हाइपोगैमी का विश्लेषण किया, अर्थात पत्नी का पति से अधिक शिक्षित होना। 1970 के दशक के विवाह समूहों में इसका हिस्सा लगभग 5% था, जो हाल की विवाह पीढ़ियों में लगभग 20% तक पहुँच गया। महिलाओं की उच्च शिक्षा के विस्तार ने विवाह बाजार में शैक्षिक जोड़ी बनाने के पुराने क्रम को बदला है। साथी की शिक्षा महत्त्वपूर्ण बनी हुई है और महिला की अपनी उच्च शिक्षा भी विवाह–निर्णय की केंद्रीय सामाजिक पूँजी बन गई है। (21)

विवाह–चयन और विवाहोत्तर निर्णय–शक्ति के संबंध को बनर्जी और देशपांडे ने भारतीय संदर्भ में विश्लेषित किया। जीवनसाथी चयन में महिला की भूमिका विवाहोत्तर निर्णय लेने की शक्ति के साथ जुड़ी हुई पाई गई। नौकरी, रहने का शहर, परिवार के साथ निवास, आर्थिक जिम्मेदारी और व्यक्तिगत समय जैसे विषय विवाह–पूर्व बातचीत में जगह बना रहे हैं। इससे विवाह रोजमर्रा की साझेदारी, संसाधन–वितरण और पारिवारिक निर्णय की संस्था के रूप में अधिक बातचीत–आधारित बनता है। (13)

8. दहेज, संसाधन और स्त्री की निर्णय-क्षमता :

विवाह में आर्थिक लेन–देन बदलते सामाजिक दृष्टिकोण का महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। 2006–07 के "यूथ इन

इंडियारू सिचुएशन एंड नीड्स" सर्वेक्षण के 6 राज्यों की 15–24 वर्ष आयु वाली 13912 विवाहित महिलाओं पर पाल्लिकडावथ और ब्रैडली के विश्लेषण में लगभग तीन–चौथाई महिलाओं ने विवाह में दहेज मिलने की जानकारी दी और लगभग 66% ने उस दहेज के उपयोग पर अपनी निर्णय–क्षमता दर्ज की। संसाधन पर नियंत्रण, शिक्षा और विवाह की उम्र स्त्री की वैवाहिक स्थिति से सीधे जुड़े सामाजिक तत्व हैं। (22)

शिक्षा और वेतन का महत्त्व बढ़ने के साथ विवाह वार्ता में आर्थिक भूमिका भी अधिक स्पष्ट हुई है। दोहरी आय वाले दंपतियों के लिए नौकरी की जगह, कैरियर की गति, घरेलू खर्च और देखभाल के काम जीवन–योजना से जुड़े विषय हैं। रीड के शहरी मध्यवर्गीय 40 साक्षात्कारों में विवाह को जोखिम, अनिश्चितता और जिम्मेदारी से जोड़कर सोचने वाला "वैवाहिक व्यावहारिकता" का दृष्टिकोण मिला। कुछ युवाओं के लिए तय विवाह में पारिवारिक सहयोग सुरक्षा का साधन था और कुछ के लिए स्व–चयन अनुकूलता समझने का साधन था। प्रेम के साथ व्यावहारिक जीवन–प्रबंधन भी विवाह संबंधी निर्णय में जगह बना रहा है। (16)

9. साथ रहते हुए अलग निवास और वैवाहिक स्थिरता :

शहरी पेशेवर जीवन ने वैवाहिक निवास के नए रूप बनाए हैं। गंगोपाध्याय ने शिक्षित शहरी भारतीय दंपतियों के बीच "लिविंग अपार्ट टुगेदर" व्यवस्था का विश्लेषण किया, जिसमें विवाहित जोड़ा नौकरी, पारिवारिक जिम्मेदारियों या व्यक्तिगत परिस्थितियों के कारण अलग घरों अथवा शहरों में रहते हुए वैवाहिक संबंध बनाए रखता है। यह रूप तय और प्रेम दोनों प्रकार के विवाहों में मिला। संवाद, यात्रा, डिजिटल संपर्क और नियोजित साथ रहने का समय इस वैवाहिक व्यवस्था के रोजमर्रा के साधन बनते हैं। (18)

वैवाहिक स्थिरता भी संबंध की गुणवत्ता और व्यक्तिगत अपेक्षाओं के साथ अधिक स्पष्ट रूप से जुड़ रही है। डोम्माराजू ने भारतीय जनगणना और जनसांख्यिकीय सामग्री के आधार पर तलाक और अलगाव की दीर्घकालीन प्रवृत्तियों का विश्लेषण किया। भारत में इनका स्तर अपेक्षाकृत कम रहा है, पर समय के साथ वृद्धि तथा क्षेत्रीय और लैंगिक अंतर दर्ज हुए। संबंध की गुणवत्ता, सम्मान, आर्थिक व्यवस्था और भावनात्मक जीवन अब वैवाहिक स्थिरता की रोजमर्रा की सामाजिक परिस्थितियों का हिस्सा हैं। (19)

10. नई पीढ़ी का सामाजिक दृष्टिकोण :

उपलब्ध आँकड़ों में नई पीढ़ी के बीच एक मिश्रित सामाजिक व्यवस्था दर्ज होती है। विवाह की उम्र बढ़ी है। उच्च शिक्षा विवाह–निर्णय में अधिक जगह बना रही है। जीवनसाथी चयन में युवा आवाज मजबूत हुई है। ऑनलाइन मंच संभावित साथियों का दायरा बढ़ा रहे हैं। सगाई परिचय और संवाद के लिए समय देती है। प्रेम संबंध माता–पिता की स्वीकृति और सार्वजनिक वैवाहिक मान्यता हासिल कर सकते हैं। जाति और समुदाय के फिल्टर, माता–पिता की सहमति तथा रिश्तेदारी सहयोग भी सक्रिय हैं। इसलिए वर्तमान व्यवस्था में परिवार और व्यक्ति साझी निर्णय–प्रक्रिया के अलग–अलग अनुपातों में साथ उपस्थित हैं। (2, 4, 6, 17)

अनुकूलता का अर्थ भी अधिक ठोस हुआ है। शिक्षा का स्तर, रोजगार, रहने का शहर, परिवार के साथ संबंध, आर्थिक जिम्मेदारी, कैरियर जारी रखने की संभावना, संवाद की सहजता और भावनात्मक सम्मान विवाह–पूर्व बातचीत से जुड़े विषय हैं। कॉलेज–शिक्षित महिलाओं में देर से विवाह और पति–चयन की अधिक स्वायत्तता, पत्नी के पति से अधिक शिक्षित होने वाले विवाहों का लगभग 5% से 20% तक बढ़ना और अपने उपकरण से नियमित इंटरनेट उपयोग का अधिक आधुनिक साझेदारी–विचारों से संबंध इसी परिवर्तन के

अलग–अलग हिस्से हैं। (5, 21, 23)

विवाह सामाजिक मान्यता का शक्तिशाली माध्यम भी बना हुआ है। प्रेम से शुरू हुए संबंध में माता–पिता की स्वीकृति, सगाई और रिश्तेदारी की भागीदारी संबंध को सार्वजनिक वैधता देती है। तय विवाह में युवा जोड़े मिलने, बातचीत करने और आपसी सहमति के लिए समय लेते हैं। नई पीढ़ी विवाह के नियमों पर अधिक सक्रिय बातचीत कर रही है। साथी चुनने की व्यक्तिगत भूमिका और परिवार के साथ संबंध को एक साथ रखने की कोशिश भारतीय विवाह के वर्तमान स्वरूप की प्रमुख विशेषता है। (14, 15, 16, 17)

11. निष्कर्ष :

2005–06 से 2023–24 की राष्ट्रीय समय–रेखा विवाह के समय में बड़े परिवर्तन को दर्ज करती है। 20–24 वर्ष की महिलाओं में 18 वर्ष से पहले विवाह का अनुपात 47.4% से 20.1% और 25–29 वर्ष के पुरुषों में 21 वर्ष से पहले विवाह 32.3% से 15.9% तक आया। महिलाओं की शिक्षा और डिजिटल पहुँच भी बढ़ी। 2023–24 में 73.7% महिलाओं ने कभी विद्यालय में शिक्षा प्राप्त की थी और 64.3% महिलाओं ने इंटरनेट का उपयोग किया था। विवाह अब अधिक उम्र, अधिक शिक्षा, अधिक सूचना और अधिक बातचीत वाले जीवन–चरण में प्रवेश कर रहा है। (25)

परिवार की भूमिका केंद्रीय है और उसके भीतर युवा व्यक्ति की आवाज अधिक मजबूत हुई है। संयुक्त जीवनसाथी–चयन, सगाई के दौरान संवाद, ऑनलाइन खोज, शिक्षा और पेशे पर आधारित अनुकूलता, अंतरजातीय विकल्पों पर विचार, महिला की निर्णय–क्षमता तथा अलग शहरों में रहते हुए वैवाहिक संबंध बनाए रखने जैसी प्रक्रियाएँ विवाह को नई सामाजिक संरचना दे रही हैं। जाति और पारिवारिक स्वीकृति इस संरचना की मजबूत सामाजिक शर्तें हैं। नई पीढ़ी इन्हीं सामाजिक संबंधों के भीतर सहमति, भावनात्मक निकटता, सम्मान, शिक्षा और व्यावहारिक साझेदारी को अधिक महत्त्व दे रही है। भारतीय विवाह का वर्तमान स्वरूप व्यक्ति और परिवार के बीच चलने वाली इसी बातचीत से निर्मित हो रहा है। (3, 10, 13, 18, 24)

संदर्भ :

1. देसाई, एस., एवं एंड्रिस्ट, एल. (2010). जेंडर स्क्रिप्ट्स एंड एज एट मैरिज इन इंडिया. डेमोग्राफी, 47(3), 667–687.
2. ऑलेंडॉर्फ, के., एवं पांडियन, आर. के. (2016). द डिक्लाइन ऑफ अरेंज्ड मैरिज? मैरिटल चेंज एंड कंटिन्यूइटी इन इंडिया. पॉप्युलेशन एंड डेवलपमेंट रिव्यू, 42(3), 435–464.
3. फुलर, सी. जे., एवं नरसिम्हन, एच. (2008). कम्पैनियनेट मैरिज इन इंडिया : द चेंजिंग मैरिज सिस्टम इन अ मिडिल–क्लास ब्राह्मण सबकास्ट. जर्नल ऑफ द रॉयल एंथ्रोपोलॉजिकल इंस्टिट्यूट, 14(4), 736–754.
4. सरकार, के., एवं रिजी, ई. एल. (2024). सेल्फ–अरेंज्ड मैरिजेज इन इंडिया : चेंज अमिड्स्ट सोशियोकल्चरल अंडरपिनिंग्स एंड हैंगिंग नॉर्म्स. मैरिज एंड फैमिली रिव्यू, 60(2), 76–108.
5. विक्रम, के. (2024). मॉडर्न मैरिज इन अ ट्रेडिशनल सोसाइटी : द इन्फ्लुएंस ऑफ कॉलेज एजुकेशन ऑन मैरिज इन इंडिया. जर्नल ऑफ फैमिली इश्यूज, 45(5), 1116–1141.
6. नेटिंग, एन. एस. (2010). मैरिटल आइडियोस्केप्स इन 21स्ट–सेंचुरी इंडिया : क्रिएटिव कॉम्बिनेशंस ऑफ लव एंड

रिस्पॉन्सिबिलिटी. जर्नल ऑफ फैमिली इश्यूज, 31(6), 707–726.

7. टिट्जमान, एफ.–एम. (2013). चेंजिंग पैटर्न्स ऑफ मैचमेकिंग : द इंडियन ऑनलाइन मैट्रिमोनियल मार्केट. एशियन जर्नल ऑफ विमेन्स स्टडीज, 19(4), 64–94.
8. अग्रवाल, ए. (2015). साइबर–मैचमेकिंग अमंग इंडियंस : री–अरेंजिंग मैरिज एंड डूइंग 'किन वर्क'. साउथ एशियन पॉपुलर कल्चर, 13(1), 15–30.
9. रामकृष्णन, एस. (2012). 'व्हीटिश' ग्रूम्स एंड 'इनोसेंट' डिवोर्सीज : कमोडिफाइंग एट्रिब्यूट्स इन द डिस्कोर्स ऑफ इंडियन मैट्रिमोनियल्स. डिस्कोर्स एंड सोसाइटी, 23(4), 432–449.
10. आहूजा, ए., एवं ऑस्टरमैन, एस. एल. (2016). क्रॉसिंग कास्ट बाउंड्रीज इन द मॉडर्न इंडियन मैरिज मार्केट. स्टडीज इन कम्पेरेटिव इंटरनेशनल डेवलपमेंट, 51(3), 365–387.
11. गोलि, एस., सिंह, डी., एवं सेखर, टी. वी. (2013). एक्सप्लोरिंग द मिथ ऑफ मिक्स्ड मैरिजेज इन इंडिया : एविडेंस फ्रॉम अ नेशन–वाइड सर्वे. जर्नल ऑफ कम्पेरेटिव फैमिली स्टडीज, 44(2), 193–206.
12. धर, आर. एल. (2013). इंटरकास्ट मैरिज : अ स्टडी फ्रॉम द इंडियन कॉन्टेक्स्ट. मैरिज एंड फैमिली रिव्यू, 49(1), 1–25.
13. बनर्जी, एम., एवं देशपांडे, ए. एस. (2021). डज 'लव' मेक अ डिफरेंस? मैरिज चॉइस एंड पोस्ट–मैरिज डिसीजन–मेकिंग पावर इन इंडिया. एशियन पॉप्युलेशन स्टडीज, 17(2), 201–220.
14. डोनर, एच. (2016). डूइंग इट आवर वे : लव एंड मैरिज इन कोलकाता मिडिल–क्लास फैमिलीज. मॉडर्न एशियन स्टडीज, 50(4), 1147–1189.
15. डी नेव, जी. (2016). द इकॉनमीज ऑफ लव : लव मैरिज, किन सपोर्ट, एंड एस्पिरेशन इन अ साउथ इंडियन गारमेंट सिटी. मॉडर्न एशियन स्टडीज, 50(4), 1220–1249.
16. रीड, एम. एन. (2025). 'मैरिज इज अ कम्प्लीट गैम्बल' : मैरिज एटिट्यूड्स ऑफ द इंडियन मिडिल क्लास. जर्नल ऑफ फैमिली इश्यूज, 46(11), 1749–1771.
17. रीड, एम. एन. (2025). रोका एंगेजमेंट्स एंड द हाइब्रिडाइजेशन ऑफ अरेंज्ड एंड 'लव' मैरिज इन अर्बन इंडिया. जर्नल ऑफ मैरिज एंड फैमिली, 87(5), 2042–2055.
18. गंगोपाध्याय, जे. (2023). लिविंग अपार्ट टुगेदर : अ न्यू फैमिली फॉर्म इन अर्बन इंडिया. सोशियोलॉजिकल बुलेटिन, 72(3), 332–348.
19. डोम्माराजू, पी. (2016). डिवोर्स एंड सेपरेशन इन इंडिया. पॉप्युलेशन एंड डेवलपमेंट रिव्यू, 42(2), 195–223.
20. मैर्टेन्स, ए. (2013). सोशल नॉर्म्स एंड एस्पिरेशंस : एज ऑफ मैरिज एंड एजुकेशन इन रूरल इंडिया. वर्ल्ड डेवलपमेंट, 47, 1–15.
21. लिन, जेड., देसाई, एस., एवं चेन, एफ. (2020). द इमर्जेन्स ऑफ एजुकेशनल हाइपोगैमी इन इंडिया. डेमोग्राफी, 57(4), 1215–1240.
22. पाल्लिकडावथ, एस., एवं ब्रैडली, टी. (2019). डाउरी, 'डाउरी ऑटोनॉमी' एंड डोमेस्टिक वायलेंस अमंग यंग मैरिड विमेन इन इंडिया. जर्नल ऑफ बायोसोशल साइंस, 51(3), 353–373.
23. पेसांडो, एल. एम., सरकार, के., एवं कॉर्नरिच, एस. (2025). शिफ्टिंग पार्टनरशिप आइडियल्स विद ऑनलाइन

टेक्नोलॉजीज अमंग अनमैरिड विमेन इन इंडिया. सोशल फोर्सेज, एसओएएफ100, ऑनलाइन–प्रथम संस्करण, 1–27.

24. प्यू रिसर्च सेंटर. (2021). रिलिजन इन इंडिया : टॉलरेंस एंड सेग्रिगेशन – एटिट्यूड्स अबाउट कास्ट. प्यू रिसर्च सेंटर. वेब प्रकाशन, पृष्ठरहित.

25. भारत सरकार, भारतीय महावाणिज्य दूतावास, साओ पाउलो. (2026, 13 जून). राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण–6 (2023–24) : की फाइंडिंग्स एंड लॉन्ग–टर्म ट्रेंड्स. भारत सरकार. वेब प्रकाशन, पृष्ठरहित.

Email ID : unaatikumari29@gmail.com

Mobile No- : 8252421079

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2026 Page No. : 198-206

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.22679720

भारतीय जीवन बीमा निगम की ग्राहक संतुष्टि (सतना जिले के विशेष संदर्भ में)

डॉ. बी. के. राणा
प्राध्यापक (वाणिज्य), हमीदिया कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)
सुखेन्द्र प्रताप साकेत
शोधार्थी (वाणिज्य), बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

सारांश :-

भारतीय जीवन बीमा निगम या एलआईसी, भारत की सबसे बड़ी जीवन बीमा कंपनी है और देश की सबसे बड़ी निवेशक कंपनी भी है। यह पूरी तरह से भारत सरकार के स्वामित्व में है। इसकी स्थापना सन् 1956 में हुई। इसका मुख्यालय भारत की वित्तीय राजधानी मुंबई में है। भारतीय जीवन बीमा निगम के 8 आंचलिक कार्यालय और 101 संभागीय कार्यालय भारत के विभिन्न भागों में स्थित हैं। इसके लगभग 2048 कार्यालय देश के कई शहरों में स्थित हैं और इसके 10 लाख से ज्यादा एजेंट भारत भर में फैले हैं।

वर्तमान में प्रत्येक व्यक्ति संसार की इन अनिश्चिताओं एवं जोखिमों के झंझावतों में घिरा हुआ है। चाहे वह दुनिया का सबसे धनी व्यक्ति बिलगेट्स हो, सामान्य व्यक्ति हो, चाहे छोटा दुकानदार हो या विस्तृत औद्योगिक साम्राज्य का स्वामी, चाहे राजनेता या अभिनेता, खिलाड़ी हो या प्रायोजक, इन सभी को अनिश्चिताओं, जोखिमों एवं अनिष्ट की आशंकाओं ने घेर रखा है। सभी अपने जीवन, व्यवसाय, सम्पत्ति तथा सफलता आदि की चिंता में संलग्न रहते हैं। मानव सदैव से इन जोखिमों व रूकावटों से अपनी सुरक्षा के प्रयास करता रहा है। उसने सुरक्षा के अनेक उपाय खोजे जिनमें बीमा समस्त अनिश्चिताओं से मुक्ति पाने का अचूक उपाय सिद्ध होता गया है।

मुख्य शब्द :- जीवन बीमा, भारतीय अर्थव्यवस्था, बीमा व्यवसाय, ग्राहक संतुष्टि।

प्रस्तावना :-

वर्तमान में बीमा हर व्यक्ति की सबसे बड़ी आवश्यकता बन चुका है। बीमा व्यवसाय की शुरूआत सन् 1583 में इंग्लैण्ड से हुई। भारत में सन् 1912 में बीमा व्यवसाय उभर कर सामने आया। सन् 1912 से लेकर सन् 2000 के पहले कुछ ही गिनी चुनी बीमा कम्पनियाँ अस्तित्व में थीं, परन्तु सन् 2000 में IRDA की पंजीकरण नीतियों की वजह से कई बीमा कम्पनियाँ अस्तित्व में आई और बीमा व्यवसाय करना प्रारम्भ किया। इन कम्पनियों को अस्तित्व में लाने का प्रमुख उद्देश्य बीमा व्यवसाय का व्यापीकरण करना था। इस उद्देश्य को

कुछ हद तक पूरा किया जा सका है। वर्तमान में कई गैर सरकारी बीमा कम्पनियाँ अस्तित्व में है। इन कम्पनियों के आ जाने के कारण बीमा व्यवसाय में प्रतिस्पर्धा साफतौर पर देखी जा सकती है। हर कम्पनी अपने बीमा उत्पाद के प्रति काफी सजग है तथा खुद को बेहतर साबित करने की होड़ में है। इसके लिए वह बीमा बाजार में अपने कई बीमा उत्पाद (पॉलिसियॉ) लेकर सामने आती है। उपभोक्ता बीमा व्यवसाय के प्रति पूरी तरह से जागरूक तो है परन्तु बीमा कम्पनियों की आन्तरिक स्थिति से अंजान वह अपनी पूँजी अधिकतम लाभ के उद्देश्य से बीमा कम्पनी पर लगाता है परन्तु बीमा कम्पनी उपभोक्ताओं की अपेक्षाओं पर खरी नहीं उतरती है। ऐसी क्या वहज है कि एक प्राइवेट कम्पनी में एक उपभोक्ता द्वारा लगाई गई सिंगल प्रीमियम राशि 15000/– में तीन वर्ष के बाद उसकी फण्ड वैल्यू केवल 60 रू. रह गई। प्रस्तुत लघुशोध के माध्यम से सभी बीमा संस्थानों की वास्तविक स्थिति का सही आंकलन किया जायेगा। पूँजी किन मदों पर व्यय की गयी है। भविष्य में इसका क्या लाभ होगा तथा ऐसी कौन सी वजह है जिसके कारण बीमा कम्पनी खुद को दिवालिया घोषित कर देती है। यह जानना अत्यन्त आवश्यक है।

बीमा का विकास मानव सभ्यता के विकास के साथ–साथ ही हुआ है। मनुष्य हमेशा से ही सुरक्षा को महत्व देता रहा है और बीमा सुरक्षा का सबसे महत्वपूर्ण साधन है। इस बात के प्रलेखीय प्रमाण उपलब्ध है कि प्राचीन 'बैबीलोनिया' तथा भारत में बीमा के समान ही व्यवस्था उपलब्ध थी। भारत के प्राचीन धार्मिक ग्रंथ तथा 'ऋग्वेद', 'मनुस्मृति' आदि ग्रंथों में उल्लेखित 'योगक्षेम' शब्द इस बात की पुष्टि करता है, प्राचीन भारत में लोग बीमा से परिचित थे।

जीवन बीमा का सम्बन्ध मानव जीवन में घटित होने वाली उन आकस्मिक घटनाओं की भरपाई से है जो बीमा धारक को आर्थिक क्षति से संरक्षण प्रदान करती है, बीमा जोखिम से सुरक्षा एवं भविष्य में सुनहरी बचत में लाभ प्रदान करने वाला महत्वपूर्ण कारक है। प्रायः एक साधारण परिवार को अपनी दैनिक आवश्यकताओं जैसे रोटी, कपड़ा एवं मकान के लिए परिवार के कर्ता या मुखिया को निरन्तर प्राप्त होने वाली आय पर ही निर्भर रहना पड़ता है। जब तक कर्ता जीवित है उसकी आय भी जीवित है और परिवार की आवश्यकताएँ भी पूरी होती रहेंगी, परन्तु यदि दुर्भाग्यवश कर्ता को मृत्यु ने अचानक उठा लिया तो परिवार को आर्थिक कठिनाईयों का सामना करना पड़ेगा। कितने ही परिवारों की दशा ऐसे समय में बड़ी दयनीय हो जाती है।

जीवन का अन्त कम होगा यह अनिश्चित है और घटनाओं का घटित होना नियति है। यह अनिश्चितता ही वह जोखिम है जो कर्ता की मृत्यु से होने वाली आर्थिक क्षति की पूर्ति के लिए किसी प्रकार के संरक्षण की आवश्यकता जो जन्म देती है। बीमा ही वह साधन है जो जोखिम को समाप्त कर अनिश्चितता को निश्चितता में बदल कर परिवार को सरंक्षण प्रदान करता है। मानव को आय अर्जक अस्ति (परिसम्पत्ति) माना जाता है। किसी व्यक्ति की आय अर्जन क्षमता उसके शारीरिक, मानसिक, तार्किक, क्षमता, समस्या, समाधान में दक्ष, तथा व्यवसायिक कौशल पर निर्भर करती है यही अस्तियाँ कहलाती हैं। आस्ति का मूल्य व्यक्ति द्वारा कमाई जाने वाली आय पर विचार करते हुए आंका जा सकता है। मानव जीवन मूल्यों की अवधारणा मानव जीवन के अस्ति मूल्य का निर्धारण करने के लिए वैज्ञानिक तरीके सुझाती है और इसलिए जीवन बीमा धनराशि की आवश्यकता पड़ती है।

मानव जीवन में बीमारी हो जाने पर, दुर्घटना से हुई अपंगता के कारण या शीघ्र मृत्यु हो जाने पर हानि

हो सकती है। दुर्घटनाएँ हो भी सकती है और नहीं भी। मृत्यु निश्चित है और उसका समय अनिश्चित है। उदाहरणार्थ – यदि किसी व्यक्ति को सेवानिवृत्ति के आसपास मृत्यु हो जाती है तो यह अपेक्षा की जाती है कि उसने अपनी नौकरी के कार्यकाल में अपनी सारी व्यवस्थाएँ कर ली होंगी परन्तु उसकी मृत्यु यदि अकस्मिक तथा कम आयु में हो जाती है तो यह प्रश्न उठता है कि इसने क्या वो सारी आर्थिक व्यवस्थाएँ पूरी कर लीं होंगी अगर नहीं तो उसके परिवार की कठिनाइयों के दिनों की शुरूआत हो गयी। अब उसके परिवार का भरण पोषण कैसे होगा।

इन सारी परिस्थितियों में यदि मृतक किसी भी बीमा संस्थान का बीमा धारक था तो बीमें की वही दावा रकम जो उसकी मृत्यु को तो टाल नहीं पाई, परन्तु उसके परिवार की जीविका का एक मात्र सहारा बन जाएगी और इस हानि को लाभ में परिवर्तित कर देगी।

शोध का महत्व :–

किसी भी देश का अधिकतम आर्थिक विकास उस देश की निवेशक क्षमता पर निर्भर करता है। ये निवेश बचतों के आधार पर किए जाते है। लोगों की बचत करने की दशा में, खासकर मध्यम एवं न्यून आय समूहों में जीवन बीमा संस्थानों की बड़ी भूमिका होती है। बीमा अधिनियम में कड़े प्रावधान किए गए हैं यह सुनिश्चित किया जाए कि निधियों को सुरक्षित क्षेत्रों जैसे – शासकीय बाण्डो, एवं उन बीमा कम्पनियों में जिनका लाभ अर्जित करने का अधिकतम रिकार्ड रहा है, आदि में निवेश किए जाएँ। निवेश के अलावा व्यवसाय एवं व्यापार में बीमा अत्यन्त लाभकारी है। यदि बीमा न हो तो व्यापार एवं वाणिज्य क्षेत्रों में अग्नि, बाढ़, भूकम्प, सूखा आदि प्राकृतिक आपदाओं की हानियों को सहन करना मुश्किल हो जाएगा। सभी अच्छी बीमा कम्पनियों के पास विशालकाय निधियाँ होती है जो बीमा धारकों की छोटी–छोटी प्रीमियम राशि का संग्रह होती है और इन निधियों का निवेश उन क्षेत्रों में किया जाता है जो अपना व्यवसाय करते हुए आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान देते हैं।

पूर्व शोध की समीक्षा :–

हरीश बी. बापट, विशाल सोनी और रितु जोशी (2014) ने अपने शोध पत्र 'चयनित सार्वजनिक और निजी क्षेत्र की जीवन बीमा कंपनियों के उत्पाद की गुणवत्ता का एक अध्ययन' में बताया कि एलआईसी के एकाधिकार को खतरा है और आईसीआईसी आई के विवेकपूर्ण जीवन के लिए निजी खिलाड़ियों का नेतृत्व करना शुरू कर दिया है। बाजार हिस्सेदारी पर कब्जा। लेखकों ने यह भी निष्कर्ष निकाला है कि आईसीआईसीआई प्रूडेटियल लाइफ ने अंतर की पहचान की है और सहानुभूति, बेहतर प्रतिक्रिया प्रणाली और प्रीमियम प्रदान करने के मामले में नेतृत्व किया है। उत्पाद अनुकूलन अच्छा है, लेकिन एलआईसी की तुलना में पहुंच और नेटवर्क कम है।

हरनाम सिंह (2014) ने उत्तर प्रदेश में जीवन बीमा उपभोक्ता के व्यवहार का अनुभवजन्य अध्ययन किया। उन्होंने पाया कि जीवन बीमा आज किसी भी बाजार अर्थव्यवस्था का एक मुख्य आधार बन गया है क्योंकि इसने लंबे समय के लिए बड़ी रकम कमाने की भरपूर गुंजाईश दी है। वह यह भी सुझाव देते हैं कि कंपनियों के पोषित लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए बीमा उद्योग के लिए ग्राहक संबंध प्रबंधन को बनाए रखने के शक्तिशाली लाभों की खोज करने का समय है।

प्रीति जहाँ और बिंदू रॉय (2015) ने जीवन बीमा उद्योग में एलआईसी की भूमिका पर ध्यान केंद्रित

किया है। अध्ययन में पाया गया है कि LIC के कार्यालय की संख्या साल दर साल बढ़ती जा रही है, लेकिन जब कुल जीवन बीमा उद्योग में LIC के कार्यालयों की विकास दर का विश्लेषण किया जाता है, तो निजी क्षेत्र की बाजार रणनीतियों के साथ गला काट प्रतियोगिता के कारण हमेशा घटती प्रवृत्ति होती है जीवन बीमा कंपनियाँ। उन्होंने यह भी निष्कर्ष निकाला है कि कुल प्रीमियम के आधार पर, एलआईसी की बाजार हिस्सेदारी 2005–06 में मामूली रूप से 85.75% घटकर 2011 में 69.78% हो गई। लेकिन उसके बाद वर्ष 2011–12 और 2012 में बाजार में हिस्सेदारी बढ़ रही है। वे यह भी सुझाव देते हैं कि चूंकि निजी बीमा कंपनियां अब दिन में बाजार पर कब्जा कर लेती हैं, इसलिए एलआईसी को और अधिक सुविधाओं के साथ विभिन्न प्रकार की योजनाओं को लॉन्च करना चाहिए, ताकि इसकी आय राशि, विशेष रूप से प्रीमियम राशि में वृद्धि हो सके।

शोध प्रविधि :–

शोध प्रविधि का अर्थ इस अपनाई जाने वाली अध्ययन विधि से है और कोई भी अध्ययन तभी सार्थक सिद्ध हो सकता है। जबकि इसकी अध्ययन विधि पूर्ण तथा वैज्ञानिक विधि पर आधारित हो। म.प्र. सतना जिले में अन्तः क्षेत्रीय औद्योगिक विषमताओं का अध्ययन एक विस्तृत विषय है। शोधार्थी द्वारा यह प्रयास किया गया है कि शोध कार्य करते समय उसकी विधि और तकनीकी जानकारियॉ पूरी तरह उसी विधि पर आधारित हो। जिन पर शोधार्थी ने हर सम्भव प्रयास किया है। सम्बन्धित विषय पर हो रहें शोध पर पर्याप्त निष्कर्ष निकाला जा सके और इसकी प्रविधि पूर्ण रूप से वैज्ञानिक विधि पर ही आधारित रहे। शोधार्थी ने आवश्यकता के अनुरूप अध्ययन की सरलता व सीमा को ध्यान में रखकर जिला के विभिन्न विकास खण्डों को उद्योगों से सम्बन्धित सभी मुख्य विषयों पर गहन अध्ययन करने की कोशिश की है। जिसमें जिला के औद्योगिक विषमता का स्वरूप तो शोध प्रविधि के रूप में स्पष्ट हो ही जाता है। यह जीवन बीमा निगम सामाजिक उत्तरदायित्व के विकास को प्रभावी बनाता है इसका अध्ययन ज्यादा महत्वपूर्ण है और शोध प्रबन्ध को लिखते समय उसके विषय एवं उसकी महत्व को परिपेक्ष्य रूप में ध्यान में रखकर महत्वपूर्ण विवेचन किया गया है। ज्ञान की किसी भी शाखा में ध्यानपूर्वक नये तथ्यों की खोज के लिये किये गये अन्वेषण या परीक्षण को शोध कहते है। शोध के प्रथम चरण में शासकीय, अर्द्धशासकीय व अशासकीय अधिकारियों से सम्पर्क कर सतना जिले में जीवन बीमा योजनाओं का विपणन प्रबंध के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त किये गये है। साथ ही जिले में जीवन बीमा से सम्बन्धित प्रशासन, शासकीय एवं अशासकीय संस्थाओं के प्रतिवेदन एवं तथ्य एकत्र किये गये हैं। जीवन बीमा योजनाओं के विभिन्न प्रभारियों व अधिकारियों से सम्पर्क कर जिले में संचालित विभिन्न योजनाओं की जानकारियॉ एकत्र किये गये है।

समंको का संकलन एवं प्रयुक्त विधियॉ :

समंक किसी भी अध्ययन के निकाले गये निष्कर्षो के लिये आधार प्रदान करता है। समंको के मुख्यतः दो स्त्रोत है। पहला प्राथमिक स्त्रोत और दूसरा द्वितीयक स्त्रोत है। प्राथमिक स्त्रोत के अंतर्गत मुख्यतः निरीक्षण या अवलोकन, साक्षात्कार, अनुसूची व प्रश्नावली के माध्यम से सूचनाऍ एकत्र की गयी है। अपने शोध प्रवंध में प्राथमिक एवं द्वितीयक तथ्य सामग्री का प्रयोग किया है, जो कि पत्र–पत्रिकाओं, वार्शिक प्रतिवेदन अखबारों, शोध रिपोर्ट आदि से एकत्र किया जाएगा।

उद्देश्य :–

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य ''जीवन बीमा योजनाओं का विपणन प्रबंध, उनकी विशेषताओं, उनके दोषों एवं

कमियों का समीक्षात्मक विश्लेषण करना, तथा भारतीय अर्थव्यवस्था में इनके योगदान पर प्रकाश डालना है।

अपने शोध के माध्यम से यह ज्ञात करना कि सतना जिले में जितने भी बीमे से सम्बन्धित सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थान है वे किस प्रकार अपनी आर्थिक गतिविधियों का संचालन करते है –

- जीवन बीमा निगम द्वारा चलाये जा रहे सामाजिक निगमीय उत्तरदायित्व कार्य का अध्ययन करना।
- सतना जिले में सभी बीमा कम्पनियों की एवं उनकी शाखाओं के माध्यम से जितने भी बीमा व्यवसायिक कार्य संचालित किए जा रहें है, उनकी समीक्षात्मक व्याख्या करना।
- बीमा व्यवसाय क्षेत्र में आई.आर.डी.ए. की भूमिका को स्पष्ट कर वैधानिक पक्ष की व्याख्या करना।
- बीमा धारको के अधिकारों के बारे में पता लगाकर उन्हें अवगत कराना।
- बीमा धारकों की सुरक्षा एवं बीमा कम्पनियों पर अंकुश के दृष्टिकोण से नियमों एवं कानूनों पर आधारित जीवन बीमा के वैधानिक पक्ष को स्पष्ट करना।
- सतना जिले के सभी बीमा संस्थानों के संगठनात्मक ढांचे तथा कार्यप्रणाली की व्याख्या करना एवं उपभोक्ता संख्या का अंकलन करना।

शोध परिकल्पना :

शोध परिकल्पनाएं वह क्रिया होती है जिसके द्वारा हम किये जा रहे कार्य के किस आधार पर कार्य को कर रहें है अर्थात् हमारे शोध को पूर्ण करने के माध्यम है।

- देश की आर्थिक गतिविधियों में जीवन बीमा निगम के विभिन्न योजनाएँ सक्रियता से क्रियान्वयन योजनाओं में सहायक सिद्ध होगी।
- बीमा संस्थानों की उपादेयता से देश के आर्थिक विपणन में तेजी आयेगी और विकास की ओर अग्रसर होने में सहायक सिद्ध होगी।
- शोध के दौरान जीवन बीमा निगम के योजनाओं के क्रियान्वयन में आने वाली कठिनाईयों का ज्ञान होगा तथा उन्हे सुलझाने में सुझाव तैयार होंगे।
- देश के समग्र आर्थिक विकास में जीवन बीमा कंपनी महत्वपूर्ण सहायता प्रदान करती है।

तथ्यों का संकलन :–

क्या आप भारतीय जीवन बीमा निगम के बारे में जानते हैं?

विवरण	संख्या	प्रतिशत
हाँ	45	90%
नहीं	5	10%
कुल	50	100%

उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि 50 उत्तरदाताओं में से 45 यानी 90 प्रतिशत लोगों को पता भारतीय जीवन बीमा निगम के बारे में जानकारी है जबकि 10 प्रतिशत लोग इससे अनभिज्ञ है।

क्या आपने भारतीय जीवन बीमा निगम में भारत से जुड़ी योजनाओं में निवेश किया है?

विवरण	संख्या	प्रतिशत
हाँ	35	70%
नहीं	15	30%
कुल	50	100%

उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि 50 उत्तरदाताओं में से 35 यानी 70 प्रतिशत लोगों भारतीय जीवन बीमा निगम से जुड़ी योजनाओं में निवेश किया है जबकि 30 प्रतिशत लोग इसमें निवेश नहीं किया है।

आप अपना पैसा कहां लगाते हैं?

विवरण	संख्या	प्रतिशत
म्यूचुअल फंड	10	20%
बीमा लिंक्ड इक्विटी स्कीम	7	14%
इक्विटी	15	30%
बांड	5	10%
संपत्ति	3	6%
अन्य	10	20%
कुल	50	100%

उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि 30 प्रतिशत लोगों ने अपना पैसा इक्विटी फंड में लगाया है जबकि 20 प्रतिशत म्यूचुअल फंड, 14 प्रतिशत बीमा लिंक्ड इक्विटी स्कीम 10 प्रतिशत बांड में 6 प्रतिशत संपत्ति/रियल इस्टेट में तथा 20 प्रतिशत लोगों ने अपना निवेश अन्य स्थानों में किया है।

आप भारतीय जीवन बीमा निगम की नीतियों के बारे में क्या सोचते हैं?

विवरण	संख्या	प्रतिशत
उत्कृष्ट	12	24%
अच्छा	18	36%
औसत	15	30%
खराब	5	10%
कुल	50	100%

उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि 36 प्रतिशत लोगों ने भारतीय जीवन बीमा निगम की नीतियों को उत्कृष्ट

बताया है 30 प्रतिशत ने एलआईसी के नीतियों को औसत एवं 24 प्रतिशत ने अच्छा बताया है जबकि 10 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने खराब प्रतिक्रया दी है।

निवेश के समय मूल उद्देश्य क्या है?

विवरण	संख्या	प्रतिशत
नियमित वापसी	27	54%
आयकर लाभ	15	30%
पूँजी विनियोग	8	16%
कुल	50	100%

उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि 54 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने बताया कि निवेश के समय उनका मूल उद्देश्य नियमित वापसी होती है जबकि 30 प्रतिशत ने बताया कि उनका उद्देश्य आयकर लाभ तथा 16 प्रतिशत ने पूंजी विनियोग के बारे में प्रतिक्रया दी है।

क्या भारतीय जीवन बीमा निगम बेहतर दावा निपटान प्रदान करता है?

विवरण	संख्या	प्रतिशत
उत्कृष्ट	10	20%
अच्छा	15	30%
औसत	20	40%
खराब	5	10%
कुल	50	100%

उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट है कि 40 प्रतिशत लोगों ने भारतीय जीवन बीमा निगम दावा निपटान को औसत/संतोषजनक बताया है 30 प्रतिशत ने अच्छा एवं 20 प्रतिशत ने उत्कृष्ट बताया है जबकि 10 प्रतिशत उत्तरदाताओं ने भारतीय जीवन बीमा निगम दावा निपटान के बारे में खराब प्रतिक्रिया दी है।

समस्यायें –

- 'भारतीय जीवन बीमा निगम'' बीमा सेवाओं को सरल बनाने के लिये कई महत्वपूर्ण कदम उठा रहा है परन्तु ग्रामीण अंचल इन सेवाओं से अब भी वंचित है और इसमें पर्याप्त जानकारी का अभाव है।
- सतना ज़िले में कुछ बीमा संस्थानों के बीमाधारकों की मृत्यु के बाद नॉमिनी को दी जाने वाली दावा–राशि में विलम्ब की स्थिति पाई गई।
- गैर सरकारी बीमा संस्थानों में प्रीमियम का अधिकांश भाग फण्ड मेन्टेनेन्स एवं कार्यालयीन खर्चों में व्यय

कर दिया जाता है और बीमाधारक की प्रीमियम राशि कटौती कर निवेश की जाती है।

- बीमा व्यवसाय में आई.आर.डी.ए. के नियमानुसार नियमित बीमा पॉलिसी में 3 वर्ष के लॉक–इन पीरियड होने की वजह से कई बीमाधारकों की बीमा पॉलिसी 1 वर्ष 2 वर्ष या फिर सिर्फ 6 महीने ही चली है। परिणामस्वरूप उनकी धनराशि डूब जाती है और यह धनराशि वापिस नही मिलती है।
- बीमा संस्थानों में प्रीमियम जमा काउन्टर की कमी पाई गई जिसकी वजह से बीमाधारकों को घण्टों कतार में खड़े होने के बाद प्रीमियम जमा करनी पड़ती है।
- ज़िला स्तर पर बीमा संस्थानों में अभिकर्ताओं को उत्प्रेरणा एवं जानकारी प्रदान करने के लिये ट्रेनिंग संस्थानों का अभाव है क्योंकि अभिकर्ता बीमा कम्पनियों एवं बीमाधारकों के बीच मजबूत कड़ी होते हैं।

निष्कर्ष :–

अतः निष्कर्ष के रूप में प्रस्तुत शोध पत्र में बीमा व्यवसाय से सम्बन्धित बीमा कम्पनियों के बीच उनकी आर्थिक गतिविधियों तथा उनकी वित्तीय स्थिति एवं सेवा से प्राप्त उपभोक्ता संतुष्टि का अध्ययन किया गया है। लघुशोध प्रबन्ध के द्वारा बीमा उपभोक्ताओं को उनके बीमा अधिकारों से अवगत कराते हुये समस्याओं का अध्ययन कर सुझाव के माध्यम से निष्कर्ष तक पहुॅचने का प्रयास किया है। अतः निष्कर्ष के रूप में बीमा व्यवसाय की सभी सरकारी एवं गैरसरकारी बीमा कम्पनियों में ''भारतीय जीवन बीमा निगम'' की बीमा सेवायें नगरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकतम उपभोक्ता संतुष्टि प्रदान कर रही है। एल.आई.सी., बीमा सेवा की दृष्टि से सर्वेश्रेष्ठ एवं लोकप्रिय है। प्रस्तुत लघुशोध प्रबन्ध बीमा कम्पनियों की वित्तीय स्थिति का आइना है तथा उपभोक्ताहित में महत्वपूर्ण पहल है।

सुझाव :–

- एजेंटों को कंपनी की नीतियों के बारे में उचित ज्ञान देने के लिए भर्ती किया जाना चाहिए।
- गारंटीड रिटर्न के लिए लोगों को जागरूक किया जाना चाहिए।
- कंपनी को कंपनी की नीतियों पर उचित संवाद करना चाहिए।
- ब्रांड के रूप में ग्राहकों को बताई गई नीतियों के बारे में जानकारी।
- एजेंट नेटवर्क को चौड़ा किया जाना चाहिए।
- ग्राहकों को उत्पाद जानकारी का उचित संचार।
- उचित रणनीति की योजना बनाई जानी चाहिए ताकि अधिक ग्राहक आकर्षित हों।
- ग्राहकों को आकर्षित करने के लिए विभिन्न योजनाएं शुरू की जानी चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :–

- वर्मा नरेश कुमार – ''जीवन बीमा का वैधानिक पक्ष'' आई.सी., 24 वर्ष 1999– यूनिवर्सल इंश्योरेन्स बिल्डिंग सर फिरोजशाह मेहता, रोड मुम्बई।
- वर्मा नरेश कुमार – ''जीवन बीमा के प्रयोग'' आई.सी., 23 वर्ष 1999 (अप्लीकेशन ऑफ लाइफ इंश्योरेन्स) यूनिवर्सल इंश्योरेन्स बिल्डिंग सर फिरोजशाह मेहता, रोड मुम्बई, वर्ष 1999।
- भारद्वाज नरेश चन्द्र – ''बीमा के सिद्धान्त'' आई.सी. 01 यूनिवर्सल इश्योरेन्स बिल्डिंग सर फिरोजशाह

मेहता, रोड़ मुम्बई।

- श्री शशिकान्त – जीवन बीमा व्यवसाय : रूपरेखा'' आई.सी. 33 वर्ष 2000 यूनिवर्सल इंश्योरेन्स बिल्डिंग सर फिरोजशाह मेहता, रोड़ मुम्बई।
- श्री शशिकान्त – ''जीवन बीमा के सिद्धान्त एवं व्यवहार'', आई.सी. 30
- पाठक उमेश चन्द्र – ''जीवन बीमा संस्करण'' यूनिवर्सल इंश्योरेन्स बिल्डिंग सर फिरोजशाह मेहता, रोड मुम्बई।
- सारस्वत महेश – ''बीमा प्रेरणा शक्ति (उपकार)'' उपकार प्रकाशित 2/11 ए. स्वदेशी बीमा नगर आगरा।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2026 Page No. : 207-211

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.22679720

हिमालयी सीमान्त पिथौरागढ़ में शहरीकरण का सूत्रपात

ऋचा जोशी
शोधार्थी, एल. एस. एम. कैंपस, पिथौरागढ़।
डॉ. प्रेमलता पंत
प्रोफेसर, एस. एन. एस. रा. स्ना. महाविद्यालय, नारायण नगर, पिथौरागढ़।

सारांश :

औपनिवेशिक काल में शहरीकरण का विकास ब्रिटिश साम्राज्य विस्तारवाद और आर्थिक हितों से संचालित था। अंग्रेजों ने अपने व्यापारिक हितों और कच्चे माल के निर्यात को सुगम बनाने के लिए भारत के प्रमुख व्यापारिक केन्द्रों को विशाल महानगरों, शहरों, कस्बों आदि के रूप में विकसित किया। इसके अतिरिक्त अपनी सेना हेतु छावनी शहर व गर्मी से बचने हेतु यूरोपीय शैली में हिल स्टेशन भी विकसित किए। औपनिवेशिक काल में सीमान्त क्षेत्र पिथौरागढ़ (तत्कालीन पिठौरागढ़) सोर परगने की महर पट्टी का एक गांव मात्र था। यह शोध पत्र इस क्षेत्र में औपनिवेशिक सत्ता के आगमन के पश्चात अंग्रेजों द्वारा स्वहित साधने हेतु किए गए विकास कार्यों को दिखाता है। इन कार्यों के फलस्वरूप पिथौरागढ़ गांव (जो कि छोटे छोटे तोकों से घिरा हुआ था) में शहरीकरण की शुरुआत हुई और यह क्षेत्र भविष्य में एक शहर के रूप में अस्तित्व में आया। प्रस्तुत शोध पत्र में औपनिवेशिक काल के दौरान पिथौरागढ़ क्षेत्र में शहरीकरण के सूत्रपात की प्रक्रिया को प्रकाश में लाने का प्रयास किया गया है।

मुख्य शब्द - औपनिवेशिक, शहरीकरण, छावनी, बैरक, लैन, मिशनरी, पिठौरागढ़

प्रस्तावना :

शहरीकरण का अर्थ है शहरों का उद्भव[1]। शहरीकरण दो शब्दों से मिलकर बना है। प्रथम 'शहर' तथा द्वितीय 'करण' । शहर वह स्थान है जहां अस्थाई रूप से एक निश्चित सीमा से अधिक जनसंख्या निवास करती है तथा यहां बाजारों में अधिकांश आवश्यक वस्तुएं

और सुविधाएं उपलब्ध रहती हैं। करण का अर्थ है 'करना' अथवा 'बनाना'। अर्थात वह प्रक्रिया जिसके द्वारा कोई गांव, स्थान या छोटा कस्बा शहर बन जाता है, शहरीकरण कहलाती है[2]। शहरीकरण ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक जनपद का ग्रामीण स्वरूप क्रमशः लुप्त हो जाता है और उसमें बसने वाले अधिकांश लोग गैर कृषक हो जाते हैं और नियमित रूप से अपने खाने का सामान खरीदने लगते हैं[3]। संयुक्त राष्ट्र संघ के मुताबिक "ग्रामीण क्षेत्र के लोगों का शहरों में जाकर रहना, वहां काम करना भी शहरीकरण है"[4]।

भारतीय इतिहास में शहर :

मानवीय इतिहास में शहरों के विकास को क्रांति के रूप में देखा गया है जिससे सभ्यता और इतिहास की शुरूआत हुई[5]। भारतीय इतिहास में नगरों का प्रादुर्भाव सर्वप्रथम सैन्धव सभ्यता में हुआ[6]। उत्तर भारत में प्रारम्भिक ऐतिहासिक काल के दौरान पूर्व की कुछ शताब्दियों में शुरू हुई विभिन्न सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक प्रक्रियाएं पहले से अधिक जटिल हुईं जिसकी परिणति नगरों के अभ्युदय के रूप में दिखलाई पड़ती है। नगरीकरण की यह प्रक्रिया अनवरत चलती रही। तीसरी और दूसरी शताब्दी ई.पू. में नगरीकरण के आयाम वृहद होने लगे और प्रक्रियाएं जटिल होने लगीं । नगरीय विकास का उदय सुदूर दक्षिण में भी इसी समय हुआ[7]। आर. एस. शर्मा का मानना है कि उपमहाद्वीप में प्रारंभिक ऐतिहासिक नगरीकरण की प्रक्रिया 200 ई.पू. से 300 ई. के बीच अपने चरम बिंदु पर थी। इसके पश्चात नगरों के पतन के दो चरण देखे गए। पहला, तीसरी शताब्दी के उत्तरार्द्ध और चौथी शताब्दी में तथा दूसरा छठी शताब्दी में। पूर्व मध्य काल नगरीकरण के पतन का काल नहीं था। दक्षिण भारत के सन्दर्भ में यह स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है जहां नगर, नगरीय शिल्प, व्यापार तथा श्रेणी संगठन पूर्ण रूप से पल्लवित-पुष्पित हुए[8]।

शहरों के विकास की यह प्रक्रिया भारत में तुर्कों के आगमन के पश्चात 13 वीं शताब्दी से काफी तेज हो गई[9]। मुगलकालीन प्रमाणों से पता चलता है कि इस काल में कुछ शहरी केंद्र पुनः विकसित हुए और कुछ पुराने केन्द्रों का विस्तार हुआ और नए शहरी केंद्र उभरे। मुगलों के अधिकार क्षेत्र के बाहर भी अनेक महत्वपूर्ण शहरों का विकास हुआ[10]। उपनिवेशवाद ने भारत के शहरीकरण की प्रक्रिया में भारी बदलाव की अगुवाई की। अंग्रेजों द्वारा अपनाई गई आर्थिक नीतियों के कारण भारत की अर्थव्यस्था तेजी से औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था में बदल गई और शहरों का विकास हुआ[11]।

पिथौरागढ़ में औपनिवेशिक सत्ता का आगमन तथा शहरीकरण का सूत्रपात :

27 अप्रैल 1815 को अल्मोड़ा की राजधानी में अंग्रेजों का अधिकार होने से सारा कुमाऊं उनके आधिपत्य में आ गया[12] । 15 मई 1815 को काली नदी से पश्चिम के पहाड़ी प्रदेश में अंग्रेजों के आधिपत्य को स्वीकार कर लिया गया[13]। परिणामस्वरूप सम्पूर्ण कुमाऊं के साथ-साथ सोर परगने का गांव पिथौरागढ भी गोरखों से अंग्रेजों को प्राप्त हुआ। ब्रिटेन की ईस्ट इंडिया कंपनी ने पिथौरागढ़ (तत्कालीन पिठौरागढ़) को सेना की एक छावनी के रूप में

विकसित किया[14]। सोर में कंपनी का शासन स्थापित होते ही मुख्य स्थानों को जोड़ने वाले पैदल मार्गों, पुलों, पडाओं आदि का निर्माण किया जाने लगा। मुख्यालय में गोरखा-पल्टन की एक टुकड़ी 'थर्ड गोरखा' के नाम से रखी गई। पल्टन के कप्तान ट्रामन साहब थे। इस पल्टन को टिकाने हेतु गोरखाओं की छावनी नाम से उनकी बैरकें बनाई गईं। सोर में कंपनी के मुख्यालय में सैनिकों की सुविधा हेतु सड़कें, बंगले, बगीचे, पोखर आदि बनाए गए[15]।

औपनिवेशिक काल में अंग्रेजों ने अपने सैन्य व प्रशासनिक ढांचे को पिथौरागढ़ क्षेत्र में मजबूत बनाने के लिए सैनिकों और कुछ प्रशासनिक अधिकारियों को यहां पर तैनात किया। जिसके परिणामस्वरुप उन्होंने अपनी तथा अपने सैनिकों की आवश्यकता की वस्तुओं की आपूर्ति करने वाले व्यापारियों तथा विभिन्न कार्यों में सहायता करने वाले लोगों को दूर-दूर से लाकर चौक के चारों ओर बसाया। इनमें खत्री, साह, चौधरी, सार्की के साथ-साथ साफ़-सफाई करने वाले, बूचड़ तथा चमड़े का कार्य करने वाले, खानसामा, नाई, स्वर्णकार आदि लोग थे। धीरे-धीरे इस चौक से होकर जाने वाले मार्ग के दोनों ओर दुकानें बनती गई और एक बाजार अस्तित्व में आ गई। यह बाजार आज पुराना बाजार नाम से जानी जाती है[16]। तब इसे लैन की बाजार कहा जाता था।

ब्रिटिश साम्राज्य के विस्तार के साथ ही भारत में मिशनरियों का आना भी शुरू हो गया। तब से मिशनरियों और औपनिवेशिक सत्ता के बीच अपने मिशनों में एक दूसरे की मदद करने के लिए नए सिरे से सहयोग शुरू हुआ[17]। भारतीय समाज और संस्कृति के आधुनिकीकरण की नीति को ही ईसाई धर्म प्रचारकों तथा विलियम विल्बर-फोर्स और ईस्ट इंडिया कंपनी के निदेशक मंडल के अध्यक्ष चार्ल्स ग्रांट जैसे धर्मपरायण लोगों ने बढ़ावा दिया, जो चाहते थे कि भारत में ईसाई धर्म फैले। उन्होंने सोचा कि पाश्चात्य ज्ञान की रोशनी अपने धर्मों में लोगों के विश्वास को खत्म कर देगी और उन्हें ईसाई धर्म का स्वागत करने तथा उसे अपनाने के लिए प्रेरित करेगी। इसलिए उन्होंने देश में आधुनिक स्कूल, कॉलेज और अस्पताल खोले[18]। पिथौरागढ़ में मिशनरी गतिविधियों की शुरुआत सन 1870 ई. में जॉन हेनरी बडन द्वारा मिशन केंद्र की स्थापना के साथ हुई। इस केंद्र के माध्यम से स्कूल खोले गए, अस्पताल बनाए गए तथा एक मेथोडिस्ट चर्च की स्थापना भी की गई[19]। डॉ. ग्रे, मिस एनी बुडेन, रिचर्डसन दम्पत्ति, डॉ. डीज, डॉ. हरकुआ विल्सन, मिस मार्था, मिस रीड आदि मिशनरियों ने स्थानीय लोगों के उपचार में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इनकी सेवा, सुश्रुसा से प्रभावित होकर अनेकों लाभार्थियों व उनके परिवार जनों से ईसाई धर्म अपनाया[20]।

औपनिवेशिक सत्ता के आगमन से पूर्व पर्वतीय क्षेत्रों के लोग परम्परागत रूप से शिक्षा प्राप्त करते थे[21]। अंग्रेजों के आगमन के पश्चात पिथौरागढ़ बाजार एवं आस पास के गांवों के बच्चों के शिक्षार्थ सबसे पहला प्राइमरी स्कूल तिलढुकुरी की धार में एक नए भवन में खोला गया। इसका नाम 'बेसिक प्राइमरी स्कूल, पिथौरागढ़ रखा गया। यह डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, अल्मोड़ा द्वारा संचालित होता था। इसके पश्चात मिशनरियों द्वारा सन 1871ई. में

बालिकाओं हेतु एक रोजगारपरक शिक्षा पर आधारित प्राथमिक स्कूल तथा सन 1872ई. में बालकों को प्राइमरी से आगे की शिक्षा देने के लिए एक स्कूल तथा छात्रावास खोले गए। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड द्वारा एक वर्नाक्यूलर मिडिल स्कूल भी स्थापित किया गया। औपनिवेशिक काल के दौरान ही कुछ स्थानीय प्रबुद्ध जनों के सहयोग से दो हाईस्कूल भी पिथौरागढ़ में खोले गए[22]।

निष्कर्ष :

शैक्षिक गतिविधियों के बढ़ने से दूर-दूर से छात्र पिथौरागढ़ की ओर आने लगे। स्वास्थ्य सुविधाओं ने भी लोगों को इस क्षेत्र की ओर आकृष्ट किया। कंपनी शासन ने स्वयं के लाभ हेतु मुख्य–मुख्य स्थानों को पैदल मार्गों, अश्वमार्गों, पुलों, पडावों, सडकों से जोड़ने तथा सरकारी भवनों के निर्माण का कार्य प्रारंभ किया। आवागमन पहले की तुलना में सुगम हो जाने से भी पिथौरागढ़ की ओर मैदानी क्षेत्र से भी लोगों ने आना प्रारम्भ किया। गांवों में कुप्रथाओं के चलते पीड़ित महिलाओं व दमित पुरुषों ने मिशनरियों द्वारा दी जा रही सुविधाओं का लाभ उठाने हेतु पिथौरागढ़ की ओर आना शुरू किया। बड़ी संख्या में स्थानीय गरीब जनता ने व शोषित वर्ग ने ईसाई धर्म को अपनाया। ईसाई धर्म को अपनाने वालों को मिशन द्वारा भाटकोट क्षेत्र में बसाया गया। छावनी की सुविधाओं हेतु बना बाजार भी धीरे-धीरे विस्तार पाने लगा और आस-पास के गांवों से रोजगार की तलाश में भी लोग बाजार की ओर आने लगे। इस प्रकार शैक्षिक, सामाजिक व आर्थिक विकास के फलस्वरूप सोर का गांव पिथौरागढ़, औपनिवेशिक काल में एक कस्बा बन गया और उसके बाद धीरे-धीरे शहरीकरण की ओर अग्रसर हुआ।

संदर्भ सूची :

1. सिंह, उपिन्दर(2018). प्राचीन एवं पूर्वमध्यकालीन भारत का इतिहास. पियर्सन पब्लिकेशन,दिल्ली, पृ.136।
2. राना, ल. (2019). शहरीकरण: विभिन्न आयाम एवं उपादेयता . इतिवृत्त, 7(1), पृ. 259।
3. वर्मा, हरिश्चंद्र(2015). मध्यकालीन भारत भाग-1. हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्व विद्यालय, पृ.410।
4. पुनर्प्राप्त, https://www.drishtiias.com, अभिगमन तिथि, 18-03-2024।
5. वर्मा, हरिश्चंद्र(2011). मध्यकालीन भारत भाग-2. हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्व विद्यालय, पृ.474।

6. श्रीवास्तव, के.सी. (2018). प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति. यूनाइटेड बुक डिपो, इलाहाबाद, पृ. 47।
7. सिंह, उपिन्दर (2018). प्राचीन एवं पूर्वमध्यकालीन भारत का इतिहास. पियर्सन पब्लिकेशन,दिल्ली, पृ. 340, 357।
8. पूर्वोक्त, पृ. 534, 535।
9. चंद्र, सतीश (2019). मध्यकालीन भारत सल्तनत से मुग़ल काल तक , जवाहर पब्लिशर्स प्रा. लि., हरियाणा, पृ.171।
10. वर्मा, हरिश्चंद्र (2011). मध्यकालीन भारत भाग-2. हिंदी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्व विद्यालय, पृ.475।
11. पुनर्प्राप्त, https://www.brainkart.com , अभिगमन तिथि, 28-03- 2024
12. पाण्डे, बद्रीदत्त (1990). कुमाऊं का इतिहास. श्याम प्रकाशन बुक डिपो, अल्मोड़ा, पृ.429।
13. सिंह, राम (2007). सोर (मध्य हिमालय) का अतीत. मल्लिका बुक प्रकाशक, नई दिल्ली, पृ. 301।
14. पन्त, पद्मादत्त (एन.डी.). मेरी यादों का सोर पिठौरागढ़. हिमाल प्रेस, पिथौरागढ़, पृ. 17।
15. सिंह, राम (2007). सोर (मध्य हिमालय) का अतीत. मल्लिका बुक प्रकाशक, नई दिल्ली, पृ. 326।
16. पन्त, पद्मादत्त (एन.डी.). मेरी यादों का सोर पिठौरागढ़. हिमाल प्रेस, पिथौरागढ़, पृ. 18,19।
17. पुनर्प्राप्त, https://karnataka.pscnotes.com , अभिगमन तिथि, 13-03-2025।
18. चन्द्र, विपिन (2016). आधुनिक भारत का इतिहास. ओरियंट ब्लैकस्वांन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, पृ. 106।
19. पुनर्प्राप्त, hindi.news18.com, अभिगमन तिथि, 04-08-2026।
20. दास, अंजना (प्रधानाचार्य, एल.डब्ल्यू.एस. गर्ल्स इंटर कॉलेज भाटकोट), पिथौरागढ़, साक्षात्कार, 27-07-2026।
21. पाण्डे, बद्रीदत्त (1990). कुमाऊं का इतिहास. श्याम प्रकाशन बुक डिपो, अल्मोड़ा, पृ. 484।
22. पन्त, पद्मादत्त (सेवानिवृत्त शिक्षक एवं इतिहासकार), पिथौरागढ़, साक्षात्कार, 26-12-2022।

www.bohalshodhmanjusha.com
Impact Factor : 8.642

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115
August 2026 Page No. : 212-216

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES PRINT RESEARCH JOURNAL
https://doi.org/10.5281/zenodo.22679720

उत्तर भारत के महिला संगठन (1900–1947) : एक अध्ययन

कमल

असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग,

एस. डी. (पी.जी.) कॉलेज, पानीपत, हरियाणा।

सारांश :

औपनिवेशिक काल के उत्तर भारत में महिला संगठनों का उदय भारतीय नारी जागरण की एक महत्वपूर्ण कड़ी थी। सामान्यतः महिला संगठनों को केवल महिलाओं के अधिकारों के लिए लड़ते हुए दिखाया जाता है किन्तु इस शोध पत्र में अधिकारों के साथ–साथ महिलाओं द्वारा जिस प्रकार सामाजिक सुधारों को गति दी गई तथा राजनीतिक क्षेत्र में जो उनका योगदान रहा, उसे भी शामिल किया गया है। राष्ट्रीय स्तर पर भारतीय स्त्री महामंडल ने सामाजिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया। उत्तर भारत के संगठनों ने गांधी जी के असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन और भारत छोड़ो आंदोलन के साथ–साथ रचनात्मक कार्यक्रम में भी महिलाओं की भागीदारी को बढ़ावा दिया। सरोजिनी नायडू, कमला नेहरू, रामेश्वरी नेहरू, सरला देवी चौधरानी जैसी महिलाएं इन संगठनों से जुड़कर राष्ट्रीय स्तर पर उभरी। इन संगठनों तथा सुधारकों की उपलब्धियां तो उल्लेखनीय रही, किन्तु चुनौतियां भी कम न थी। पर्दा प्रथा, कम उम्र में गृहस्थ जीवन, रूढ़िवादी समाज, संसाधनों की कमी और ब्रिटिश नीतियों के कारण कार्य करना अत्यंत कठिन था। फिर भी इन संघ–समितियों के माध्यम से महिलाओं ने घर की चारदीवारी से निकलकर राष्ट्रीय स्तर पर सुधारों को लागू किया, और स्वतंत्र भारत की महिला नीतियों की नींव रखी।

मुख्य शब्द : महिला संगठन, सामाजिक सुधार, उत्तर भारत, राष्ट्रवाद।

प्रस्तावना :

बीसवीं सदी की शुरुआत में भारत सामाजिक–धार्मिक सुधार आंदोलनों के प्रभाव से गुजर रहा था, जिनमें आर्य समाज तथा ब्रह्म समाज मुख्य भूमिका निभा रहे थे। इस समय समाज में अनेक कुरीतियाँ बाल विवाह, विधवा दशा, अशिक्षा, पर्दा प्रथा आदि विद्यमान थी, साथ ही भारतीय अंग्रेजों से अपनी आजादी के लिए भी संघर्ष कर रहे थे। ऐसे समय में भारतीय महिलाओं ने भी पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर भरपूर सहयोग दिया, इस शोध पत्र में बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में स्थापित उन्हीं संगठनों की चर्चा की गई।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि :

औपनिवेशिक भारत में महिलाओं के लिए पहला संगठन उन पुरुषों ने शुरू किया था जो नए धार्मिक सुधार संगठनों से जुड़े थे। बंगाल में केशवचंद्र सेन ने शैक्षिक कार्यक्रम, एक महिला पत्रिका और भारत आश्रम स्थापित

किया। बंबई में प्रार्थना समाज ने भी इसी प्रकार का कार्य किया। जस्टिस रानाडे ने अपने साथियों के साथ पंडिता रामाबाई को पश्चिम भारत में आर्य महिला समाज स्थापित करने में मदद की थी।[1] हालांकि, पुरुषों द्वारा प्रेरित और निर्देशित महिला संगठनों ने महिलाओं को शिक्षित करने और उन्हें सार्वजनिक कार्यों का पहला अनुभव प्रदान करने में अमूल्य योगदान दिया, लेकिन उन्होंने कुछ सीमाएं भी लगाई। पुरुष सुधारकों का मानना था कि घर परिवार ही महिलाओं के लिए प्राथमिक केंद्र और गतिविधि का मूल क्षेत्र है। उनका दृष्टिकोण ऐसे घरों से था जिनका संचालन आधुनिक महिलाओं द्वारा किया जाता हो, जिन्होंने स्वच्छता और पालन–पोषण के बारे में वैज्ञानिक विचारों को आत्मसात कर लिया हो। ये पुरुष चाहते थे कि उनकी पत्नियां घर से बाहर की गतिविधियों तथा राष्ट्र निर्माण में राजनीतिक आंदोलनों के माध्यम से नहीं, बल्कि सामाजिक रीति–रिवाजों में रहकर संस्थाओं का निर्माण करके योगदान दें। पुरुषों के समर्थन और मार्गदर्शन से जुड़ी पाबंदियां तब सामने आईं जब महिलाओं ने अपने दम पर आगे बढ़ने की कोशिश की, ऐसे मामलों में हैमवती मित्रा तथा रूखमाबाई जी का उदाहरण लिया जा सकता है।[2]

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध और बीसवीं सदी के आरंभिक वर्षों में भारत भर में विभिन्न नामों से पुकारे जाने वाले महिला संगठन उभर आए। इनमें से अधिकांश भौगोलिक रूप से सीमित थे, लेकिन उनका साझा लक्ष्य महिलाओं को एक साथ लाकर उनके मुद्दों पर चर्चा करना था।[3]

ऐसे ही संगठनों का विवरण नीचे दिया जा रहा है :

1. प्रयाग महिला समिति (1909, इलाहाबाद)

रामेश्वरी नेहरू द्वारा स्थापित इस संगठन का मुख्य उद्देश्य महिलाओं की शिक्षा, सामाजिक सुधार पर बल देना तथा पर्दा प्रथा का विरोध करना था। इसकी मुख्य पत्रिका 'स्त्री दर्पण' उत्तर भारत की पहली हिंदी महिला पत्रिका थी, जो शिक्षा मताधिकार, राष्ट्रवाद पर लेख प्रकाशित करती थी। समिति ने विधवा कल्याण, बाल विवाह रोक और राजनीतिक जागृति पर भी कार्य किया। प्रयाग महिला समिति ने 1910 के दशक में हिंदुस्तानी महिलाओं को जोड़ा और अखिल भारतीय महिला संगठन जैसी राष्ट्रीय पहलों का आधार तैयार किया। भारतीय राजनीति में महिलाओं के लिए गांधी जी के समर्थन के आने और उसे स्वीकार किये जाने से पहले ही, 1914 में प्रयाग महिला समिति के वार्षिक सम्मेलन में 200 महिलाओं ने हिस्सा लिया था।[4]

इस समिति के पश्चात रामेश्वरी नेहरू ने 1910 में दिल्ली महिला लीग की भी स्थापना की।

2. भारत स्त्री महामंडल (1910, इलाहाबाद)

यह संगठन सरला देवी चौधरानी द्वारा इलाहाबाद में 1910 में स्थापित भारत का पहला अखिल भारतीय महिला संगठन था। इसका मुख्य उद्देश्य महिलाओं की शिक्षा को बढ़ावा देना था, लेकिन पर्दा प्रथा और बाल विवाह महिलाओं की शिक्षा में मुख्य बाधाएं थीं। इसलिए, हर प्रांत में ऐसी संस्थाएं शुरू करने का प्रस्ताव रखा गया जिनका काम पैसे इकट्ठा करना और ऐसे शिक्षकों को नियुक्त करना था, जिन्हें उन लोगों के घरों में भेजा जा सके जो अपनी पत्नियों और बेटियों को पढ़ाना चाहते थे।[5] सरला देवी ने पुरुष वर्चस्व में महिलाओं की मुक्ति के महत्व के बारे में लिखा था, इसलिए इस संगठन में केवल महिलाओं को ही शामिल होने की अनुमति थी। अधिकांश सदस्य पहले पुरुष–प्रधान महिला संगठनों के साथ काम कर चुकी थीं और उन्होंने पुरुष सुधारकों द्वारा समर्थित परियोजनाओं के समान परियोजनाएं तैयार की थीं।[6] 1917 में मॉन्टेग्यू–चेम्सफोर्ड के समक्ष भारत स्त्री

महामंडल का प्रतिनिधित्व करते हुए सरला देवी ने निम्न बातें रखी :

क) विधवाओं के लिए विशेष शिक्षण संस्थान बनाए जाएं।

ख) हिंदू पत्नियों व बेटियों के विरासत के अधिकारों की रक्षा के लिए कानून बनाए जाएं।

ग) महिलाओं के लिए पेशेवर क्षेत्रों में आने के मौके बढ़ाए जाएं।

घ) स्कूलों के निरीक्षण के लिए बनने वाली कमेटियों में विदेशी महिलाओं की बजाय भारतीय महिलाएं शामिल हों आदि।[7]

सरला देवी सुहृदय समितियों के द्वारा युवा सदस्यों को व्यायाम, ड्रिल, छुरा, तलवार व पिस्तौल चलाना सिखाती थीं।[8]

3. अखिल भारतीय महिला सम्मेलन (AIWC) की उत्तर भारतीय शाखाएं :

अखिल भारतीय महिला सम्मेलन करने का प्रथम विचार मार्गरेट कजिन्स के मन में आया जब 1925 में उन्होंने कई महिला संगठनों को चिट्ठी लिखकर युवा शिक्षा पर अपने विचार प्रकट करने के लिए आमंत्रित किया। 1927 में इनका पहला अखिल भारतीय सम्मेलन पूना में हुआ, जिसमें लगभग दो हजार लोगों ने भाग लिया था। पटना में हुए तीसरे सम्मेलन में शिक्षा के अलावा महिलाओं से जुड़े सभी मुद्दों को देखने के लिए एक अलग समिति बनाई गई। चौथे सम्मेलन में 1 मार्च 1931 को लाहौर में महिला दिवस के रूप में मनाने का निर्णय लिया गया। अतः इस सम्मेलन का मुख्य बल लड़कियों की शिक्षा पर रहा।[9]

4. देश सेविका संघ :

यह एक अखिल भारतीय स्तर का महिला स्वयंसेवी संगठन था जो 1930 के दशक में राष्ट्रीय स्त्री संघ के सहयोगी के रूप में उभरा। इसकी शाखाएँ इलाहाबाद सहित विभिन्न शहरों में थीं। बॉम्बे में इसकी स्थापना हंसा मेहता जैसी नेताओं ने की लेकिन उत्तर भारत (यूपी) में इलाहाबाद जैसे केंद्रों में यह सक्रिय रह। इसका उद्देश्य महिलाओं को स्वदेशी अपनाने, विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार, शराब की दुकानों पर धरना, और सत्याग्रह में भाग लेने के लिए तैयार करना था।[10]

सविनय अवज्ञा आंदोलन में सक्रिय रूप से भाग लेने के कारण ब्रिटिश सरकार द्वारा संघ को गैर कानूनी घोषित कर दिया गया था।[11]

5. राष्ट्रीय महिला समिति (1930)

इसकी स्थापना पंजाब की पार्वती देवी द्वारा आगरा की कुछ महिलाओं के सहयोग से 1930ई. में की थी। उन्होंने 'कुमारी सभा' तथा बच्चों की 'वानर सेना' का भी गठन किया जिसके माध्यम से महिलाएँ विदेशी वस्त्रों तथा शराब की दुकानों के आगे धरना देती तथा जुलूस निकालती थी।[12]

गतिविधियाँ और उपलब्धियाँ :

ऊपर वर्णित महिला संगठनों ने राजनीतिक, सामाजिक तथा शैक्षिक क्षेत्र में महत्वपूर्ण उपलब्धियां हासिल की :–

- इन संगठनों ने वयस्क शिक्षा तथा स्त्री शिक्षा पर बल देकर देश भर में विभिन्न स्कूल–कॉलेज खोले, जिनमें 'लेडी इरविन कॉलेज ऑफ डोमेस्टिक साइंस' (1928) का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।
- बाल विवाह रोकने के लिए लाए गए शारदा एक्ट (1929) को पारित करवाने में अखिल भारतीय महिला

सम्मेलन तथा रामेश्वरी नेहरू की महत्वपूर्ण भूमिका थी।

- स्त्री दर्पण पत्रिका के माध्यम से कुरीतियों पर प्रहार के साथ–साथ महिलाओं में राष्ट्रीय चेतना को जागृत किया गया।
- गांधी के पहले राष्ट्रीय स्तर पर भारतीय नारी को संगठित करने का सफल प्रयास किया गया।
- सविनय अवज्ञा तथा भारत छोड़ो आंदोलन जैसे राष्ट्रीय स्तर के आंदोलनों में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया।
- स्वतंत्रता संग्राम के दौरान स्त्रियों के अधिकारों के समर्थन के साथ राष्ट्रवाद के प्रचार का एक अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत किया गया।
- लेडी हरनाम सिंह द्वारा जालंधर में महिलाओं के लिए सिलाई व बुनाई की कक्षाएं शुरू की गई। उन्होंने शिमला में एक महिला क्लब की भी स्थापना की।[13]
- बेगम रोकैया सखावत हुसैन ने 1909 में बिहार के भागलपुर जिले में मुस्लिम लड़कियों के लिए एक संस्था खोली। 1911 में कलकत्ता में सखावत मेमोरियल गर्ल्स स्कूल खोला।[14]

निष्कर्ष :

बीसवीं शताब्दी के आरंभ से लेकर 1947 तक का काल उत्तर भारत में महिला जागरण, सामाजिक परिवर्तन तथा राजनीतिक चेतना के विकास का एक महत्वपूर्ण दौर था। इस अवधि में स्थापित महिला संगठन केवल महिलाओं के कल्याण तक ही सीमित नहीं थे, बल्कि उन्होंने महिलाओं को आर्थिक आत्मनिर्भरता तथा राष्ट्रीय आंदोलनों से जोड़ने का कार्य भी किया। इन संगठनों ने भारतीय समाज में व्याप्त बाल–विवाह, पर्दा–प्रथा, दहेज, अशिक्षा, विधवा–उत्पीड़न तथा लैंगिक असमानता जैसी समस्याओं के विरुद्ध व्यापक जनमत तैयार किया। उत्तर भारत के महिला संगठनों की विशेषता यह थी कि उन्होंने समाज सुधार और राष्ट्रवादी आंदोलन को परस्पर पूरक माना। रामेश्वरी नेहरू, सरला देवी चौधरानी, हंसा मेहता तथा अनेक अन्य महिला नेताओं ने इन संगठनों के माध्यम से महिलाओं को संगठित कर राष्ट्रीय चेतना को व्यापक आधार प्रदान किया।

संदर्भ :

1. फोर्ब्स, जेराल्डिन, द न्यू कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया IV.2 : विमेन इन मॉडर्न इंडिया, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 1996, पृ. 65–66 https://share.google/nr01XLprXnMPpGk7F
2. वही, पृ. 68–69
3. वही, पृ. 70
4. गुप्ता, डॉ. सौम्या, "सोशल इक्वैलिटी एंड पॉलिटिकल सब्जेक्टहुड : स्ट्री दर्पण्स एडवोकेसी फॉर विमेन्स राइट्स इन द अर्ली ट्वेंटीएथ सेंचुरी" https://doi.org/10.22271/27069109.2023.v5.i1c.250
5. कुमार, राधा, द हिस्ट्री ऑफ डूइंग : एन इलस्ट्रेटेड अकाउंट ऑफ मूवमेंट्स फॉर विमेन्स राइट्स एंड फेमिनिज्म इन इंडिया 1800–1990, काली फॉर विमेन, 1993 पृ. 39 https://share.google/u9uqQQVr2Y8NeTZ7D
6. फोर्ब्स, जेराल्डिन, द न्यू कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया IV.2: विमेन इन मॉडर्न इंडिया, कैम्ब्रिज

यूनिवर्सिटी प्रेस, 1996 पृ. 71 https://share.google/nr01XLprXnMPpGk7F
7. कुमार, राधा, द हिस्ट्री ऑफ डूइंग : एन इलस्ट्रेटेड अकाउंट ऑफ मूवमेंट्स फॉर विमेन्स राइट्स एंड फेमिनिज्म इन इंडिया 1800–1990, काली फॉर विमेन, 1993 पृ. 54 https://share.google/u9uqQQVr2Y8NeTZ7D
8. महरोत्रा, प्रिया, दीप्ती. भारतीय महिला आंदोलन कल आज और कल. संपूर्णा ट्रस्ट. नई दिल्ली, पृ. 36
9. कुमार, राधा, द हिस्ट्री ऑफ डूइंग : एन इलस्ट्रेटेड अकाउंट ऑफ मूवमेंट्स फॉर विमेन्स राइट्स एंड फेमिनिज्म इन इंडिया 1800–1990, काली फॉर विमेन, 1993, पृ. 68 https://share.google/u9uqQQVr2Y8NeTZ7D
10. थक्कर, उषा, "डिस्कवरिंग न्यू होराइजन्स : विमेन एंड द नॉन–वायलेंट स्ट्रगल फॉर इंडिपेंडेंस इन इंडिया" https://www.mkgandhi.org/articles/women-and-nonviolent-struggle-forindependence-in-India.php
11. पांडे, रेखा, "हिस्ट्री ऑफ विमेन्स ऑर्गनाइजेशन्स इन इंडिया," विमेन एंड हिस्ट्री, ई–पीजी पाठशाला, पृ. 7 https://share.google/126scQUZURzEgDNZB
12. महरोत्रा, प्रिया, दीप्ती. भारतीय महिला आंदोलन कल आज और कल. संपूर्णा ट्रस्ट. नई दिल्ली, पृ. 41
13. तनेजा, अनुप, "विमेन इन द नेशनल मूवमेंट फॉर इंडियाज इंडिपेंडेंस, 1920–47 (विथ स्पेशल रेफरेंस टू गांधी 'ज रोल इन द मास मोबिलाइजेशन ऑफ विमेन)," शोध–प्रबंध, बुंदेलखंड विश्वविद्यालय, 2002, पृ. 55 https://share.google/uexakH6A5yjghHw1c
14. वही, पृ. 56

PRINTED MATTER/PRINTING BOOK CLAUSE 121 (A) P & T GUIDE

गुगनराम एजुकेशनल एण्ड सोशल वैलफेयर सोसायटी (रजि.)
द्वारा भिवानी (हरियाणा), काठमाण्डू (नेपाल) से प्रकाशित

ISSN : 2395-7115
Impact Factor : 8.642

बोहल शोध मंजूषा

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY, MULTIPLE LANGUAGES
PEER REVIEWED, REFREED RESEARCH JOURNAL

Website :
www.bohalshodhmanjusha.com
Email : grsbohal@gmail.com

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Adv.
M. : 8708822674, 9466532152

गीना देवी शोध संस्थान
द्वारा श्रीगंगानगर, (राजस्थान), पटियाला (पंजाब) व नेपाल से प्रकाशित

ISSN : 2321-8037
Impact Factor : 7.834

Gina Shodh SANGAM

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES MONTHLY RESEARCH JOURNAL

Website : www.ginajournal.com
Email : grngobwn@gmail.com
Office : 8708822674

Editor :
Dr. Rekha Soni, Vice Principal
Education, Tantia University
M. 9828531975

गिरधारीलाल घासीराम शोधपीठ
द्वारा नई दिल्ली, आगरा, गाजियाबाद एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2348-5639
Impact Factor : 6.521

SHODH SAMALOCHAN

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL

Website : https://ginajournal.com/shodh-samalochan/
Executive Editor : Dr. Varsha Rani M. 9671904323
Managing Editor : Dr. Mukesh Verma M. 9627912535

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

गिना प्रकाशन द्वारा
जयपुर, भिवानी एवं नेपाल से प्रसारित

ISSN : 2321-0540
Impact Factor : 5.621

KANCHANLATA

AN INTERNATIONAL PEER REVIEWED, REFEREED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES HALF YEARLY RESEARCH JOURNAL

Managing Editor :
Dr. Mukesh Verma
M. 9627912535

Editor :
Dr. Naresh Sihag, Advocate
M. 8708822674

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक गुगनराम सोसायटी रजि. के लिए डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट ने मनभावन प्रिन्टर्ज, भिवानी से छपवाकर गीना प्रकाशन, 202, पुराना हाऊसिंग बोर्ड भिवानी-127021 (हरि.) से वितरित की।

ISSN 2395:7115

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Dr. Rekha Rani

Assistant Professor English,
SBS College of Law, Rohtak (Haryana)

for the paper titled

Exploring Mental Well-Being through Spiritual Healing : A Comparative Analysis of Raja Rao and Paulo Coelho

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

August 2026, Vol. 24, Issue -2, Part-2, Page No. 11-18

https://doi.org/10.5281/zenodo.22679720

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

रवि वर्मा

शोधार्थी, हिन्दी विभाग,
कुरूक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरूक्षेत्र।

for the paper titled

स्वातंत्र्योत्तर अप्रत्यासित परिवेश में नयी कविता के समीचीन स्वर

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

August 2026, Vol. 24, Issue -2, Part-2, Page No. 19-23

https://doi.org/10.5281/zenodo.22679720

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. अरविन्द कुमार वर्मा, शोध निर्देशक एवं सहायक आचार्य, समाजशास्त्र विभाग,
श्री कल्याण राजकीय कन्या महाविद्यालय, सीकर (राजस्थान)

हवाई सिंह गोठवाल, शोधकर्ता,
पं. दीनदयाल उपाध्याय शेखावाटी विश्वविद्यालय, सीकर (राजस्थान)

for the paper titled

सीकर जिले के तँवरावाटी क्षेत्र के विशेष संदर्भ में सामाजिक–सांस्कृतिक स्थलों का समाजशास्त्रीय अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

August 2026, Vol. 24, Issue -2, Part-2, Page No. 24-33

https://doi.org/10.5281/zenodo.22679720

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D.,
D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. बलवन्तसिंह वत्स

मकान न0 59, सैक्टर 04,
कुरुक्षेत्र, पिन 136118

for the paper titled

ब्रह्माण्डपुराणानुसारं भगवतः श्रीपरशुरामस्य तेजस्वी वंचः

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

August 2026, Vol. 24, Issue -2, Part-2, Page No. 34-40

https://doi.org/10.5281/zenodo.22679720

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

आर. श्रावण, शोधार्थी, सी.एम.आर.नंबर : 2293992,

डॉ. अजयपाल सिंह, शोध निर्देशक एवं अध्यक्ष,

हिन्दी विभाग, देश भगत विश्वविद्यालय मंडी गोबिंदगढ़, पंजाब।

for the paper titled

भारतीय समाज में दलित समुदाय का संघर्ष और दलित साहित्य की भूमिका

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

August 2026, Vol. 24, Issue -2, Part-2, Page No. 41-51

https://doi.org/10.5281/zenodo.22679720

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

शीतल सिन्हा, शोधार्थी

डॉ. मीरा रानी, शोध निर्देशक

असिस्टेंट प्रोफेसर, एम. एम. महिला कॉलेज

गृह विज्ञान विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)

for the paper titled

मलिन बस्तियों की महिलाओं में पोषण और स्वास्थ्य की स्थिति : आरा नगर के सन्दर्भ में

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

August 2026, Vol. 24, Issue -2, Part-2, Page No. 52-59

https://doi.org/10.5281/zenodo.22679720

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. सुनील कुमार चौधरी

सहायक आचार्य, इतिहास विभाग
हिंदू पी. जी. कॉलेज, जमानियां, गाजीपुर।

for the paper titled

जाति व्यवस्था पर डॉ. अम्बेडकर के विचार : एक अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

August 2026, Vol. 24, Issue -2, Part-2, Page No. 60-63

https://doi.org/10.5281/zenodo.22679720

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Mohd Adnan

Independent Researcher,
Delhi, India.

for the paper titled

Water Power and Empire : Canal Irrigation as a Tool of Colonial Rule in British India

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

August 2026, Vol. 24, Issue -2, Part-2, Page No. 64-70

https://doi.org/10.5281/zenodo.22679720

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

बिभा कुमारी, शोधार्थी

प्रो.(डॉ.) अवध बिहारी सिंह, शोध निदेशक,
प्रोफेसर व अध्यक्ष, स्नात्तकोत्तर समाजशास्त्र विभाग,
वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा, (बिहार)

for the paper titled

आदिवासी महिलाओं पर स्वयं सहायता समूह का प्रभाव

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

August 2026, Vol. 24, Issue -2, Part-2, Page No. 71-76

https://doi.org/10.5281/zenodo.22679720

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

वर्षा शर्मा

शोधार्थी, हिंदी विभाग, आगरा कॉलेज, आगरा।
डॉ. भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय, आगरा।

for the paper titled

भारतीय किसान का बदलता परिदृश्य : औपनिवेशिक दौर व समकालीन हिंदी उपन्यासों के संदर्भ में

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

August 2026, Vol. 24, Issue -2, Part-2, Page No. 77-83

https://doi.org/10.5281/zenodo.22679720

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

लक्ष्मी देवी

हिन्दी विभाग,

लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ।

for the paper titled

हिन्दी साहित्येतिहास लेखन में डॉ. सुमन राजे की भूमिका

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

August 2026, Vol. 24, Issue -2, Part-2, Page No. 84-88

https://doi.org/10.5281/zenodo.22679720

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Rafay Kamaal

Research Scholar,
Centre for French and Francophone Studies,
School of Language, Literature and Culture Studies,
Jawaharlal Nehru University, New Delhi-110067.

for the paper titled

Between Submission and Emancipation : A Thematic and Semiological Study on the Image of Maghrebi Women in French Cinema from 2000 to 2013

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

August 2026, Vol. 24, Issue -2, Part-2, Page No. 89-99

https://doi.org/10.5281/zenodo.22679720

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

प्रीति भटनागर, शोधार्थी,

प्रो0 राजेन्द्र सिंह (रज्जू भाइया) विश्वविद्यालय, प्रयागराज।

(इलाहाबाद राज्य विश्वविद्यालय)

for the paper titled

स्वतंत्रता के बाद भारत में आदिवासी महिलाओं की सामाजिक–आर्थिक और शैक्षिक स्थिति

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

August 2026, Vol. 24, Issue -2, Part-2, Page No. 100-105

https://doi.org/10.5281/zenodo.22679720

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Ritika Jindal, Author

Dr. Jyotsanna Lokhandde, Research Supervisor &
Assistant Professor, Department of Commerce and Management,
SHRI KHUSHAL DAS UNIVERSITY, HANUMANGARH, RAJASTHAN.

for the paper titled

Problems and Prospects of International Marketing of the Indian Leather Industry: An Analytical Study of Export Performance and Market Opportunities in European Union Countries

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

August 2026, Vol. 24, Issue -2, Part-2, Page No. 106-120

https://doi.org/10.5281/zenodo.22679720

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate
M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D.,
D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

दिलीप कुमार, शोधार्थी

डॉ. रीता शर्मा, वरिष्ठ सहायक प्राध्यापिका,

दर्शनशास्त्र विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा (बिहार)

for the paper titled

शंकर एवं रामानुज के अनुसार 'अवक्तव्य' की अवधारणा

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

August 2026, Vol. 24, Issue -2, Part-2, Page No. 121-123

https://doi.org/10.5281/zenodo.22679720

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

नवेद अली

स्वतंत्र शोधकर्ता,
दिल्ली।

for the paper titled

प्राचीन भारत में श्रेणी संगठन : एक ऐतिहासिक एवं विश्लेषणात्मक अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

August 2026, Vol. 24, Issue -2, Part-2, Page No. 124-128

https://doi.org/10.5281/zenodo.22679720

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Dr. Rajendra Jakhar

Asstt. Professor in Education
J.K. Memorial College of Education, Birhi Kalan,
Ch. Dadri (Haryana)

for the paper titled

Need of E-content Developments in Education

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

August 2026, Vol. 24, Issue -2, Part-2, Page No. 129-139

https://doi.org/10.5281/zenodo.22679720

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

कुसम लता टाक, शोधार्थी,
शिक्षा विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राज.)
डॉ. श्रद्धा सिंह चौहान, शोध निर्देशिका, सहायक आचार्य,
श्री अग्रसेन स्नातकोत्तर शिक्षा महाविद्यालय सी.टी.ई. केशव विद्यापीठ,
जामडोली, जयपुर (राज.)

for the paper titled

शिक्षकों की शैक्षिक नवाचारों के प्रति अभिवृत्ति मापनी

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

August 2026, Vol. 24, Issue -2, Part-2, Page No. 140-148

https://doi.org/10.5281/zenodo.22679720

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

पंकज कुमार सिंह

शोधार्थी, विद्यासागर विश्वविद्यालय,
मिदनापुर, प० बंगाल।

for the paper titled

ज्ञानरंजन : कम लेखन में रची गई विराट साहित्यिक उपस्थिति

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

August 2026, Vol. 24, Issue -2, Part-2, Page No. 149-151

https://doi.org/10.5281/zenodo.22679720

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

Brijlal Ahirwar, Research Scholar,

Dr. Pratima Khare

Phytochemical and Toxicological Evaluation of Gloriosa superba L. Collected from Sagar District, Madhya Pradesh, India

for the paper titled

Taxonomic Study of *Jatropha gossypifolia* L. (Euphorbiaceae) : A Poisonous Plant of Sagar District, Madhya Pradesh

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

August 2026, Vol. 24, Issue -2, Part-2, Page No. 152-165

https://doi.org/10.5281/zenodo.22679720

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

श्रीमती रश्मि कुर्मी

सहायक प्राध्यापक, हिंदी,

शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय गढ़ाकोटा, जिला सागर, मध्य प्रदेश।

for the paper titled

हिंदी साहित्य में आदिवासी विमर्श : एक अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

August 2026, Vol. 24, Issue -2, Part-2, Page No. 166-172

https://doi.org/10.5281/zenodo.22679720

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

स्नेहा

शोधार्थी, गोविंद बल्लभ पंत सामाजिक विज्ञान संस्थान, प्रयागराज।

for the paper titled

नव उदारवाद का दलित जीवन पर प्रभाव : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

August 2026, Vol. 24, Issue -2, Part-2, Page No. 173-178

https://doi.org/10.5281/zenodo.22679720

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

विपुल कुमार

शोधार्थी, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना।

डॉ. श्रीकांत सिंह, शोध निदेशक एवं प्रोफेसर एवं अध्यक्ष,

हिन्दी–विभाग, स्नातकोत्तर केंद्र, कॉलेज ऑफ कॉमर्स, आर्ट्स एंड सायंस, पटना–20

for the paper titled

महादेवी वर्मा के संस्मरणात्मक रेखाचित्रों में नारी संवेदना : नारीवादी विमर्श के संदर्भ में

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

August 2026, Vol. 24, Issue -2, Part-2, Page No. 179-184

https://doi.org/10.5281/zenodo.22679720

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

अनुराग शुक्ल, शोधार्थी
प्रो. जगदेव कुमार शर्मा, शोध निदेशक,
आधुनिक विषय पीठ, मानविकी विभाग,
श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय।

for the paper titled

1857 के स्वाधीनता आंदोलन में हिंदी पत्रकारिता का योगदान

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

August 2026, Vol. 24, Issue -2, Part-2, Page No. 185-189

https://doi.org/10.5281/zenodo.22679720

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ० टुम्पा कुमारी

सहायक प्राध्यापक, विश्वविद्यालय स्नातकोत्तर समाजशास्त्र विभाग,
भूपेन्द्र नारायण मंडल विश्वविद्यालय, लालूनगर, मधेपुरा–852113 (बिहार)

for the paper titled

विवाह संस्था के बदलते स्वरूप और नई पीढ़ी के सामाजिक दृष्टिकोण का समाजशास्त्रीय अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

August 2026, Vol. 24, Issue -2, Part-2, Page No. 190-197

https://doi.org/10.5281/zenodo.22679720

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

डॉ. बी. के. राणा, प्राध्यापक (वाणिज्य),
हमीदिया कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)
सुखेन्द्र प्रताप साकेत, शोधार्थी (वाणिज्य),
बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)

for the paper titled

भारतीय जीवन बीमा निगम की ग्राहक संतुष्टि (सतना जिले के विशेष संदर्भ में)

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

August 2026, Vol. 24, Issue -2, Part-2, Page No. 198-206

https://doi.org/10.5281/zenodo.22679720

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

ऋचा जोशी

शोधार्थी, एल. एस. एम. कैंपस, पिथौरागढ़।

डॉ. प्रेमलता पंत

प्रोफेसर, एस. एन. एस. रा. स्ना. महाविद्यालय, नारायण नगर, पिथौरागढ़।

for the paper titled

हिमालयी सीमान्त पिथौरागढ़ में शहरीकरण का सूत्रपात

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

August 2026, Vol. 24, Issue -2, Part-2, Page No. 207-211

https://doi.org/10.5281/zenodo.22679720

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

ISSN:2395-7115

बोहल शोध मञ्जूषा

Bohal Shodh Manjusha

Impact Factor : 8.642

INTERNATIONAL PEER REVIEWED REFERED AND INDEXED
MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES

Published by : Guganram Educational & Social Welfare Society (Regd.)

Email : grsbohal@gmail.com Website : www.bohalshodhmanjusha.com

Certificate of Publication

is awarded to

कमल

असिस्टेंट प्रोफेसर, इतिहास विभाग,
एस. डी. (पी.जी.) कॉलेज, पानीपत, हरियाणा।

for the paper titled

उत्तर भारत के महिला संगठन (1900–1947) : एक अध्ययन

Published in Bohal Shodh Manjusha ISSN:2395-7115

August 2026, Vol. 24, Issue -2, Part-2, Page No. 212-216

https://doi.org/10.5281/zenodo.22679720

9 772395 711007

Editor

Dr. Naresh Sihag Advocate

M.A., LL.B. (Hon's), M.A.J.M., M.Lib.& Information Science, M.Phil. Ph.D., D.Litt (Nepal) Diploma Panchayati Raj (Silver Medalist)

This Certificate is only Valid with the Presentation of Research Paper Copy.

#202, Old Housing Board, Bhiwani-127021 (Hry.) 8708822674, 9466532152